राज भाषा विभाग, बिहार के अनुदान द्वारा प्रकाशित

तन्त्र दर्शन और भुवनेश्वरी साधना

अशोक कुमार 'राकेश'

तन्त्र दर्शन और भुवनेश्वरी साधना

(योग एवं तन्त्र साधकों, चिन्तकों के लिए परमोपयोगी)

समर्पण

जिज्ञासु तन्त्र-मन्त्र एवं योग-साधकों

तथा

अध्यात्म-प्रेमी चिन्तकों

को

सस्नेह समर्पित

अशोक कुमार "राकेश"
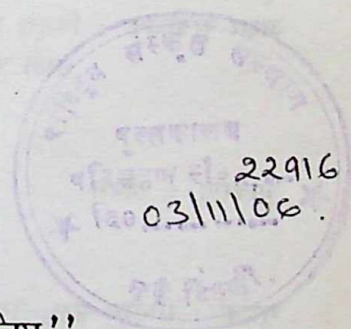
तन्त्र दर्शन और भुवनेश्वरी साधना

Tantra Darshan and Bhuvaneshwari Sadhana

अशोक कुमार 'राकेश'

ऋचा प्रकाशन

बस स्टैण्ड मधुबनी रोड,

छतौनी, मोतिहारी (बिहार) ।

पिन.कोड- 845401

सम्मति और शुभकामना

मैंने प्रिय मित्र श्री अशोक कुमार ''राकेश'' जी द्वारा प्रणीत ''तन्त्र-दर्शन एवं भुवनेश्वरी-साधना'' ग्रन्थ का अवलोकन किया । इस ग्रन्थ में 'सृष्टि-उद्भव-विकास, शब्द-ब्रह्म, स्थूल-सूक्ष्म एवं आध्यात्मिक शरीर-रचना, 'अहम्'-महा-मन्त्र आदि का प्रामाणिक एवं विस्तृत विवेचन किया गया है । इसमें देवी-प्रणव, तत्त्व-विवेचन तथा मन की, जो व्याख्या प्रस्तुत की गई है, वह सामान्य एवं विज्ञ-जनों के लिए भी पठनीय एवं मननीय है । ''भगवती भुवनेश्वरी'' की साधना विधि को इस पुस्तक में देकर लेखक ने श्रद्धालु एवं जिज्ञासु साधकों का पथ-प्रदर्शन करने का, जो कार्य किया है, उसके लिए ये बधाई के पात्र हैं ।

श्री ''राकेश जी'' इसी तरह की अमूल्य कृतियों से समाज का उपकार करते रहेंगे-यही मेरी हार्दिक कामना है और आशा भी । एतदर्थ ये भूरि-भूरि प्रशंसा के पात्र हैं ।

ईश्वर से मेरी सविनय प्रार्थना है कि वे इन्हें इसी प्रकार के बहुमूल्य ग्रन्थों की रचना की क्षमता आगे भी प्रदान करें ।

शुभकामनाओं के साथ ।

भवदीय,

डा० बैद्यनाथ झा

(राष्ट्रपति पुरस्कार से -सम्मानित)
पूर्व-विश्वविद्यालय आचार्य एवं
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग,
लंगट सिंह कॉलेज,
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय,
मुजफ्फरपुर ।

दिनांक 20-05-2001
नील रत्न कुटीर,
दामुचक, मुजफ्फरपुर,
(बिहार) ।

क्र० सं०	विषय-सूची	पृष्ठ संख्या
1.	भूमिका	
	सृष्टि-पाद	
2.	सृष्टि-उद्भव और विकास	1 - 10
3.	शब्द-ब्रह्म : एक विवेचना	11 - 24
4.	मानव जीवन का लक्ष्य है-मोक्ष-प्राप्ति	25 - 33
	तत्व-पाद	
5.	स्थूल तथा सूक्ष्म-शरीर-रचना	34 - 53
6.	आध्यात्मिक शरीर	54 - 61
7.	कृत-कर्म-दोष के कारण ही आत्मा जन्म लेती है ।	62 - 69
8.	क्रम-दीक्षा : एक विवेचना	70 - 77
9.	मन के हारे हार है, मन के जीते जीत	78 - 87
10.	''अहम्'' महामन्त्र : एक विवेचना	88 - 107
11.	''ह्रीम्'' बीज मन्त्र: एक विवेचना	108-124
12.	तत्त्व-ज्ञान है साधना का सोपान	
	सिद्धि-पाद	125-128
13.	साधना-काल के आवश्यक निर्देश	
	भुवनेश्वरी साधना	129-131
14.	आसन शुद्धि	131-133
15.	भूत शुद्धि	134-135
16.	प्राण-प्रतिष्ठा	135-136
17.	मातृका न्यास	136-143
18.	मन्त्र-संस्कार	143-147
19.	वर्धनी कलश स्थापना	148
20.	सामान्य अर्ध्य पात्र स्थापना	149-152
21.	विशेष अर्ध्य विधि	152-156
22.	शुद्धि संस्कार	157-161
23.	भुवनेश्वरी पूजा प्रारम्भ	161-162
24.	यन्त्र निर्माण	162-175
25.	जप प्रकरण	176-177
26.	होम प्रकरण	177-182
27	कवच	182-184

भूमिका

तन्त्र-शास्त्र आत्म-अनुसन्धान का एक महा विज्ञान है तथा चरम विज्ञान है, परशिव तथा पराशक्ति-तत्त्व के अनुसन्धान का भी। तन्त्र-शास्त्र एक महा विज्ञान है ब्रह्माण्ड में स्थित अतीन्द्रिय शक्तियों के अन्वेषण और उनसे साक्षात्कार करने तथा स्वेच्छानुरूप कार्य-साधने का भी।

तन्त्र-शास्त्र जहाँ आत्म-तत्त्व के साथ-साथ पंच-महाभौतिक तत्त्वों, मन, बुद्धि, अहंकार, प्रकृति आदि तत्त्वों का विश्लेषण करता है, वहीं उनकी स्फुरणात्मक प्रक्रिया को कुन्द कर मूल आत्मा-तत्त्व की खोज का मार्ग प्रशस्त करता है।

तन्त्र-शास्त्र सृष्टि के उद्भव, विकास तथा संहार की प्रक्रिया को समझने तथा सृष्टिकर्त्री ब्रह्म-शक्ति से साक्षात्कार का अनूठा विज्ञान है।

तन्त्र-शास्त्र जहाँ स्थूल शरीर की रचना का विज्ञान (चिकित्सकीय नहीं) है तो सूक्ष्म, आध्यात्मिक तथा कारण शरीर से परिचय कराने वाला सक्षम विज्ञान है।

तन्त्र-शास्त्र की विषय-वस्तु मानव को प्रिय मार्ग (भौतिक सुख-समृद्धि व भोगवादी विचार-धारा) से विरत कर श्रेय-मार्ग अर्थात् शान्ति, पुष्टि, तुष्टि, विवेकशीलता तथा अन्तर्दृष्टि प्रदान कर ईश्वरोन्मुख मार्ग की ओर प्रेरित करने वाली क्रिया-प्रक्रियाओं, संसाधनों, तथा कलाओं का विश्लेषण तथा व्याख्या करता है।

भारतीय मनीषी चिन्तकों, ऋषियों तथा देशिकों द्वारा जाँची-परखी, अन्वेषित, वर्ण की एकल ध्वनि-तरंग, संयुक्त वर्णों की मिश्रित ध्वनि तरंग तथा शब्दों के संकुल ध्वनि-तरंग-जनित ईथर तथा ईथर के प्रकाशीय स्वरूप तथा उसके द्वारा उत्पन्न होने वाले ऊर्जा-पुञ्जों, साकार स्वरूपों की भौतिक, आत्मिक तथा आध्यात्मिक

उपादेयता का विश्लेषण एवं व्याख्या करना भी तन्त्र शास्त्र का प्रतिपाद्य विषय है ।

तन्त्र-शास्त्र मानव-शरीर के अन्दर सूक्ष्म तथा कारण शरीर का भी अध्ययन, अनुशीलन करता है । मानव-शरीर स्थित संवेदना के आयामों का भी अध्ययन करता है । ब्रह्म-ग्रन्थि में स्थित धूसर रंग के द्रव्य को मूल-ऊर्जा-स्रोत के रूप में जहाँ अध्ययन और चिन्तन करता है, वहीं मस्तिष्क के विभिन्न भागों में अवस्थित श्वेत तथा रक्तिम द्रव्यों का भी मूल ऊर्जा-स्रोत के सहयोगी ऊर्जा-स्रोतों के रूप में अध्ययन एवं.चिन्तन करता है।

लघु मस्तिष्क स्थित ब्रह्म-ग्रन्थि से निकलने वाली मुख्य नाड़ी सुषुम्ना तथा इडा और पिंगला नाड़ियों में प्रवाहित होने वाले द्रव्यों का भी ऊर्जा-वाहिका के रूप में चिन्तन करता है । पुनः मुख्य नाड़ी सुषुम्ना से ग्रीवा, हृदय, पेट, नाभि, तथा गुदा मार्ग के पास निकलने वाली नाड़ियों द्वारा बनाये गये चक्रवत् गुच्छा-पुञ्जों तथा उसमें निहित शक्ति-स्रोतों का चिन्तन और उसकी जाग्रिति का तथा उसकी आध्यात्मिक उपादेयता का विश्लेषण प्रस्तुत करता है । इन नाड़ियों के ऊर्ध्व और अधो रूपों तथा उसकी ऊर्जात्मक शक्ति का अध्ययन और चिन्तन प्रस्तुत करता है । विशुद्धि चक्र से ऊपर आज्ञा-चक्र तथा उसके ऊपर की गोपनीय आठ नाड़ी-चक्रों की उपादेयता का भी विश्लेषण ही प्रस्तुत नहीं करता है बल्कि जीव से शिव बनने की कला का, विज्ञान का वर्णन प्रस्तुत कर मनुष्य को त्रिकालज्ञ, सर्वशक्तिमान, तथा ईश्वरमय बनने की प्रक्रिया भी उपलब्ध कराता है । मानव-शरीर स्थित प्राण,अपान, व्यान,समान, उदान तथा धनंजय आदि वायुओं तथा उनकी क्रिया-दक्षता का भी अध्ययन करता है ।

प्रकृति की गोद में बिखरी पड़ी वनौषधियाँ मानव -जीवन के लिए नितान्त उपयोगी हैं । इनमें कुछ बल-वीर्य-वर्द्धक और पुष्टि कारक हैं तो कुछ आरोग्य वर्द्धक और रोग नाशक भी ।

कुछ औषधियाँ तो ऐसी हैं, जो मात्र धारण या भक्षण मात्र से वैसी शुद्धता तत्क्षण प्रदान करने में सक्षम होती हैं जैसी वर्षों तक योगाभ्यास के बाद प्राप्त की जाती है । कुछ औषधियों के शरीर में धारण करने से ही आध्यात्मिक ज्ञान-चक्षु उन्मीलित होने लगते हैं तो कुछ के धारण से आर्थिक तथा मानसिक लाभ भी प्राप्त होता है । तन्त्र-शास्त्र इन औषधियों की व्यापक जानकारी देता है तथा उससे लाभ प्राप्त करने की युक्ति भी बतलाता है । साथ ही जिज्ञासुओं को नवीन वनौषधियों की उपयोगिता सम्बन्धी खोज के लिए प्रेरित करता है। इस तरह तन्त्र-शास्त्र मानव-जीवन-रक्षक औषधियों की जाँच, परख, खोज एवं उसकी उपयोगिता को विश्लेषित करने वाला विज्ञान है ।

रस, रसायन, बटी आदि की निर्माण-विधि एवं उसकी जीवन-रक्षण-सम्बन्धी उपयोगिता का भी अनुसन्धान करता है ।

मानव-जीवन में सांसारिक सुख-समृद्धि के साथ-साथ आध्यात्मिक समुन्नति के लिए रैखिक आकृतियों का अपना एक अलग और महत्वपूर्ण स्थान है । ये रैखिक आकृतियाँ निर्दिष्ट विधि से निर्मित किये जाने पर पूर्णतः प्राणवन्त होती हैं । ये रैखिक आकृतियाँ (यन्त्र) जहाँ भौतिक सुख-साधन उपलब्ध कराने में अलौकिक योगदान करती हैं, वहीं मानसिक अशान्ति तथा तनाव को दूर कर मनुष्य को स्वस्थ चेतना-सम्पन्न बनाने में क्रियाशील होती हैं। साथ-साथ आध्यात्मिक शक्तियों से भी साक्षात्कार कराने में सक्षम-समर्थ होती हैं । सच तो यह है कि ये रैखिक आकृतियाँ (यन्त्र) स्वयं में गुह्यातिगुह्य रूप से ऊर्जावान् होती हैं तथा मूल ऊर्जात्मक अर्थात् विभिन्न शिव-रूपमयी रश्मियों तथा शक्ति-रूपमयी रश्मियों से पूर्ण होती हैं, जिससे आध्यात्मिक पथ पर चलने वाले साधकों को भुक्ति मुक्ति साधना में सफलता प्राप्त होती है । इस तरह यन्त्र-निर्माण तथा उसकी प्रयोग विधि को भी तन्त्र-शास्त्र

पूर्णतः वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषित करता है।

प्रत्येक जीव शिव-शक्ति का अंशावतार होता है। सांसारिक क्रिया-कलापों में आबद्ध होने के कारण वह अपनी शिवात्मक तथा शक्त्यात्मक स्वरूपों से अभिज्ञ बन जाता है । सामान्य कायिक, मानसिक, व ऐन्द्रिक ऊर्जा या कार्य कुशलता से ही वह परिचित हो पाता है । परिणामतः अनन्त ऊर्जा का स्रोत मानव अत्यल्प ऊर्जा का ही उपभोग कर पाता है तथा अपने भीतर की अनन्त ऊर्जा का न तो उपभोग कर पाता है और न उसे पहचान ही पाता है । तन्त्र-शास्त्र मानव के शरीर-स्थित परम ऊर्जा के अनुसन्धान का मार्ग प्रशस्त करता है तथा ब्रह्माण्ड स्थित गुह्यातिगुह्य ऊर्जा से, शक्ति पुजों से परिचय ही नहीं कराता है अपितु, आत्मबल को परमात्म-बल में परिणत करने का विज्ञान भी बतलाता है, जिससे मनुष्य परम ऊर्जा सम्पन्न ही नहीं बन जाता है, बल्कि ब्रह्माण्ड-नायक भी बनने में सक्षम-समर्थ हो जाता है । मूल प्राकृतिक ऊर्जा की सायुज्यता मनुष्य को सार्वदेशिक सार्वकालिक व्यक्तित्व प्रदान कर जीवन के मौलिक लक्ष्य को भी मुष्टिगत करा देता है ।

संक्षेपतः तन्त्र-शास्त्र दिव्यता प्रदान करने वाली, परम चेतनता के साथ जुड़ जाने वाली, निम्नलिखित साधना-विज्ञान के अनुसन्धान हेतु वैज्ञानिक दुष्टिकोण का विश्लेषण ही नहीं करता है बल्कि, एतदर्थ मार्ग भी प्रशस्त करता है ।

यथा -

1- आत्म-बल , 2. इन्द्रिय बल , 3. इन्द्रिय संयम-जनित बल, 4. प्राण-संयम-जनित बल, 5. यज्ञ-जनित कर्मेन्द्रिय बल 6. भूत-बल तथा 7. आगमीय यन्त्र (रैखिक आकृति)-जनित बल का अनुसन्धान-विधान,

1- आत्म-बल - अर्थात् अणिमा सिद्धि, महिमा सिद्धि, गरिमा सिद्धि, लघिमा सिद्धि, प्राप्ति सिद्धि, प्राकाम्य सिद्धि, ईशित्व सिद्धि तथा वशित्व सिद्धि का अनुसन्धान-विधान,

2- इन्द्रिय बल - देवता का साक्षात्कार और छाया पुरुष की सिद्धि,

वलगा (बगला) नामक कृत्या सिद्धि, शरीर से निकलती आभा की दर्शन-सिद्धि, मृत पुरुष से साक्षात्कार करने की सिद्धि, विश्व-रूप-दर्शन-सिद्धि, आदि का विधान,

3- **इन्द्रिय संयम-बल** - इसके अन्तर्गत अतीत, अनागत तथा जन्मजन्मान्तर की ज्ञान-सिद्धि, दूर-दृष्टि तथा परोक्ष ज्ञान-सिद्धि, समस्त प्राणियों के शब्दों की ज्ञान-सिद्धि, मनोविज्ञान, भूगर्भ-विज्ञान-सिद्धि, भुवन-ज्ञान-सिद्धि, औषधि-प्रभाव-ज्ञान-सिद्धि तथा तारा-ज्योति प्रभाव-ज्ञान-सिद्धि आदि के अनुसन्धान विधान के साथ-साथ माया-व्यामोह- सिद्धि, उपश्रुति विद्या-सिद्धि तथा संस्कारोपधानी विद्या-सिद्धि का विधान,

4-**प्राण-संयम-बल** - इसके अन्तर्गत काया-व्यूह सिद्धि , पर काया प्रवेश-सिद्धि, प्राण-हारिणी-सिद्धि, मृत संजीवनी दैवी सिद्धि, स्थाणु संजीवनी विद्या-सिद्धि, छाया-निग्रहणी-विद्या-सिद्धि, आकृति परिवर्तनी विद्या-सिद्धि, लिंग परिवर्तनी विद्या-सिद्धि का अनुसन्धान-विधान,

5- **यज्ञ-जनित कर्मेन्द्रिय बल** - इसके अन्तर्गत सर्पाकर्षणी विद्या-सिद्धि, अग्नि-जल-स्तम्भिनी विद्या-सिद्धि, अक्षय करणी विद्या-सिद्धि, निग्रहणी और अनुग्रहणी विद्या-सिद्धि, पुत्र संजननी विद्या-सिद्धि, जल-वर्षिणी विद्या सिद्धि, उपोनद्त्रीय विद्या-सिद्धि तथा मधु विद्या-सिद्धि आदि का अनुसन्धान-विधान ,

6- **भूत-बल-सिद्धि** - इसके अन्तर्गत मृत संजीवनी गुटिका सिद्धि, संजीवन करणी सिद्धि, विशल्य करणी सिद्धि, सावर्ण्य करणी सिद्धि, संधान करणी सिद्धि, अरिष्ट भेषज्या सिद्धि, डिम्ब प्रसवनी सिद्धि तथा बला और अति बला-सिद्धि आदि का अनुसन्धान-विधान तथा

7- **आगमीय यन्त्र-बल**- इसके अन्तर्गत मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, विद्वेषण, स्तम्भन आकर्षण सिद्धि तथा शान्ति करणी सिद्धि का उपयुक्त अनुसन्धान-विधान की वैज्ञानिक पद्धतियों , क्रियाओं का विश्लेषण करना तन्त्र-शास्त्र का प्रतिपाद्य विषय है । इस प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की निस्सीमता को मापने, जाँचने, परखने तथा

मानव-समूह के लिए ही नहीं सम्पूर्ण जैविक समुदाय को अनुकूल बनाने की वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान करता है तन्त्र शास्त्र ।

जहाँ तक तन्त्र-शास्त्र के उद्‌भव और विकास के काल का प्रश्न है, यह निश्चित तौर पर नहीं कहा जा सकता कि इसका उद्‌भव कब हुआ ? किन्तु वेदों, शास्त्रों, यामलों, डामर-तन्त्रों, सिद्धान्त , कल्प, ज्योतिष आदि शास्त्र तथा पुराणादि के अध्ययन एवं अनुशीलन से स्पष्टतया अभिज्ञात होता है कि तन्त्र-शास्त्र जैसे दुर्लभ तथा सार्वकालिक महा विज्ञान की खोज वैदिक काल में ही ऋषियों -महर्षियों द्वारा सम्पन्न हुई और यह गुरु-परम्परा द्वारा कालान्तर में विकास की ओर अग्रसर होता रहा । इस कार्य में अलग-अलग ऋषियों द्वारा प्रतिष्ठापित पीठों तथा उनके कुल-शिष्यों तथा दीक्षित शिष्य-परम्पराओं ने अमूल्य योगदान दिया । चाहे शक्ति मतालम्बी हो या शैव मतावलम्बी, सौर मतावलम्बी हो या गाणपत्य, वैष्णव मतावलम्बी हो या कि सांख्य या निर्गुण ब्रह्मोपासकों की परम्परा हो वर्त्तमान काल में शिथिल जरूर हैं, परन्तु, कुन्द नहीं हुई है । उदाहरणार्थ - वशिष्ठ, गोरक्षनाथ, विश्वामित्र, दुर्वासा, दत्तात्रेय हयग्रीव, लोपमुद्रा, आनन्द भैरव के साथ-साथ अन्य कालों में भी स्थापित पीठों की शिष्य-परम्परा किसी न किसी रूप में अक्षुण्ण है और अनन्त काल तक अक्षुण्ण रहेगी ।

हाँ, साहसी, तथा सत्पात्र जिज्ञासु साधकों, चिन्तकों, के अभाव के कारण इस विज्ञान के वेत्ताओं की संख्या दिनानुदिन् अत्यल्प होती जा रही है ।

तन्त्र-शास्त्र के उद्‌भव एवं विकास-स्थल-सम्बन्धी खोज पूर्ण अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि इस विज्ञान का उद्‌भव -स्थल प्राचीन जम्बुद्वीप का भारत वर्ष ही है । इसी भूमि से इस विज्ञान की यात्रा पश्चिमी एशिया, मध्य एशिया तथा दक्षिणी और पूर्वी एशिया के देशों में सम्पन्न हुई । साथ ही भाषाई भेद को अगर नजर अन्दाज कर दिया जाय तो भारतीय साधनात्मक क्रिया-प्रक्रियायें

सभी देशों में मौजूद हैं । परन्तु इस क्रम में गुरु-पीठ द्वारा निर्धारित लक्ष्य का आधार (आयाम) भी ऊपर से नीचे की ओर खिसका है । तात्पर्य यह कि महाक्रम, पूर्ण क्रम की विद्याओं की साधनायें लुप्त-सी होती जा रही हैं । शेष विद्या-क्रमों की भी पूर्ण वैज्ञानिकता भी भौतिक सुखाकाँक्षा पूरित गुरुओं एवं साधकों के चलते बाधित होने लगी है । चरम तक पहुँचने का धीरज वर्त्तमान में साधकों के पास नहीं रह गया है । जो जहाँ तक पहुँच पाता है, वहीं से उसका गुरुपीठ (गुरुडम) स्थापित हो जाता है । भौतिक मान-मर्यादा , सुखोपलब्धि में लीन साधक ऋषि प्रतिपादित लक्ष्य को प्राप्त करने में रुझान नहीं रख पाता है ।

तन्त्र-शास्त्रों की संख्या हजार से भी अधिक है । जिनमें से कई तो अपने मूल रूप में अप्राप्य हैं तो कुछ किसी रूप में भी प्राप्य नहीं हैं । कुछ की पाण्डुलिपियाँ अपने उद्धारक की बाट जोहते -जोहते नष्ट होने के कगार पर हैं । फिर भी, जो उपलब्ध हैं- उनको सत्पात्र अध्येता, जिज्ञासु अनुसन्धाता भी नहीं मिल पा रहा है । ऐसे वेषधारी दूकानदार सिद्धों की कमी नहीं हैं ।

परिणामत: मन्त्र-योग , ध्यान योग , यन्त्र-योग, अष्टांग योग, (कुण्डलिनी योग) , वनौषधि -योग, रस-रसायन-योग तथा शरीर-शोधन-योग (नेति, वस्ती, धौती, कपाल-भाति व नाड़ी -शोधन तथा जागरण-क्रिया) का महा विज्ञान होते हुए भी तन्त्र-शास्त्र वर्णित तथा विश्लेषित विद्यायें(विज्ञान) विलुप्त होने के कगार पर हैं । आवश्यकता है इन विद्याओं के प्रति लोगों का रुझान पैदा करने तथा एतदर्थ शोध-कार्य हेतु प्रेरित करने की । तन्त्र-शास्त्र के विलोपित होते आधारों (कारकों) को पुन: मानव-समाज में प्रतिष्ठापित एवं प्रचारित करने के उद्देश्य से ही प्रस्तुत पुस्तक ''तन्त्र-दर्शन और भुवनेश्वरी साधना ''का प्रणयन किया गया है । सम्पूर्ण पुस्तक को तीन पादों अर्थात् सृष्टि-पाद, तत्व-पाद तथा साधना-पाद के अन्तर्गत विभाजित कर विविध अध्यायों (शीर्षकों)

के अन्तर्गत यथा ''सृष्टि-उद्भव एवं विकास, शब्द-ब्रह्म , ''अहम्'' एक महा मन्त्र है, तत्व-चिन्तन , स्थूल, सूक्ष्म एवं आध्यात्मिक शरीर, षड्चक्रों की अवधारणा, क्रम-दीक्षा, मन के हारे हार है, मन के जीते जीत 'ह्रीं' बीज : एक विवेचना आदि गुह्य विषयों के सम्बन्ध में शोधपूर्ण चिन्तन प्रस्तुत किया गया है । साथ ही साधकों के हितार्थ भगवती भुवनेश्वरी की सम्पूर्ण साधनात्मक प्रक्रिया व पद्धति भी दी गई है , जो लेखक का श्रमपूर्ण तथा सार्थक प्रयास है । तन्त्र-दर्शन और भुवनेश्वरी साधना-तन्त्र-शास्त्र के भीतर गुम्फित रहस्यों को उजागर करने की दिशा में एक शोधपूर्ण प्रयास है । लेखक इस दुरूह विषय पर कितना सफल हुआ है आप विज्ञ पाठक ही निर्णय देगें । अस्तु ।

अक्षय तृतीया वैशाख, **अशोक कुमार 'राकेश'**
विक्रम संवत् 2060

सृष्टि-उद्‌भव और विकास

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना अद्वैत्त-द्वैत क्रम से सम्पन्न हुई है । सर्वप्रथम निगम के रचयिता ऋषियों, चिन्तकों ने सृष्टि को आश्चर्यमयी दृष्टि से देखा । उनके अन्तर-तल पर एक प्रश्न कौंध उठा-"कुतः इयम् विसृष्टिः । " इस ब्रह्माण्ड की रचना किसने की ? कैसे सम्पन्न हुआ इस सृष्टि का विस्तार ? आन्दोलित कर दिया इस प्रश्न ने ऋषियों के मन-प्राण को । साथ ही चर-अचर जीव-जड़्. गम का उत्पत्ति-स्त्रोत क्या है और कैसा है ? इस प्रश्न ने भी उनके विचारों को उद्वेलित किया । फिर, खोज शुरू हो गई अनन्त ऊर्जा-स्त्रोत की । अनुसन्धान प्रारम्भ हो गया मूल ऊर्जा-स्त्रोत का । इस अनुसन्धान के क्रम में आर्य-ऋषियों ने विविध मार्गों का उन्मेषण किया। तत्-तत् मार्ग पर "चरैवेति चरैवेति--चलते रहो,चलते रहो" का सिद्धान्त अपनाया और अन्ततोगत्वा उनलोगों ने "कुतः इयम् विसृष्टिः" प्रश्न का यथोचित उत्तर प्राप्त कर लिया । या यों कहें कि सृष्टि-रचना-विधान की बारीकियों को समझ लिया, परख लिया । साथ ही इन, रहस्यों पर से पर्दा हटा दिया । मूल ऊर्जा-स्त्रोत की पहचान कर ली और वहाँ तक अन्य लोग भी पहुँच सके, एतदर्थ मार्ग भी उन्मेषित कर दिया । सृष्टि के इस मूल ऊर्जा- स्त्रोत के अनुसन्धान-क्रम में अनन्त ऊर्जा-पुँजों से इनका साक्षात्कार हुआ । उनके स्वरूप, अलंकार, कला, मुद्रा, शक्ति-तत्व आदि से साक्षात्कार का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ । इन ऋषियों ने व्यापक सृष्टि-रचना-विधान-सम्बन्धी अपने मत, सिद्धान्त भी प्रतिपादित किये । कालान्तर-क्रम से अन्य अन्वेषकों, ऋषियों, मनीषियों ने भी अपने स्तर से अन्वेषण-कार्य किया और अपने-अपने मत तथा सिद्धान्त प्रतिपादित किये । इन मतों, सिद्धान्तों में से कुछ निम्नलिखित हैं :-

(1) **निगमागम-मत**- आर्य ऋषियों में ब्रह्माण्ड को देखकर जिज्ञाशा

हुई कि "कुतः इयम् विसृष्टिः । इसी प्रश्न का उत्तर पाने के लिए ऋषियों ने सृष्टि के रहस्यों का अन्वेषण करना प्रारम्भ किया। इसी अन्वेषण क्रम में " आरम्भवाद, परिणामवाद तथा "विवर्तवाद" के दार्शनिक सिद्धान्त प्रतिपादित हुए ।

(2) आरम्भवाद - आरम्भवाद के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति का कारण असद् और सद् है। अर्थात् असद् से सद् की उत्पत्ति हुई है। उदाहरणार्थ , असद् रूप मृतपिण्ड में घट की स्थिति विराजमान थी, इसी कारण उससे सद्-रूपी घट की उत्पत्ति सम्भव हुई । अर्थात् मृतिका पिण्ड से घट की रचना होती है। इसलिए घट की रचना का मूल तत्व मृतिका पिण्ड में पूर्व से विराजमान होना माना गया । न्याय वैशेषिक बौद्ध इसी दर्शन सिद्धान्त को मानते हैं । इनके अनुसार असद् से ही वस्तुओं की उत्पत्ति हुई मानी जाती है ।

(3) परिणामवाद-परिणामवाद ठीक इसके विपरीत सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। इसके अनुसार सद् से सद् की उत्पत्ति हुई मानी जाती है। अर्थात् जो जैसा था उसी प्रकार की रचना करने में समर्थ हुआ। उदाहरण-तिल के अन्दर पूर्व से ही तेल मौजूद रहता है। तभी तो तिल को पेरने पर तेल निस्सृत होता है। बालू को पेरने पर तेल नहीं निकलता । क्योंकि, बालू में तेल मौजूद नहीं रहता है। इसलिए, यह कहना कि असद् से सद् की उत्पत्ति हुई है, गलत है। दूध में घी अन्तर्निहित होता है, तभी दूध को मथने से घी की प्राप्ति सम्भव हो पाती है। सांख्यवाद भी इसी सिद्धान्त का पक्षपाती है।

(4)विवर्तवाद- विवर्तवाद एक नवीन दर्शन-सिद्धान्त के साथ प्रादुर्भित होता है। यह असद् से सद् की रचना अथवा सद् से सद् के रचना-सिद्धान्त को अस्वीकार करते हुए एक नवीन सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। यह अद्वैतवाद में विश्वास करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार जगत् विवर्त है और आत्मा आर्वत, लहर, या बुलुबुला । अर्थात् जल में आवर्त, लहर या बुलबुला देखकर कोई नहीं कह सकता कि ये जल से बाहर की वस्तु हैं अथवा जल और तरंग,

आर्वत या बुलबुला में अन्तर है। समुद्र के जल में ज्वार आता है, लहरें उठती हैं, बुलबुले बनते हैं और कुछ क्षण पश्चात् पुनः उसी जल में विलीन हो जाते हैं । वास्तविक जल से इनका कोई अन्तर्भेद नहीं होता । आरम्भ होकर विनष्ट होने तक इनका रूपाकार अलग दिखता है, लेकिन, विनष्ट होने के बाद पुनः जल रूप में परिदृष्ट होता है । इसलिये -यह जगत् विर्वत है और सविद् तत्व कहे जाने के कारण अद्वैत है, यह वेदान्त का मत है।

तन्त्र में सृष्टि का अनुसन्धान करने पर ज्ञात होता है कि कुछ सिद्धान्तों पर शिव-दर्शन का प्रभाव है तो कुछ पर सांख्य-सिद्धान्त का । साथ ही कुछ पर शक्ति-मत का भी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। समग्र-रूप से तन्त्र के सृष्टि-सिद्धान्त का अध्ययन करने पर ज्ञात होता हैं कि सनातन, नित्य, शिव निर्गुण एवं सगुण दोनों हैं । निर्गुण शिव प्रकृति के सम्बन्ध से रहित है। इसलिये, वह सूक्ष्म है । नित्य, व्यापक, सूक्ष्म, सदानन्द, निरामय, विकार-रहित तथा साक्षी निर्गुण शिव को माना जाता है। ''प्रयोग-सार-तन्त्र'' का निम्नलिखित कथन है। :-

''नित्यः सर्वगतः सूक्ष्मः सदानन्दो निरामयः ।
विकार-रहितः साक्षी शिवो ज्ञेयो सनातनः ।।''

''नारायणीय तन्त्र'' - में इसको और स्पष्ट ढँग से व्याख्यायित किया गया है । जैसे -

निष्क्रियं निर्गुणं शान्तमानन्दमजमव्ययम् ।
अजरामरमव्यक्तमज्ञेयमचलं ध्रुवम् ।।
ज्ञानात्मकं परं ब्रह्म स्वसंवेद्यं हृदि स्थितम् ।
सत्यं बुद्धं परं नित्यं निर्मलं निष्कलं स्मृतम् ।। ''

उपरोक्त कथन के आधार पर शिव का निर्गुण एवं सगुण दोनों रूप प्रतिपादित होता है। सांख्य के अनुसार सत्व, रज तथा तम तीनों की साम्यावस्था को प्रकृति की संज्ञा दी गई है। इन्हीं गुण-त्रय से संवलित शिव को सगुण-रूप कहा गया है । शिव-तन्त्र

में प्रकृति के ऊपर एक कला-तत्व माना गया है। इसी कला-तत्व से पूरित होने के कारण शिव को सकल माना जाता है। सांख्य के अनुसार, जो प्रकृति है, वही वेदान्त में अविद्या के नाम से जानी जाती है। शाक्त इसी को शक्ति की संज्ञा से अभिहित करता है। इसलिए, ग्रन्थों में सकल शिव के स्वरूप और कार्य को निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया गया है :-

तच्छक्तिभूतः सर्वेशो भिन्नो ब्रह्मादिमूर्तिभिः ।
कर्त्ता भोक्ता च संहर्ता सकलः स जगन्मय : ।।

इन्हीं सच्चिदानन्द-विभूति सकल परमेश्वर से शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ । इन्हीं से नाद एवं बिन्दु का समुद्‌भव हुआ । शक्तिमय शिव से बिन्दु, नाद तथा बीज की उत्पत्ति हुई तथा इसके अन्तर्भेद समुत्पन्न हुए । बिन्दु-रूप शिव तथा बीज-रूप शक्ति के समवाय होने पर नाद की उत्पत्ति हुई । अर्थात् इनकी साम्यावस्था को नाद की संज्ञा दी गई। बिन्दु से वर्णादि विशेष-रहित अखण्ड नाद की उत्पत्ति होने के कारण ही शब्द को ब्रह्म-रूप माना गया है । इस सिद्धान्त को स्फोटवाद में वैयाकरण सिद्धान्त ने स्वीकार किया है। इस मत के अनुसार शब्द और शब्दार्थ के साथ शब्द-ब्रह्मत्व की सिद्धि नहीं होती । कुछ लोग इस मत में जड़त्व को स्वीकारा गया मानते हैं । ''शारदा तिलक'' में श्री लक्ष्मण देशिकेन्द्र द्वारा निरूपित सिद्धान्त, जैसे-''सभी भूतों की चेतना ही शब्द-ब्रह्म है'', की पुष्टि करते हुये कहा गया है : -

''शब्द ब्रह्मेति शब्दार्थ शब्दमित्यपरे जगुः ।
न हि तेषां तयो सिद्धिर्जडत्वादुभयोरपि ।।
चैतन्यं सर्वभूतानां शब्दब्रह्मेति मे मतिः ।।''

अर्थ सृष्टि के प्रसंग में लक्ष्मण देशिकेन्द्र की उक्ति निम्नलिखित है :-

अथ बिन्द्वात्मनः शम्भोः कालबन्धोः कलात्मनः ।
अजायत जगत् साक्षी सर्वव्यापी सदाशिवः ।।

इस श्लोक में "शम्भोः" शब्द के विशेषण के रूप में "कालबन्धोः" तथा "कलात्मनः" का उल्लेख किया गया है। यहाँ काल शब्द "महाकाल" का प्रतिपादक है, जो उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार का सामान्य कारण माना जाता है। जिसे हम अनादि ब्रह्म के रूप में स्वीकार करते हैं । तन्त्रों में इसी महाकाल के साथ काली के विपरीत रतासक्त-स्वरूप का वर्णन किया गया है । काल के स्वरूप की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि -

" अनादिर्भगवान् कालो नान्तोऽस्य द्विज विद्यते ।
अव्युच्छिन्नास्ततस्त्वेते सर्गस्थित्यन्त संयमाः ।।"

यहाँ कालबन्धोः का तात्पर्य कालात्मा है। अथवा काल का निमित्त तत्व है। कुछ भाष्यकारों के अनुसार "कालबन्धोः" शब्द का अर्थ ज्ञानात्मा माना गया है तो कुछ के अनुसार - "यद्वा काल शब्देन महाकालो मकारस्य रुद्रमूर्ति गृहीता।"

इस प्रकार सृष्टि-रचना -विधान को प्रस्तुत करते हुए तन्त्र का कथन है कि सर्वव्यापी सदाशिव से ईश (ईश्वर) का उद्‌भव हुआ और ईश या ईश्वर से रुद्र की उत्पत्ति हुई और इस रुद्र से विष्णु तथा ब्रह्मा का समुद्‌भव हुआ ।

पुराणों के अनुसार विष्णु से ब्रह्मा का उद्‌भव हुआ और ब्रह्मा से रुद्र की उत्पत्ति हुई । यहाँ उल्लेख्य है कि तन्त्र का सृष्टि-सिद्धान्त जहाँ सृष्टि-रचना-पक्ष पर आधारित है वहीं पौराणिक सिद्धान्त परम्परा पर आधारित है।

तत्व-सृष्टि के प्रकरण में सर्वसृष्टि का मूल पर-वस्तु अव्यक्त को माना गया है। इस तरह अव्यक्त बिन्दु से शब्द-ब्रह्म की विकृति के कारण महत्तत्व का प्रादुर्भाव हुआ । सांख्य एवं शैव-दर्शन में प्रकृति से महत्तत्व की उत्पत्ति मानी गई है । किन्तु, शैव-मत में इसे बुद्धि-तत्व की संज्ञा दी गई है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि महत्तत्व सत्व-रज-तमादि गुण त्रयात्मक है। अन्तःकरण, मन, बुद्धि, अहंकार तथा चित्त-स्वरूप चतुष्टयात्मक है। शैव-मत में इनकी

संख्या छः मानी गई है। ईशान शिवोक्त निम्नलिखित श्लोक द्रष्टव्य है -

''बोद्धव्या लक्षणा सैव प्रकृतिः शक्तिजृम्भिता ।
''बुद्धितत्वम् भवेत् व्यक्तं सात्विकं गुणमाश्रिता ।।
''सैव बुद्धि महन्नाम तत्वं सांख्ये निगद्यते''।

सांख्य के अनुसार सत्व,रज एवं तम के साम्यावस्था-स्वरूप से प्रकृति के अव्यक्त स्वरूप का प्रादुर्भाव हुआ माना जाता है। अव्यक्त से महत्तत्व, महत्तत्व से तीन प्रकार के अहंकार का उद्‌भव हुआ। जैसे-वैकारिक, तैजस् एवं भूतादि । वैकारिक सत्व गुणात्मक अहंकार से इसके दस देवताओं का समुद्‌भव हुआ । जैसे -दिशा, वायु, अर्क, प्रचेता, अश्विनी कुमार, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र , मित्र तथा चन्द्रमा । ये सभी इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता हुए ।

तैजस् अहंकार से इन्द्रियों की तन्मात्राओं की उत्पत्ति हुई । जैसे -श्रोत्र, घ्राण, त्वक्, चक्षु, तथा जिह्वादि पंच ज्ञानेन्द्रिय, वाक्, पाणि, पाद, पायु, तथा उपस्थादि पंच कर्मेन्द्रिय तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध आदि ये तन्मात्रायें हैं । शब्द-तन्मात्रा से आकाश, स्पर्श-तन्मात्रा से वायु, रूप-तन्मात्रा से तेज, रस-तन्मात्रा से जल तथा गन्ध-तन्मात्रा से पृथ्वी का उद्‌भव हुआ । यथा-

''शब्दः स्पर्शश्च रूपश्च रसो गन्धो च पञ्चमम् ।
तन्मात्रादेव विषया भूतादेरभवन् क्रमात् ।।
ततः सम्भवद् व्योमः शब्द तन्मात्र रूपकम् ।।
स्पर्शात्मकस्ततो वायुस्तेजो रूपात्मकं ततः ।।
आपो रसात्मिकास्तस्मात्ताभ्यो गन्धात्मिका मही ।
ततः स्थूलानि भूतानि पञ्च तेभ्यो विराडिति ।।''

रूप अथवा वर्ण (रंग) के आधार पर पंच महाभूतों की विवेचना करते हुए कहा गया है कि-आकाश का रंग श्वेत, वायु का कृष्ण, अग्नि का रक्त, जल का अभास्वर शुक्ल तथा पृथ्वी का रंग पीत (पीला) है। इस सन्दर्भ में तन्त्र का कथन निम्नलिखित है -

स्वच्छं वियत् मरुत्कृष्णो रक्तोऽग्निर्विशदं पय:।। 2 ।।
पीता भूमिन् पञ्चं भूतान्येकेका धारणो विदु: ।।
शब्द स्पर्श रूप रस गन्धा भूत-गुणा स्मृता: ।। 22 ।।
(शा० ति०)

"वायवीय संहिता" के अनुसार भूतों के कारण-स्वरूप विन्दु से शक्ति-पद, शक्ति-पद से शान्ति-पद, शान्ति-पद से विद्या-पद, विद्या-पद से प्रतिष्ठा-पद तथा प्रतिष्ठा-पद से निवृत्ति-पद का समुद्भव हुआ है। यथा -

शक्ति: प्रथम संभूता शान्त्यतीत पदोत्तरा ।
शान्त्यतीत पदाच्छक्तेस्तत: शान्तिपदं क्रमात् ।।
ततो विद्यापदं तस्मात्प्रतिष्ठापद संग्रह: ।
निवृत्ति पदमुत्पन्नं प्रतिष्ठापदत: परम् ।।
एवमुक्त्वा समासेन सृष्टिरीश्वर चोदिता ।
आनुलोम्यादथै तेषां प्रतिलोम्येन संहृति: ।।
अस्मात् पञ्चपदोद्दिष्टान्न-सृष्ट्यन्तरमिष्यते।
कलाभि: पञ्चभिर्व्याप्तं यस्माद्विश्वमिदं जगत् ।।

अत:, चराचर जगत् पंच भूतात्मक है । पर्वत, वृक्ष आदि अचर या स्थावर जीव-जंगम् हैं । चर जीव-जङ्गम् तीन भागों में विभक्त है। (1) स्वेदज (2) अण्डज तथा (3) पिण्डज । स्वेदज की संख्या 40 हजार है। इन्हें अयोनिज भी कहा जाता है। अण्डजों को तिर्यक् योनि भी कहा जाता है । जैसे-पक्षी, सर्प , ग्राह, चींटी, कच्छुआ आदि । शुक्र-शोणित के संगम से पिण्डजों की उत्पत्ति होती है। रज की संख्या अधिक होने से नारी, रेतस् की संख्या अधिक होने से नर तथा रज एवं रेतस् की संख्या सम होने पर नपुंसक का जन्म सम्भव होता है। पिण्डज में पशु और मनुष्य दोनों आते हैं । क्रमश: पशु से मनुष्य की काया चैतन्य है । अर्थात् मनुष्य का शरीर साधन-स्वरूप माना गया है । इस शरीर-स्थित परा-पश्यन्ती, मध्यमा एवं बैखरी के अनुसन्धान और तत् चिन्तन के द्वारा मनुष्य ईश्वरत्व को

प्राप्त करने में सक्षम-समर्थ हो जाता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि ऊर्जा का प्रवाह अधोगामी होता है । इसी तरह परम ऊर्जा का भी प्रवाह अधोगामी है । अर्थात् पूर्ण ऊर्जावान् के विस्फोट से क्रमशः न्यूनतम ऊर्जा पुंजों की रचना सम्भव हुई है। सम्पू ' सृष्टि की रचना का मूल ऊर्जा-पुंज सदाशिव है। ऊपरी क्रम से निम्नक्रम की ओर सृष्टि का उद्‌भव निम्नलिखित है -

शुद्धात्मा (सदाशिव) निर्गुण
|
सकल शिव
|
ईश (ईश्वर या महाविष्णु)
|
रुद्र - (सकला-शक्ति)
|
विष्णु - (सकला-शक्ति)
|
ब्रह्मा - (सकला-शक्ति)
|
विशिष्ट देवात्मा - (सकला-शक्ति)
|
देवात्मा - (सकला-शक्ति)
|
मनुष्य
अन्य जीवात्मायें

इस प्रकार ब्रह्माण्ड रचना बहुआयामी स्तर पर सम्पन्न हुई मानी जाती है। तन्त्र एवं योग के अनुसार यह सृष्टि मूलतः आठ आयामों के स्तर पर सम्पन्न हुई मानी जाती है। भेदोपभेद के कारण

इन आयामों की संख्या 16 से लेकर 36 हैं । किन्तु, पूर्ण ऊर्जस्विता के आधार पर इनकी संख्या आठ ही सर्वमान्य हैं । इन्हीं आठ आयामों में स्थित ऊर्जा-पुंजों में विस्फोटों (संकल्पनाओं) के कारण अनन्त कोटि देवात्माओं, जीवात्माओं एवं प्रकृति का उद्‌भव तथा विकास हुआ है। आयामों के नाम रूपालंकार-भेद के कारण निम्नलिखित हैं :-

(1) सदाशिव (निर्गुण, शुद्ध ब्रह्म)

(2) सदाशिव (सकल शुद्धात्मा)

(3) ईश (ईश्वर या महाविष्णु या सकल परमात्मा) अर्द्धनारीश्वर।

(4) रुद्र- सकला-शक्ति

(5) विष्णु- सकला-शक्ति

(6) ब्रह्मा-सकला-शक्ति

(7) प्रकृति

(8) जीव

अधोर्ध्व-क्रम से प्रत्येक आयामी सूक्ष्मातिसूक्ष्म होते चले जाते हैं । सूक्ष्म रूप से सूर्य-किरणों के सात रंग, जैसे-इन्द्रनील, स्वर्ण, हरित, पीत, खवर्ण तथा लाल इन्हीं सात आयामों के प्रतीक हैं । ध्वन्यात्मक रूप से अ, म, य, र, ल,व, ह इन्हीं आयामों के प्रतीक हैं । सकल शिव के छः आम्नाय, जैसे - 1. ईशान, 2. सद्योजात, 3. तत्पुरुष, 4. वामदेव, 5. अघोर, 6. कालाग्नि भी इन्हीं आयामों के द्योतक हैं। निष्कल शिव का कोई आम्नाय परिलक्षित नहीं होता । इसीलिए, उसका यहाँ उल्लेख नहीं किया गया है। इन्हीं आयामों को क्रमशः देव-त्रिलोकी असुर-त्रिलोकी एवं भौम-त्रिलोकी के नाम से जाना जाता है।

(1) देव-त्रिलोकी - जहाँ देवात्माओं का वास होता है। जैसे- द्यौः लोक तथा अन्तरिक्ष

(2) भौम-त्रिलोकी -जहाँ मानवात्मायें तथा तिर्यक्‌योनि गत आत्मायें निवास करती हैं ।

(3) असुर त्रिलोकी-अग्निलोक, वायुलोक, इन्द्रलोक

शास्त्रों में इस सृष्टि-विस्तार के विषय में जो वर्णन मिलता है उसके अनुसार भू-पिण्ड से लेकर सत्य-लोक पर्यन्त समस्त लोकों की माप निम्नलिखित हैं :-

1. भू-पिण्ड
2. भू-पिण्ड के ऊपर 9 स्तोम तक अग्निमयी पृथ्वी है ।
3. अग्निमयी पृथ्वी अर्थात् 9 स्तोम से 15 स्तोम तक अग्निगर्भा वायुमयी पृथ्वी है,
4. अग्नि-गर्भा वायुमयी पृथ्वी से ऊपर अर्थात् 15 स्तोम से 21 स्तोम पर्यन्त वायु-गर्भिता आदित्यमयी पृथ्वी है,
5. वायु-गर्भिता आदित्यमयी पृथ्वी के ऊपर अर्थात् 21 स्तोम से 33 स्तोम तक सोमगर्भित विष्णु है, जो क्रमश: पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्यौ: तथा आप: आदि चारों लोको का आरम्भक है।
6. सोम-गर्भित विष्णु से ऊपर अर्थात् 33 स्तोम से 48 स्तोम पर्यन्त ब्रह्मा है। यहाँ प्राणमय ब्रह्म तथा सत्यात्मा परिव्याप्त रहता है। यह द्यौ: है । यह सत्य है।

उपरोक्त शास्त्र-मत से यह सृष्टि निष्कल शिव से उत्पन्न हुई है, जो सकल (सगुण) अवस्था में षडाधारमय है। यह षडाधारमय सृष्टि अनन्त लोकों में विभाजित है। इन लोकों में अनन्त देव-देवियाँ निवासित एवं भ्रमण-शील हैं। भौम-त्रिलोकी के जीवों की संरचना भी इसी षडाधारमय या छ: आयामी तत्वों से हुई है । विशेषकर मानव-शरीर की रचना सप्त आयामी शक्तियों, तत्वों से हुई है। और इस मानव-शरीर में सृष्टि के मूल ऊर्जा-स्रोत अर्थात् परमानन्द सदाशिव तक पहुँचने की क्षमता भरी पड़ी है। अर्थात् यह सम्पूर्ण जगत् शिव-शिवा रूपी परम ऊर्जात्मक सिन्धु का आर्वत है, लहर है, बुलबुला है।

शब्द-ब्रह्म : एक विवेचना

''शब्दो ब्रह्मास्ति'', या ''नादो ब्रह्मास्ति'' आदि शास्त्र-वचनों से यही ज्ञात होता है कि शब्द या नाद ब्रह्म-स्वरूप है। जिस प्रकार वैदिक ऋषियों ने ब्रह्माण्ड को देखकर, चकित होकर ''कुतः इयम् विसृष्टिः'' प्रश्न किया तथा उत्तर की प्रबल जिज्ञाशा तथा संकल्प के साथ सृष्टि-तत्व के अन्वेषण में रत हुआ। फिर, सृष्टि के मूल ऊर्जा पुञ्ज तक का अनुसन्धान करने में सफलता पायी। उसी प्रकार सृष्टि की समग्र चेतनता का भी अनुसन्धान कर ''शब्द-ब्रह्म'' की सर्वव्यापकता को भी जाँचा, परखा तथा उसका साक्षात्कार किया। भिन्न-भिन्न ऋषियों ने इस ''शब्द-ब्रह्म'' की उपासना के क्रम में महाबिन्दु को सदाशिव के रूप में ढूंढ़ निकाला। ''यथा ब्रह्माण्डे तथा पिण्डे'' के सिद्धान्त के आधार पर मानव-शरीर में महाबिन्दु के बीज रूप में ''बिन्दु'' या ''पराशक्ति'' को ढूँढ निकाला। इसी अनुसन्धान-क्रम में इन ऋषियों ने 42 भूत-लिपियों तथा पचास मातृकाक्षरों की खोज की। यही मातृकाक्षर शब्द-रूप में समस्त वेद शास्त्र, संहिता, पुराण की रचना के आधार बने।

''प्रवर्तन्ते क्रियाः सर्वा वाग्भूता वाग् विनिस्सृताः।''

किसी ने शब्द को आकाश का गुण माना तो किसी ने विश्व के निर्माण का प्रधान-तत्व (कारक) माना। किसी ने अनित्य उत्पाद-विनाश-शील तो किसी ने नित्य आर्विभाव-तिरोभाव- रूप में व्यङ्ग्य माना। निगम ने वेद बीज के रूप में ॐकार की महत्ता को स्वीकार किया है। योगियों ने भी ईश्वर के वाचक रूप में प्रणव को स्वीकार किया है।

''रहस्यागम'' के अनुसार काल (महाबिन्दु)-प्रादुर्भित बिन्दु स्थूल, सूक्ष्म तथा पर आदि तीन अवस्था में आविर्भूत होता है। यही अव्यक्त बिन्दु नाद तथा बीज-स्वरूप होकर आधिदैविक, आधि भौतिक तथा आध्यात्मिक आदि तीन अवस्थाओं में रहता है। आधिदैविक में अव्यक्त ईश्वर हिरण्यगर्भ विराट् स्वरूप में,

आधि भौतिक में कामरूप, पूर्णगिरि, जालन्धर तथा उड्डियान पीठरूप में तथा आध्यात्मिक रूप में परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा बैखरी रूप में शब्द ब्रह्म रहता है। इन चारों अवस्थाओं का स्थान-निर्धारण करते हुए भाष्कर राय का कहना है कि-

"परावाङ् मूल चक्रस्था पश्यन्ती नाभि संस्थिता ।
हृदिस्था मध्यमा ज्ञेया बैखरी कण्ठ देशगा ।।"

अर्थात् मूलाधार में स्थित वायु-संस्कारी-भूत शब्द-ब्रह्म-रूप स्पन्दन-शून्यावस्था में रहने वाला बिन्दु-रूप ही परा वाक् है । नाभि तक आते आते अभिव्यक्त हो, मनो-गोचर होने वाला वाक् ही पश्यन्ती हो जाता है। उसके बाद ऊर्ध्व-गमन करता हुआ हृदय तक आने पर उक्त वाक् अभिव्यक्त तदर्थ वाचक शब्द स्फोट रूप में, जिसे श्रवण ग्रहण करने की योग्यता रखता है, सूक्ष्म जपादि में बुद्धि-निग्राह्य होने पर मध्यमा कहलाता है। तत्पश्चात् वही वाक् ऊपर उठता हुआ मूर्धा से टकरा कर अलग-अलग एकल-ध्वनि-तरंग या संयुक्त ध्वनि तरंग (स्वर) के रूप में अभिव्यक्त होता है, जिसे कान सरलता से सुनने में सक्षम होता है, बैखरी कहा जाता है ।

उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि परावाक् मूलाधार में स्थित रहता है। इसकी अपर संज्ञा बिन्दु है । तन्त्र में इसे कुण्डलिनी शक्ति के नाम से जाना जाता है। यथा-

"यत्प्राप्य कुण्डलीरूपं प्राणिनां देहमध्यगम् ।
वर्णात्मनाऽऽविर्भवति गद्य-पद्यादि भेदतः ।।"(शा०ति०)

परा तथा पश्यन्ती अवस्था में शब्द-तत्व व्यक्त नहीं होता है। हृदय तल पर पहुँचने के बाद मध्यमा बुद्धि-ग्राहय वाक् हो जाती है। वेद द्वारा "त्रिधाबद्ध" सूत्र की व्याख्या करते हुए महर्षि पतञ्जलि द्वारा "त्रिषु स्थानेषु उरसि, कण्ठे, शिरसि च बद्धः", कहा गया है। शब्द-ब्रह्म के रहस्य को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि-

"सातत्व-संज्ञा चिन्मात्र ज्योतिषः संनिधेस्तदा ।
विचिकीर्षु र्घनीभूता क्वचिदभ्येति विन्दुताम् ।।

अर्थात् चैतन्य-रूपी प्रकाश का सान्निध्य प्राप्त कर शक्ति-तत्व क्रिया-प्रधान हो घनीभूत होकर "बिन्दु" रूप में प्रतिष्ठित होता है। इसको और स्पष्ट करते हुए निम्नलिखित कारिका में कहा गया है कि-

" अभिव्यक्ता पराशक्ति अविनाभाव लक्षणा ।
अखण्ड पर चिच्छक्तिर्व्याप्ता चिद्रूपिणी विभुः ।।
समस्त तत्व भावेन विवर्तेच्छासमन्विता ।
प्रयाति बिन्दुभावं च क्रिया प्राधान्य लक्षणम् ।।"

अर्थात् अविनाभाव सम्बन्ध-पूरित व्याप्तिगत पराशक्ति अभिव्यक्त होकर अखण्ड परा-चित्त-शक्ति के साथ व्यापक हो "एकोऽहम् बहुस्याम्" की संकल्पना से इच्छानुरूप समस्त तत्व-भाव के साथ क्रिया प्राधान्य लक्षण से युक्त बिन्दु-तत्व को प्राप्त होता है। यह बिन्दु तीन रूपों में विभक्त होती है-"स बिन्दुर्भवति त्रिधा" पर-शक्ति-तत्व या शिव-शक्ति-तत्व भेद से- "बिन्दुर्नादो बीजमिति ।" अर्थात्-बिन्दु, नाद तथा बीज ये तीन भेद हुए । अब बिन्दु से रौद्री-शक्ति, नाद से ज्येष्ठा-शक्ति तथा बीज से वामा-शक्ति उत्पन्न हुई । "प्रयोग-सार" की निम्नलिखित कारिका से यह प्रमाणित होता है । यथा-

बिन्दु शिवात्मकस्तत्र बीजं शक्त्यात्मकं स्मृतम् ।
तयोर्योगे भवेन्नादस्तेभ्यो जातास्त्रिशक्तयः ।।
रौद्री बिन्दोः समुद्भूता ज्येष्ठानादादजायत !
वामा बीजाद्भूच्छक्तिस्ताभ्यो देवास्त्रयोऽभवन् ।।"

अर्थात् बिन्दु और नाद के समवाय होने पर बीज की उत्पत्ति होती है । इस मन्त्रमयी शक्ति के दार्शनिक सिद्धान्त में शब्द-ब्रह्म का विवर्त ही यह सम्पूर्ण विश्व है।

इच्छा, ज्ञान-क्रिया-शक्ति के अधिष्ठाता देवता के रूप में रुद्र, ब्रह्मा तथा विष्णु का प्रकटीकरण होता है । पशुपति का वैदिक रूप अग्नि को माना जाता है । शक्ति-तन्त्र में अग्नि, सोम

तथा सूर्य-रूप में रुद्र, ब्रह्मा तथा विष्णु को मान्यता प्रदान की गई है। "बह्नीद्रर्क रूप स्वरूपिण:" इच्छा-ज्ञान-क्रियात्मक रूप से शक्ति का उद्‌भव माना गया है। बाद में इसे शास्त्रों में "इच्छा ज्ञान-क्रियात्माऽसौ" माना गया है ।

यह सम्पूर्ण जगत् क्रिया-शक्ति प्रधान है । यथा -

"सा क्रियाशक्तिरुदिता तत: सर्व जगत् परम् ।।"

इस तरह इच्छा-शक्ति का पुरुष-रूप रुद्र तथा नारी रूप गौरी, ज्ञान और क्रिया-शक्ति का ब्रह्मा की ब्रह्माणी-शक्ति तथा विष्णु की वैष्णवी-शक्ति के साथ युग्म बना । और तीनों शक्तियाँ जहाँ एकीकृत हो निवास करती हैं, उसे परम ज्योति ॐ कहा जाता है। इसलिए अ, उ तथा म इन तीनों वर्णों के अधिष्ठाता रुद्र-ब्रह्मा और विष्णु हुए । इसे ही श्रुति "सर्व ओंकार एव" कहती है। यही शब्द-ब्रह्म है। इसी की सम्पुष्टि करते हुए तन्त्र शास्त्र कहता है-

भिद्यमानात् पराद्विन्दोख्यातात्मा रवोऽभवत्

शब्द ब्रह्मेति तं प्राहु:मे सर्वागम विशारदा: ।।"

अर्थात् शक्ति की अवस्था में जो प्रथम बिन्दु उससे वर्णादि विशेष-रहित अखण्ड नाद-स्वरूप होने के कारण मात्र आवाज उत्पन्न होती है, उसे ही आगम-विदों ने शब्द-ब्रह्म माना है। सृष्टि करने के लिए उन्मुख परमशिव के प्रथम उल्लास मात्र अखण्ड अव्यक्त नाद-विन्दुमय व्यापक ब्रह्मात्मक शब्द को शब्द-ब्रह्म कहा गया है, जिसे निम्नलिखित कारिका और सुस्पष्ट करती है -

क्रियाशक्ति-प्रधानाया: शब्दं शब्दार्थ कारणम् ।

प्रकृते बिन्दुरूपिण्या: शब्द ब्रह्माभवत् परम् ।।"

यहाँ सविशेष उल्लेख्य है कि स्फोटवादी जिसे शब्द-ब्रह्म की संज्ञा देते हैं, वह निगमागम व तन्त्र सम्मत शब्द-ब्रह्म नहीं है । स्फोटवाद के दर्शन -सिद्धान्त के अनुसार आन्तर स्फोट को शब्द-ब्रह्म कहा गया है। अर्थात् निरंश अभिन्न नित्य बोधत्वभाव शब्दार्थमय आन्तर स्फोट ही शब्द-ब्रह्म है। वैयाकरण सिद्धान्त के अनुसार "

एक ही नित्य वाक्य द्वारा अभिव्यंग्य अखण्ड अभिव्यक्ति स्फोट, जो उसी रूप का है, शब्द-ब्रह्म है''- इस मत के अनुसार पूर्व वर्ण के उच्चारण से अभिव्यक्त तत् तत् पद-संस्कार की सहायता से अन्तिम पद-ग्रहण द्वारा उद्बुद्ध-वाक्य-स्फोट-लक्षण-शब्द, जो अखण्ड कार्य-प्रकाशक है, शब्द-ब्रह्म है। महावैयाकरण भर्तृहरि द्वारा ''वाक्यपदीय'' के ब्रह्म-काण्ड में शब्द-मूलक विचार का गम्भीर रूप से विमर्श किया गया है । उनका कथन है-,

''अनादिनिधनं ब्रह्म शब्द तत्वं यदक्षरम् ।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यत: ।।

अर्थात आदि तथा अन्त,जिसका नहीं होता, वह अक्षर अर्थात् विभक्त ककार आदि वर्णरूप है, वैखरी वाक्य के निमित्त अर्थ-भाव सहित घटादि विवर्त है, जिससे जगत् की प्रथम प्रक्रिया होती है, वह पश्यन्ती वाक् ही शब्द-ब्रह्म है। महा भाष्यकार महर्षि पतञ्जलि ने शब्द-ब्रह्म का निरूपण करते हुए निम्नलिखित वेद-मन्त्र की व्याख्या प्रस्तुत की है-

''चत्वारि श्रृंग त्रयो पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधाबद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्या आविवेश ।''
(म०ना०)

अर्थात् चार श्रृङ्.ग का तात्पर्य है- नाम, आख्यात्, उपसर्ग तथा निपात, तीनपाद का तात्पर्य है- भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान तीनों काल, दो शिर का तात्पर्य है - नित्य तथा कार्यरूप दो प्रकार के शब्द व्यंग्य तथा व्यंजक रूप सप्त हस्तासौ का तात्पर्य है- सात विभक्ति, त्रिधाबद्धो-का तात्पर्य है-उर, कण्ठ तथा मूर्धा, जहाँ शब्द आबद्ध रहता है। वृषभ अर्थात् रेत-वर्षण करने वाला अर्थात् शब्द द्वारा ज्ञान पूर्वक अनुष्ठान करने पर भगवती-रूप कुण्डली को जाग्रति का फल प्रदान करने वाला, एक प्रतीक, रोरवीति-अर्थात् शब्द करता है, अर्थात् शब्द-कर्म की प्रपञ्च विविक्षा करने वाला महादेव (शब्द) मरण धर्म को ग्रहण कर मनुष्य पिण्ड में प्रवेश किया''। (महाभाष्य पृ०सं०-417)

उपरोक्त व्याख्यानुसार महादेव या महान् देव स्वयं महादेव रुद्र का ही प्रतीक है। ऊपर कहा जा चुका है कि वेद में रुद्र को अग्नि-स्वरूप माना गया है। और "वह्नीन्द्रर्क स्वरूप:" सूत्रानुसार रुद्र-ब्रह्मा-विष्णु-स्वरूप शब्द होने के कारण ही महादेव शब्द-रूप सदाशिव का प्रतीक है।

स्फोटवाद-"स्फुट्यते व्यंज्यते वर्णैरिति स्फोट:" निरूक्ति के इस कथन के अनुसार स्फोट का अर्थ है "वर्णाभिव्यङ्ग्य:। " स्फुटति स्फुटी भवति अस्मादर्थ इति स्फोट: " इस निरूक्ति वचन के अनुसार यहाँ स्फोट का अर्थ है- अर्थ प्रत्यायक: । महावैयाकरण भर्तृहरि ने शब्द -ब्रह्म के रूप को श्रुति-सम्मत बनाने के लिये प्रकृत स्फोटात्मा नित्य शब्द के सम्बन्ध में विशद् व्याख्या की है। "घट मानय" अर्थात् "घट लाओ" इत्यादि वाक्य का उच्चारण करने पर घकारादि वर्ण कण्ठादि स्थान में वायु-संयोग के कारण समुत्पन्न होता है और जो श्रवणेन्द्रिय गोचर होता है, वह तत्काल नष्ट हो जाता है, वही शब्द है । इसके अतिरिक्त शब्द-तत्व नहीं है। इस शब्द से घट नामक वस्तु का रूप सामने उपस्थित होता है। इसलिये, शब्द अनित्य है यह नैयायिकों का मत है।

वैयाकरणों तथा नैयायिकों के कथनानुसार आवाज के निमित्त शब्द-व्यंञ्जक-ध्वनि कही जाती है और वही शब्द कहलाता है। इस ध्वनि से व्यड.ग्य शब्द की रचना होती है और वही शब्द वस्तु-वाचक होता है, अत:, नित्य है । इसे ही स्फोट कहा गया है। अर्थात् "घट-मानय" इत्यादि उच्चारित ध्वनि से वाचक नित्य शब्द (अभिव्यक्त) प्रकट होता है, इसलिये अर्थबोध होता है।

"एकं पदम् जैसे एकत्वावगाहिनी सर्वजन प्रसिद्ध प्रतीति में किसी का विश्वास न करना सम्भव नहीं । अर्थात् एकत्व वर्ण-निष्ठ नहीं होता है। अनेक वर्णों के मिलने से एक पद बनता है और अनेक पदों के मिलन से वाक्य की रचना होती है । एकाश्रयीभूत वर्ण तथा पद-समूह से व्यंग्य अवश्य भली-भाँति ज्ञात होता

है । अतः, इसी की संज्ञा स्फोट है।

किन्तु, आचार्य कुमारिल भट्ट ने 'मीमांसा-श्लोक वार्त्तिका में इस स्फोटवाद का खण्डन करते हुए कहा है कि -

''यस्यानवयवः स्फोटो व्यज्यते वर्णबुद्धिभिः ।
सोऽपि पर्यनुयोगेन नकेनापि विमुच्यते ।।

किन्तु, आलोचना-प्रत्यालोचना से सत्य सिद्ध नहीं होता है। सत्य-दोष-रहित होता है और खण्डन-मण्डन-दोष-पूर्ण । सत्य को विवेक की सहायता से अन्वेषित कर प्रस्तुत करना ही चैतन्य पुरुष का गुण है। अतः, स्फोटवाद की विवेचना करते हुए कहा जा सकता है कि प्रथम ध्वनि अभिव्यंजक होकर स्फोट को अस्फुट रूप से अभिव्यक्त करती है। उत्तरोत्तर अभिव्यंजक-क्रम से स्फुटतर तथा स्फुटतम होती जाती है। जिस प्रकार स्वाध्याय एक बार पढ़ने से पुष्ट नहीं होता, वल्कि अभ्यास द्वारा पुष्ट होता है - यही सिद्धान्त स्फोटवाद के लिए भी स्थिर सिद्धान्त माना जाना चाहिए।

''वाक्यपदीय'' में श्री भर्तृहरि ने उपरोक्त कथन की पुष्टि करते हुए कहा है कि -

नादैराहित बीजायामन्त्येन ध्वनिना सह ।
आवृर्त्ति परिपाकायां बुद्धौ शब्दोवधार्यते ।।

अर्थात् अन्त्य ध्वनि के साथ नाद उच्चारण करने पर आगे की ध्वनि के बीज या संस्कार आवृत्ति के परिपाक होने पर बुद्धि में शब्द निश्चित होता है। इसी निश्चितता को शब्द-ब्रह्मवादी वैयाकरणादि ब्रह्म- प्राप्ति कहते हैं । जैसे -

''शब्द-ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ।।''

कुछ लोगों के अनुसार शब्द पर विचार करते हुए कहा गया है कि वायु ही शब्द-तत्व में परिणत होती है। अन्य परमाणु को सर्वशक्तिमय होने के क्रम में भेद संसर्ग-वृत्ति से शब्द-भाव में परिणत होना मानते हैं। अन्य मतानुसार-अन्तर्ज्ञाता अर्थात् जीव सूक्ष्म वाक्-स्वरूप से रहकर अपना रूप अभिव्यक्त करने के लिए

शब्द-तत्व का विवर्त बनता है। इन्हीं तीन पक्षों की ओर संकेत करते हुए श्री भर्तृहरि ने वाक्यपदीय के "ब्रह्म-काण्ड" में निम्नलिखित श्लोक अंकित किया है-

वायोरणूनां ज्ञानस्य शब्दत्वापत्तिरिष्यते ।
कैश्चिद्दर्शन भेदोऽत्र प्रवादेष्वनवस्थित: ।।

इस "शब्द और शब्दार्थ -सिद्धि से शब्द-ब्रह्म के अन्वेषण-क्रम में दो प्रकार के तत्व का जड़ होना स्वीकृत मान्यता नहीं है, इसे तन्त्र - शास्त्र भी मानता है। इसीलिए, श्री लक्ष्मण देशिकेन्द्र ने कहा है कि -

"नहि तेषां तयो: सिद्धिर्जडत्वादुभयोरपि ।
चैतन्यं सर्वभूतानां शब्द-ब्रह्मेति मे मति : ।।" शा.ति.

ब्रह्म पदार्थ सच्चिदानन्द-रूप है। इसीलिये, यह जड़ है तन्त्र-शास्त्रों में सभी प्राणियों की चेतनता को शब्द- ब्रह्म की संज्ञा दी गई है। यह मत "प्रयोग-सार" का भी है । जैसे-

सोऽन्तरात्मा तदा देवी नादात्मा नदते स्वयम् ।
यथा संस्थान भेदेन संभूयो वर्णतां गत: ।।
वायुनां प्रेर्यमाणोऽसौ पिण्डाद् व्यक्तिं प्रयास्यति ।

संक्षेपत:, यही समझ बनती है कि वाक्-तत्व परा, पश्यन्ती , मध्यमा तथा बैखरी भेद से "चत्वारि वाग्परिमिता" शास्त्र-मत सर्वसम्मत है। किसी-किसी के द्वारा परा-तत्व को पर-ब्रह्म के रूप में प्रस्तुत किया गया है तो किसी-किसी के द्वारा वाक् के भेद-त्रय यथा-परा, पश्यन्ती तथा मध्यमा को ही परा-वाक् माना है। जैसे -"तदक्षरं शब्दरूपं सा पश्यन्ती परा हि वाक् ।" इस सिद्धान्त का निरूपण किया है।

परा, पश्यन्ती तथा मंध्यमादि ये तीन तरह के परा-वाक् स्थूल, सूक्ष्म तथा परादि रूप- भेद के कारण नौ प्रकार के हैं ।

1- वर्णादि के प्रविभाग-रहित स्वर-प्रधान-संगीत-रूप
वाक्--"स्थूल-पश्यन्ती"

2- जिज्ञाशा रूप वही वाक्--"सूक्ष्मा-पश्यन्ती",

3- जिज्ञाशा-रहित संविद् रूप-"परा-पश्यन्ती" ।

मध्यमा के तीन रूप -

1- मृदङ्ग वाद्यों पर हाथ के आघात से उद्भूत ध्वनि-रूप वाक्-"स्थूल-मध्यमा",

2- विवादयिषा रूप वाक्-"सूक्ष्मा-मध्यमा,"

3- इसी का इच्छा-रहित निरुपाधिक वाक्--"परा-मध्यमा",

बैखरी के तीन रूप-

1- परस्पर वैलक्षण्योत्पादक स्फुटित वर्णरूप वाक्-"स्थूला-बैखरी",

2- विविक्षा रूप स्फुटीकृत वर्णरूप वाक्-"सूक्ष्मा-बैखरी",

3- विविक्षारहित स्फुटीकृत वर्णरूप वाक्-"परा-बैखरी",

वाक्-तत्व के अवस्था-भेद से वैयाकरण-सिद्धांत नव-रूप मानता है। किन्तु, तन्त्र वाक्-तत्व के चार भेद मानता है। साथ ही इनके वास-स्थान की भी व्याख्या करता है। अतः, पूर्व में शैव-सिद्धांत के वर्णित श्लोक का उल्लेख पुनः करना चाहूँगा-

"परा वाङ् मूल चक्रस्था पश्यन्ती नाभि संस्थिता ।
हृदिस्था मध्यमा ज्ञेया बैखरी कण्ठ-देशगा ।।"

अर्थात् , परा-वाक् का निवास स्थान मूलाधार-चक्र, पश्यन्ती वाक् का नाभि, मध्यमा का हृदय तथा बैखरी का कण्ठ-प्रदेश है। अतः, व्यावहारिक स्तर पर तथा तन्त्र-शास्त्र के अनुसार भी यह सिद्ध होता है कि परम बिन्दु (सदाशिव) का अंश रूप बिन्दु ही परा-वाक् या शब्द-ब्रह्म-स्वरूप है। जिस प्रकार सृष्टि का विकास निर्गुण सदाशिव से प्रारम्भ होकर तदंश जीवात्मा रूप में जगत् के समस्त चर-अचर शरीर में गर्भित रहता है तथा लय-काल में पुनः सदाशिव रचित अखिल ब्रह्माण्ड में सूक्ष्म या सूक्ष्मतर रूप में विलीन हो जाता है, उसी प्रकार समस्त सृष्टि की चेतना सदाशिव से प्रकट होकर बिन्दु या परा-वाक् के रूप में जीवात्मा के साथ चर-अचर प्राणियों के शरीर में स्थित हो क्रियात्मक सृष्टि की रचना में व्यस्त

होती है तथा शरीर-पतन के बाद निखिल ब्रह्माण्ड में सूक्ष्म या सूक्ष्मतर रूप में विलीन हो जाती है। तन्त्र इसे कुण्डलिनी शक्ति, मातृका शक्ति, विद्युत् या तड़ित् शक्ति की संज्ञा से वर्णन करता है तो शैव-दर्शन परमशिवात्मक-ऊर्जा-पुञ्ज के नाम से । अर्थात् सर्व चेतना-स्वरूप सदाशिव ही परम शब्द-ब्रह्म-स्वरूप है,जो शब्द-ब्रह्म-रूप (ध्वनि रूप) में स्थूल-शरीर में निवासित हो सम्पूर्ण वाड.मय-ब्रह्माण्ड की रचना करता है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करने पर ज्ञात होता है कि सदाशिव का चैतन्य परा-वाक्-रूप प्रत्येक प्राणी के शरीर-स्थित मूलाधार-चक्र में रहस्यात्मक रूप से स्थित रहता है, जो सोम-सूर्याग्नि भेद अर्थात् इच्छा-ज्ञान-क्रिया-भेद से सजग होता है, जाग्रित होता है और वायु-प्रेरित हो मूलाधार से उठ कर क्रमशः नाभि(स्वाधिष्ठान) चक्र) , हृदय(अनाहत-चक्र) में विकसित होता हुआ कण्ठ प्रदेश (विशुद्ध-चक्र) तक आता है तथा टेटुआ (स्वर-यन्त्र या लम्बिका-चक्र) में आते-आते पूर्ण विकास को प्राप्त करता हुआ मुख से बाहर निकलता है । सामान्य तौर पर, केवल अचर जीव-धारियों के अतिरिक्त चर जीव-धारियों में शब्द-ब्रह्म का स्वरूप इसी क्रम से विकसित होता है। सोम-सूर्याग्नि के व्यावहारिक पक्ष पर विचार करने पर इच्छा-ज्ञान-क्रिया रूप स्पष्ट होता है। अर्थात्, सर्वप्रथम ऐन्द्रिक सम्वेदन-शीलता जाग्रत होती है। इस सम्वेदन-शीलता (विचार, इच्छा) से संकल्पित (इच्छा-प्रेरित) वस्तु का चित्र ज्ञानात्मक रूप में मस्तिष्क में इन्द्रियों के सम्मुख चित्रित हो उठता है, इसी ज्ञानात्मक भाव के कारण अग्नि (क्रियात्मक-शक्ति) क्रिया-शील हो जाती है और इड़ा-पिंगला द्वारा सम्प्राप्त वायु के प्रवेग से जब सुषुम्ना को प्रकम्पित करती है तब मूलाधार -चक्र-स्थित वायु में भी गति-शीलता आ जाती है और उसी गति-शीलता से प्रेरित हो परावाक् रूपी बिन्दु (निर्ध्वनित ध्वनि)-ध्वनित हो उठता है। वायु-संस्कार से, तत् सहयोग से वह ध्वनि नाभि-मार्ग होती हुई

अनाहत एवं कण्ठ-प्रदेश तक जाती है तथा मुख द्वारा प्रकट रूप से बाहर आती है। व्यक्त स्वर महाबिन्दु में विलीन हो जाता है। लेकिन, उसका नाश नहीं होता। आधुनिक विज्ञान के रेडियो, दूरदर्शन, इन्टर्नेट इसका प्रमाण सिद्ध कर चुके हैं । अर्थात् प्राण-धारियों द्वारा व्यक्त की गई आवाज को हू-ब-हू उसी रूप में आधुनिक यंत्र के द्वारा पुन:अभिव्यक्ति सम्भव होना, स्वर (ध्वनि या शब्द) की अनश्वरता का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

यहाँ सविशेष उल्लेख्य है कि चर योनियों में क्रमश: कीट,पशु, पक्षी तथा मनुष्य योनि के जीव-धारियों में बिन्दु-रूप परा-वाक् बैखरी-ध्वनि तक की यात्रा करने में सक्षम-समर्थ होता है। कलात्मक या भिन्न-भिन्न वर्णों की एकल-ध्वनि-तरंग को मुख से निकालने में पशुओं से कतिपय कीट (जैसे-भौंरा, मधु-मक्खी आदि) तथा पक्षी-गण अधिक सक्षम होते हैं । और समस्त चर-योनियों में मनुष्य इस कार्य में सर्वाधिक सक्षम और समर्थ प्राणी है।

कहने का तात्पर्य यह है कि केवल मनुष्य ही सर्वव्याप्त चेतनता को जाँचने, परखने तथा अभिव्यक्त कर उसके शुद्ध स्वरूप का साक्षात्कार करने में सक्षम है। इसीलिए भी, इस योनि को ब्रह्माण्ड की सर्वश्रेष्ठ योनि कहा गया है। मनुष्य मात्र पशुओं की भाँति कतिपय ध्वनि-तरंगों का ही उच्चारण नहीं करता वल्कि, ब्रह्माण्ड में परिव्याप्त विभिन्न मौलिक वर्णों के रूप में व्यक्त आवाज को स्वर-यन्त्र के बाहर आते ही मूर्धा, कण्ठ, तालु, जिह्वा-ओष्ठ, दाँत तथा नासिका की सहायता से भिन्न-भिन्न ध्वनि के एकल एवं मिश्रित तरंग को व्यक्त करने की कला जानता है। साथ-साथ इन एकल या मिश्रित ध्वनि-तरंगों के तदाकार रूप से ब्रह्माण्ड में परिव्याप्त ध्वनि-तरंगों के तात्विक रूप तथा प्रकाशकीय स्वरूप को पहचानने तथा भौतिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक रूपालंकार को सद्-निर्देशन में रूपायित करने की कला में भी सक्षम है। परावाक् रूप बिन्दु को महाबिन्दु रूप में एकाकार करने की कला (विज्ञान)

में भी सक्षम सिद्ध होता है। तभी तो शास्त्र ऐसी घोषणा करता है कि -

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च ।

तथाक्षरात् सम्भवतीह विश्वम् । ।

अर्थात्, जिस प्रकार मकड़ा द्वारा अपने मुख से निकाले गये तन्तुओं से जाल का निर्माण किया जाता है तथा पुनः उन जाल-तन्तुओं को खुद के द्वारा उदरस्थ कर लिया जाता है, ठीक उसी प्रकार अक्षर से विश्व का निर्माण होता है, विकास होता है। विश्व में अक्षर गुञ्जायमान रहता है और अक्षर में ही विश्व का लय होता है।

अकार से प्रारम्भ होकर हकार तक के अक्षर ''मकार'' में विश्रान्ति पाते हैं । इसी की अभिव्यक्ति ''अहम्'' शब्द है। इसको इस तरह भी कहा जा सकता है कि प्रकाश-स्वरूप अकार का विमर्श -रूप हकार का प्रतिबिम्ब चित्त में पड़ने से सर्वप्रथम अव्यक्त ''अहम्-भाव'' की बिन्दु-रूप में उत्पत्ति हुई । इसे परा-वाक् की संज्ञा दी गई । यही परा अक्षर-रूप में अंकुरित हो पश्यन्ती (अव्यक्त नाद,) मध्यमा (व्यक्त नाद, अनहद नाद) तथा बैखरी (वर्णरूप में परिणत होकर) बाहर निकलती है। इसीलिए अहं'' को मातृकाक्षरों का बीज कहा जाता है। यही ''अहम्'' रूप बिन्दु आत्मा है । स्थूल या सगुण-रूप से इसी आत्मा (शब्द-ब्रह्म) को सूर्य रूप में उपासना की जाती है। निगम के अनुसार-

सूर्य आत्मा जगतस्थुष्श्च'' ।

अर्थात् चराचर जगत् की आत्मा सूर्य है।''

ऊपर कहा जा चुका है कि बिन्दु-रूप परा-वाक् बैखरी के रूप में मुख से बाहर निकल कर ब्रह्माण्ड में परिव्याप्त तत्वों में तिरोहित हो जाता है तथा सूक्ष्मतम अवस्था को प्राप्त कर प्रकाशकीय स्वरूप धारण कर लेता है। अर्थात् शब्द-ब्रह्म प्रकाशकीय पिण्ड सूर्य की किरणों के रूप में परिणत हो जाता है। ध्यातव्य है कि सूर्य के प्रकाश में सात रंग की किरणों का समावेश होता है। जैसे -

1- इन्द्रनील
2- नील
3- खवर्ण
4- हरित
5- पीत
6- स्वर्ण
7- रक्त

सूर्य की भाँति ही बिन्दु-रूप परा-वाक् में छिपे सभी मातृकाक्षरों की परिणति पाँच महा तत्वों एवं पाँच प्रकाशकीय किरणों (रंगों) में होती है। जैसे-

1- उ, ऊ, ओ, ग, ज, ड, द, ब,ल तथा ल- पृथ्वी-रंग-पीला,
2- ॠ, ऋ, ओ, घ , झ, ढ, ध, भ, व तथा स-जल-अभाश्वर श्वेत,
3- अ,ई, ए,ख, छ, ठ, थ, फ, र तथा क्ष -तेज-रक्त-वर्ण,
4- अ, आ, ए, क, च, ट, त, प, य तथा ष-वायु-हरित-वर्ण,
5- लृ, लृ, अ, ङ., त्र, ण, न, म, श तथा-ह-आकाश-नीला, धूसर),

मातृकाक्षरों की उत्पत्ति एवं तात्विक रहस्य के अन्वेषण से ज्ञात होता है कि अ से अ: तक सौम्य-वर्ण है। इनकी उत्पत्ति चन्द्रमा से हुई मानी जाती है। फकार से मकार तक के स्पर्श वर्ण सौर वर्ण है । अर्थात् इनकी उत्पत्ति सूर्य से हुई मानी जाती है तथा यकार से क्षकार तक के आग्नेय वर्ण हैं। अर्थात् इनकी उत्पत्ति अग्नि से हुई मानी जाती है।

क से लेकर भ तक के चौबीस वर्ण चौबीस प्रकृति आदि तत्वों के प्रतीक हैं। मकार पुरुष-स्वरूप है, आत्मा-स्वरूप है। यथा-''अन्त्य आत्मा रवि: प्रोक्त: । ''यकार से क्षकार तक दूष्य वर्ण हैं, व्यापक हैं तथा ये सात धातुओं के भी प्रतीक हैं। अ, इ,उ, ऋ, लृ , ए तथा ओ-शिवमय पुरुष-स्वर हैं । दीर्घ स्वर जैसे - आ, ई, ऊ, ॠ ॡ तथा औ शक्तिमय अर्थात् स्त्री-रूप-स्वर हैं ।

निवास-स्थल के दृष्टिकोण से अ,इ,उ, ऋ, लृ का निवास-स्थल पिंगला नाड़ी है । ''ए, ऐ, ओ, औ - इन -चार स्वर

वर्णों का निवास-स्थल सुषुम्ना नाड़ी है। इन्हें नपुंसक वर्ण भी कहा जाता है।

इस तरह शब्द-ब्रह्म बहुआयामी है। सर्वव्यापक है। शिव-शक्तिमय है तो परम शिव-रूप अर्थात् निष्कल, निर्गुण, एवं अलख सदाशिव-रूप है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि मनुष्य के शरीर में बिन्दु-स्वरूप शक्तिमय सर्ववर्णमय परा-वाक्-रूप में ईश्वर का निवास है। वही शब्द-ब्रह्म-रूप है। उसका ध्यान परा-पश्यन्ती मध्यमा के रूप में मूलाधार-स्वाधिष्ठान तथा अनाहत में होता है। बिन्दु सर्ववर्णमय होने के कारण सर्वमन्त्रमय है।

चूँकि, शास्त्रों में "सर्वमन्त्रमय देवता:" कहा गया है इसलिए बिन्दु, परा-वाक् (कुण्डलिनी) में सभी देव-देवी-शक्तियाँ आबद्ध रहती हैं मन्त्रों का मूल-स्त्रोत वही है। उससे ही वर्णों -शब्दों -वाक्यों की रचना सम्भव होती है। चिदात्मा या जीवात्मा को परमात्मा से मिलाने का कार्य भी वही करता है। तात्पर्य यह कि सर्व वर्णमय, सर्वमन्त्रमय शब्द ही पर-देवता का अनश्वर सकल तथा निष्कल स्वरूप है। अत:, शब्द-ब्रह्म है, शाश्वत है।
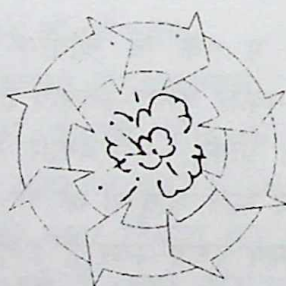
मानव जीवन का लक्ष्य है - मोक्ष-प्राप्ति

''प्रत्यक्षमेकम् दर्शनम्'' के सिद्धान्त पर आधारित है भौतिवाद का दर्शन। इस सिद्धान्त के अनुसार जगत् को सत्य माना गया है तथा मनुष्य को सर्वशक्ति-सम्पन्न। जगत् को सत्य मानकर चलने वाले भौतिकवादियों ने जागतिक क्रिया-कलापों में मनुष्य को सर्वाधिक रुचि लेने की प्रेरणा दी । इस सिद्धान्त के अनुसार मानव-जीवन का सर्व प्रमुख लक्ष्य अर्थ और काम-भाव को माना गया। यथा-''अर्थकामौ पुरुषार्थौं''। अर्थ की प्रधानता इसलिए स्वीकार गई कि यह मनुष्य को शारीरिक-बल के साथ अन्य सुख की उपलब्धि में सहायक है। इसके बाद प्रमुखता दी गई काम-भाव को, जो मनुष्य को मानसिक तृप्ति प्रदान करता है। इस तरह भोगवाद या उपभोक्तावाद का जन्म हुआ। किन्तु, यह सिद्धान्त जिन लोगों ने निरूपित किया और तत् मार्ग पर चलने के लिए लोगों को प्रेरित किया, उनके विषय में उपनिषद् ने कहा-''अन्धेन अन्धाः नीयमानः'' । अर्थात् अन्धों द्वारा अन्धों का मार्ग-प्रदर्शन करना । यहाँ अन्धा शब्द स्वभाविक तौर पर दृष्टि-हीन के लिए प्रयुक्त न होकर अज्ञानी के लिए प्रयुक्त हुआ है।

भौतिकवादियों से अलग हट कर कुछ लोगों ने अपना चिन्तन प्रस्तुत करते हुए आधिदैवी शक्तियों के महत्व को स्वीकारा तथा उनके द्वारा कर्म-परिणाम में परिवर्तन होने की सम्भावना को भी स्वीकार किया। इन चिन्तकों के द्वारा मनुष्य के तीन लक्ष्य या पुरुषार्थ निर्धारित किये गये। जैसे-धर्म, अर्थ और काम।

किन्तु, दर्शन का क्षेत्र जैसे-जैसे- विस्तृत हुआ, ऋषियों, चिन्तकों द्वारा सृष्टि-तत्व, प्रकृति-तत्व, आत्म-तत्व के साथ शिव-शक्ति-तत्व का अनुसन्धान किया गया, वैसे-वैसे मानव की अल्पज्ञता, अज्ञानता का पता उन्हें लगा । इन चिन्तकों ने ऊपर वर्णित तीन पुरुषार्थों को महत्वहीन और नश्वर माना । और साथ ही अज्ञानमय भी माना। इन मनीषियों ने मोक्ष को मनुष्य का चरम एवं

परम लक्ष्य माना। इस तरह पुरुषार्थ की संख्या चार हो गयी । अर्थात् ''धर्मार्थकाम मोक्षः इति चतुर्विध पुरुषार्थः और आधिभौतिक-वाद के साथ-साथ आधिदैविक तथा अध्यात्मवाद का स्वरूप भी उभर कर सामने आया।

आधिभौतिक-वाद के सम्बन्ध में प्रारम्भ में ही कहा जा चुका है। आधिदैविक-वाद का विकसित रूप ही धर्म का स्वरूप धारण कर समाज में संस्कृति तथा सभ्यता के विकास में सहयोगी बना। इसके समर्थन में कला-तथा साहित्य की मुख्य भूमिका रही । स्थापत्य-कला के रूप में मन्दिर, बिहार, मस्जिद, गुरुद्वारा, चर्च, स्तूप, पिरामिड तथा मूर्ति-कला के रूप में सौम्य तथा घोर स्वरूप की प्रतिमाओं की रचना हुई। धार्मिक साहित्य का विशाल भण्डार इसी आधिदैविक-प्रकृति के कारण तैयार हुआ, जिसने चार्वाकीय (भौतिकवाद) सिद्धान्तों से अलग हट कर मानव-समुदाय में नैतिक बल, चारित्रिक बल तथा भक्ति-भाव को उजागर करने में प्रबल सहयोग दिया। साथ ही, मनुष्य मात्र को सद्कर्म की ओर उन्मुख किया। सामाजिक सौहार्द्र, स्थापित करने में सहयोग किया। मनुष्य के हृदय-स्थल में देवता के वास होने की ध
ारणा को पुष्ट कर अनैतिक, कार्यों से विलग होने की प्रवृत्ति पैदा की । इस तरह धर्माचार में निरत रहने वाले मानवों के लिए ऋषियों ने मोक्ष को जीवन का चरम लक्ष्य मानकर अध्यात्म की ओर अग्रसर होने, उन्मुख होने की प्रेरणा दी ।

ऊपर कहा जा चुका है कि मानव-जीवन का चरम एवं परम लक्ष्य मोक्ष को माना गया है। आखिर यह मोक्ष है क्या ? क्यों यह मानव-जीवन का चरम लक्ष्य है । इसकी प्राप्ति क्या सम्भव है ?और सम्भव है तो कैसे ? मोक्ष के सम्बन्ध में जानने से पहले यह भी जानना परम आवश्यक है कि किस बन्धन से मुक्ति का नाम मोक्ष है ?

इस बन्धन के सम्बन्ध में शास्त्र-मत के अनुशीलन

करने पर ज्ञात होता है कि इस संसार की रचना अज्ञान-मल के कारण हुआ है और ज्ञान ही मोक्ष का कारण है। अज्ञान और मल की परिभाषा के सम्बन्ध में कहा गया है कि- "अज्ञान अर्थात् तिमिर परमेश्वर स्वातन्त्र्य मात्र समुल्लासित स्वरूप को गोपनीय रखकर, आत्मानात्मा का अभिमान, स्वभाव, अपूर्ण ज्ञान-रूप-तत्व आदि आणव-मल संसार की रचना का कारण है । यथा -

स्वातंत्र्यहानिबोर्धस्य स्वातंत्र्यस्याप्यबोधता ।
द्विधाणवंमलमिंद स्वस्वपापहानितः ।।

अर्थात् बोध का स्वातन्त्र्य हानिरूप तथा स्वातंन्त्र्य का अबोधता-रूप ये दो भेद आणव-मल के माने गये हैं, जिसके द्वारा स्वरूप की उपहानि होती है । इस प्रसंग में माया की व्याख्या करते हुए शास्त्रों ने निम्नलिखित परिभाषा दी है-

"भिन्न वेद्य प्रथाऽत्रैव मायाख्यम् ।"

अर्थात् माया के सम्बन्ध में भिन्न वेष-प्रथाएँ हैं । माया-जनित मल ही अर्थात् कर्म सम्बन्धी मल ही संसार की उत्पत्ति का कारण माना जाता है। "मालिनी विजयोत्तर" में इसको स्पष्टतः कहा गया है कि-

"संसार कारणं कर्म संसाराङ्कुर उच्यते ।
मलं कर्मनिमित्तं तु नैमित्तिक मतः परम् ।।"

अज्ञान की परिभाषा में भिन्नतायें दिखती है । इसी दृष्टिकोण से आचार्य अभिनव गुप्त ने "तन्त्रालोक" के प्रारम्भ में ही कहा है-

इह तावत्समस्तेषु शास्त्रेषु परिगीयते ।
आज्ञातं संसृतेहेतुर्ज्ञानं मोक्षैक कारणम् ।।22।।
मलमज्ञानमिच्छन्ति संसाराङ्कुर कारणम् ।
इति प्रोक्तं तथा च श्री मालिनी विजयोतरे ।।23।।

पौरुष बोधात्मकता से अज्ञान के दो भेद स्पष्ट होते हैं। यहाँ पौरुष अज्ञान की निवृत्ति की विवेचना की जाती है। किसी-किसी का कहना है कि दुरध्यव्यवसाय रूप बुद्धि-स्थित अज्ञान कर्म का कारण नहीं हो सकता । क्योंकि, कर्म का कारण शरीर ही होता है।

शरीर ही कार्य-कारणात्मक है, बुद्धि केवल कारणान्तः पाती होती है। यथा-"शरीर भुवनाकारो मायीयः प्रकीर्तितः ।" यह सिद्धान्त शास्त्र का है। तात्पर्य यह है कि शरीर की सम्भावना से जबतक निराशा नहीं होती तबतक निवृत्ति उत्पन्न नहीं होती । बुद्धिस्थ अज्ञान मात्र निवृत्ति होने के पश्चात् बौद्ध ज्ञान का उदय होता है। वही शुद्ध विकल्पात्मक हो कर विकल्प संसार की संज्ञा पाता है- जैसे-

सर्वो विकल्पः संसारः ।

किस तरह संसार के आविर्भावकत्व से संसारोत्तरकालिक मोक्ष-स्थिति प्राप्त होती है? क्योंकि, विकल्प परमार्थ परक होकर उसमे अवलिप्त रहता है। मोक्षार्थी के लिए शुभाशुभ विकल्प किसी तरह का भेद नहीं होता-क्योंकि दोनों ही बन्धन का कारण होता है । यथा-

"परमार्थ विकल्पेऽपि नावलीयते पण्डितः।
को हि भेदो विकल्पस्य शुभेवाऽप्यथवाऽशुभे ।।"

अतः, बौद्ध अज्ञान मात्र निवृत्ति से मोक्ष सम्भव नहीं होता है। दीक्षादि द्वारा निवृत्त होने पर जिस समय बौद्ध ज्ञान का उदय होता है, उसी समय वह बौद्ध ज्ञान जीवन-मुक्ति हेतु कारणत्व प्रदान करता है। तात्पर्य यह है कि मात्र बौद्धिक अज्ञान के नष्ट होने मात्र से ही मोक्ष नहीं होता । पौरुष ज्ञान का निरपेक्ष होना ही मोक्ष नहीं होता। इसलिए किसी ने कहा है कि -

पाशाश्च पौरुष शोध्या दीक्षायां न तु धीगताः ।
तेन तस्यां दोषवत्यामपि दीक्षा न निष्फला ।।"

अर्थात, मनुष्य के पाशों को दीक्षा द्वारा संशोधन करना बुद्धिगत अज्ञान नहीं होता । यदि ऐसा होता है अर्थात् पौरुष-पाश के शोधन के बाद भी अगर बुद्धि दोषवती ही रहती है तो दीक्षा निष्फल कही जायेगी । इसलिए, ज्ञान मात्र स्वभाव, अख्याति का अभाव ही पूर्णाख्याति है, यही प्रकाशानन्दघन आत्मा का तात्विक स्वरुप है और इसका स्फुरण ही मोक्ष है। इसी तथ्य को आचार्य अभिनव गुप्त ने निम्नलिखित कारिका में स्पष्ट किया है-

"विशेषेण बुद्धिस्थे संसारोत्तर कालिके।।
संभावनां निरस्यैतदभावे मोक्षमव्रवीत ।।"।।24।।

अव्याप्ति, अतिव्याप्ति तथा असम्भव दोष की न्याय- शास्त्र द्वारा की गई विवेचना के अन्तर्गत नव्य न्याय द्वारा नवीन लक्षण समन्वय का मार्ग उद्घाटित किया गया । यह मार्ग दोष-रहित तथा सर्वसम्मत है। इसी की पृष्टि करते हुए आचार्य अभिनव गुप्त ने निम्नलिखित श्लोक में कहा है कि-

"अज्ञानामिति न ज्ञानाभावश्चाति प्रसंगत: ।
सहि लोष्टादिकेऽप्यस्ति न च तस्यास्ति संसृति: ।।/25
अतो ज्ञेयस्य तत्वस्य सामस्येनाप्रथात्मकम् ।
ज्ञानमेव तदज्ञानं शिवसूत्रेषु भाषितम् ।।1/26

अर्थात् ज्ञेयत्व द्वारा सर्वत्र एकाकररूपत्व से भान नहीं होने पर जो घट या सुख बाह्य या आन्तरिक पदार्थों से द्वैताकार भाव से ज्ञान समुत्पन्न होता है, वह अपूर्ण ज्ञान है, अज्ञान है। ज्ञानाभाव अज्ञान नहीं होता । इसी को शिवसूत्र में "चैतन्यमात्मा अज्ञानाश्च बन्ध:" के रूप में व्यक्त किया गया है।

"चेत्यति इति चेतन: पूर्णज्ञान क्रियावान् तस्यभाव:।
चैतन्यं पूर्णज्ञान क्रियात्वं तदेव च परमैश्वर्यस्वभावं स्वातन्त्रयम् ।।"

इसके अनुसार आत्म-तत्व-बोधक द्वैत बुद्धि ही अज्ञान है । वास्तव में अद्वैत तत्व ही शास्त्र द्वारा प्रतिपाद्य विषय है। द्वैत-प्रथा ही अज्ञान है, बन्धन का कारण है और इसी अज्ञान या बन्धन का समुच्छेदन करना शास्त्रों का कार्य है। यथा-

द्वैत प्रथा तदज्ञान तुच्छत्वाद्बन्ध उच्यते ।
तत् एव समुच्छेद्यमिति......................।।"

द्वैत प्रथा मल त्रयात्मक है । शुभाशुभ वासना-शरीर भुवनाकार स्वभाव अनेकानेक संकुचित ज्ञान रूप होकर अज्ञान रूप होता है, इसी अज्ञान रूप को बन्ध कहा गया है। इसी का समुच्छेदन मोक्ष के लिए आवश्यक होता है। यथा-

"मलं कर्मं च मायीय माणवमखिलं च यत्।
सर्व हेयमिति प्रोक्तं...........................।।"

आत्म-ज्ञान को मोक्ष मानने में कहीं भी, किसी तरह का विवाद नहीं है।

यथा - मोक्षोहि नाम नैवान्यः स्वरूपप्रथर्नहि सः ।
स्वरूपञ्चात्मनः संविदः.......................।।"

फिर भी, मोक्ष के सम्बन्ध में अनेकानेक मत-मतान्तर हैं, जिनमें से कुछ मतों की विवेचना करना आवश्यक है।

योगाचार मतावलम्बी बौद्ध मत---प्रकृति भाश्वर चित्त अनादि अविद्या गत- आगन्तुक रागादि मल द्वारा आवृत्त होने पर संसार का उद्भव होता है। भावनादि रूप-मार्ग के अनुष्ठान से इन आगन्तुक मलों का नाश होता है तथा परा-वृत्ति के आश्रय भूत होने से अविनश्वर ज्योति-रूप स्वरूप का उद्भव (प्रकटीकरण) होता है। इसी ज्योति-रूप स्वरूप के उद्भव को मोक्ष कहा जाता है। योगाचार मतावलम्बी बौद्धौं का यही मत है। जैसे-

रागादि कलुषं चित्तं संसार स्तद्विमुक्तता ।
संक्षेपात् कथितो मोक्षः प्रहिनावरणैर्जिनैः।।
प्रभास्वरमिदं चित्तं प्रकृत्यागन्तवोमलाः ।
तेषामपाये सर्वार्थं तज्जयोतिरविनश्वरम् ।।

इसके अनुसार भावना द्वारा चित्त-कषाय का नाश होता है। अर्थात् भावना को यहाँ कारण माना गया है। किन्तु, चपल चित्त में स्थिर भावना पैदा करना क्या सम्भव है ? नहीं, ऐसा सम्भव नहीं है। क्योंकि, चित्त क्षण-प्रति-क्षण परिवर्तित होता रहता है। फिर, उसमें भास्वर स्वरूप को उजागर करने में भावना सक्षम कैसे हो सकती है ?

शून्यवादी माध्यमिक-मत-----शून्यवादियों के अनुसार संविद् द्वारा शून्यता में ही मोक्ष की उपस्थिति है।

यथा- चित्त मात्रमिदं विश्वमितियां देशनामुनेः ।
तत्रास परिहारार्थ बालानां सा न तत्वतः ।।

साপि ध्वस्ता महाभागैश्चित्तमात्र व्यवस्थित: ।।

शून्यवाद का मोक्ष सिद्धान्त मात्र मूर्च्छा है । वास्तविक मुक्ति का स्वरूप जो शास्त्र सम्मत है वह निम्नलिखित है-

''य: पुनर्निशेष प्रक्षीण सर्वाध्व बन्ध: स एव साक्षात् मुक्त:।

''छोटकरी तन्त्र'' में कहा गया है कि ''सर्वावच्छेद वर्जितो मुक्त:।।''

उपरोक्त कथन की पुष्टि में निम्नलिखित प्रमाण प्रस्तुत हैं -

''सर्वाध्वनो विनिष्क्रान्त शैवानां तु परम पदम् ।''

इसको और स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि -

''शैव: सिद्धो भाति मूर्ध्नातरेषं
मुक्त: सृष्टौ पुनरभ्येति नाम ।।''

इस प्रकार इदन्ता परामर्श होने से सभी तरह की वासना उद्भूत होकर परामर्शसार होने के कारण किसी किस्म का अज्ञान नहीं रहता है अर्थात् पूर्ण ज्ञानत्व की प्राप्ति होती है। अर्थात् अहं-परामर्श-सार मात्र ऐकात्म्य से स्फुरित होने पर मुक्ति होती है, मोक्ष होता है। बौद्धादि की मुक्ति मात्र मुक्ति का आभास मात्र होता है।

यही पारमेश्वर दर्शन से भी प्रतिपादित होता है अर्थात् ईश्वर में सृष्टि-स्थिति-संहार-रूप शक्ति मानकर ईश्वर के ईश्वरत्व में ही अपूर्णता देखना तथा अनुग्रह-निग्राहात्मिका शक्ति परमेश्वर में निहित मानना आधिदैवकि जगत् के स्वरूप की अभिव्यक्ति है। इसे धर्म द्वारा पुरुषार्थ की भूमिका स्वीकार किया गया है। अवतार-वाद का रहस्य यहीं स्पष्ट होता है।

मुक्ति में पूर्ण ज्ञान होता है। और अज्ञान ही बन्धन का कारण होता है। ज्ञान और अज्ञान विषय पर विचार करने पर ज्ञात होता है कि इनके दो भेद होते हैं । अज्ञान के भेद निम्नलिखित है। :-

(1) स्वपूर्णचित् क्रियारूप शिवता का आवरणात्मक अर्थात् परमेश्वर ही अपनी स्वतंत्रता, पूर्णज्ञत्व, कर्त्तृत्वादि द्वारा आवरण अर्थात्

आणव मल को उत्पन्न करता है, यही मलरूप अज्ञान है।

(2)"अहम् इदं जानामि" इस प्रकार की काल, कला नियति, बल, राग, विद्यारूपी षट्कञ्चुक से म्लान होकर परिमितात्मा से प्रतिबिम्बित हो, जो अध्यव्यवसायिनी पौरुष ज्ञान तथा बुद्धि द्वारा प्राप्त होता है, वही अज्ञान है । यथा-

कामशोकभयोन्माद चौर स्वप्न ह्युपप्लुता ।
अभूतादपि पश्यन्ति पुरतोऽवस्थितानिव ॥

ज्ञान के भी दो भेद होते हैं । जैसे -

पूर्ण ज्ञान की व्याख्या करते हुए तन्त्रालोक में आचार्य अभिनव गुप्त का कथन निम्नलिखित है -

"क्षीणे तु पशु संस्कारे पुंसः प्राप्त परस्थितेः ।
विकस्वरं तद्विज्ञानं पौरुषं निर्विकल्पम् । /41
तद् बौद्धं यस्य तत्पौस्नं प्राणवत्पोष्यं च पौष्टृं च ॥ 1 / 42

अर्थात् पशु का संस्कार क्षीण होने से वासनादि आणव-मल प्रक्षीण होता है। "निमित्तापाये नैमित्तिकस्थाप्यपायः" आदि सिद्धान्त के अनुसार माया-जनित-मल का नाश होता है। तब सभी तरह के बन्धन से निवृत्ति होती है। और पुरुष की भी परिस्थिति वैसी ही अर्थात् निर्बन्ध हो जाती है । अर्थात् परम चिदात्मकता प्राप्त होने पर विकस्वरं अर्थात् पराहन्ता विमर्शात्मक निर्विकल्प कृत्रिम अहंकारादि विकल्प विलक्षण ज्ञान का उद्‌भव होता है। उपरोक्त श्लोक में पोष्य का तात्पर्य कार्य, पोष्टृ का कारण तथा पौष्य का अर्थ "पुंसिभवं पौष्नं" अर्थात् पौरुष है। अर्थात्, यह सब कुछ मेरा ही वैभव है का ज्ञानोदय होता है। इस तरह अपूर्ण और पूर्ण ज्ञान के दो भेद होते हैं। तात्पर्य यह कि सर्वात्म-तत्व का अनुभव आत्मा में होने पर अपूर्ण ज्ञान होता है और जब यही आत्म-तत्व सर्वात्म-तत्व में विलीन हो जाता है तब पूर्णज्ञान की प्राप्ति होती है और यही मोक्ष है । यहाँ सविशेष उल्लेख्य है कि पौष्न अज्ञान दीक्षा द्वारा नष्ट होता है। तथा शरीर अन्त होने पर वह पूर्ण ज्ञान स्फुटित एवं व्यक्त होता है। इसी बात

को न्याय-सूत्र में "दुःख जन्म प्रवृत्ति दोष मिथ्या ज्ञानानामुत्तरापाये तदनन्तज्ञपायादपवर्णः" कहा है। अर्थात् मिथ्या ज्ञान से दोष, दोष द्वारा प्रवृत्ति, प्रवृत्ति से जन्म तथा जन्म ही दुःख का कारण होता है। मिथ्या ज्ञान के नष्ट होने से दोष की निवृत्ति, दोष के हटने के बाद प्रवृत्ति का अभाव, प्रवृत्ति के नष्ट होने से दोष की निवृत्ति, दोष के हटने से प्रवृत्ति का अभाव, प्रवृत्ति के नष्ट होने के बाद जन्म-निवृत्ति, जन्म के नाश होने पर दुःख का नाश होता है। इस तरह दुःख का मुख्य कारण अज्ञान तथा दुःख-निवृत्ति का मुख्य कारण जन्म का न होना, माना गया है।

इसी बात को स्पष्ट करते हुए आचार्य अभिनव गुप्त ने निम्नलिखित श्लोक में कहा है कि -

"तत्र दीक्षादिना पौस्नमज्ञानं ध्वंसि यद्यपि ।
तथापि तच्छरीरान्ते तत्ज्ञानं व्यज्यते स्फुटम् ।।। /43

आचार्य का शरीरान्ते- का अर्थ मृत्यु पश्चात् नहीं है। वल्कि, शरीरारम्भक कार्य-मल का अन्त होना निर्दिष्ट है। इसका प्रमाण आगम ग्रन्थों में निम्नलिखित है-

अथात्ममल मायाख्य कर्मबन्ध विमुक्तये ।
व्यक्तये च शिवत्वस्य शिवज्ञानं प्रवर्तते ।। स्वयम्भू
यजन्ति विविधैर्यज्ञैर्मन्त्र तत्व विशारदाः ।
गुरु तन्त्राद्यनुज्ञात दीक्षा सिद्धिर्नि संशयः ।।
नमीमांस्या विचार्या वा मन्त्राः स्वल्पधिया नरै :
प्रमाणमागमं कृत्वा श्रद्धातव्या विचक्षणैः
शिव वक्त्राम्बुजोद्भूतममलं सर्वतो मुखम् ।
शिवात्वोन्मीलनं तथ्यं ज्ञानाज्ञान नाशनम् ।।
अनेनसिद्धाः पश्यन्ति यत्तत्पद्मनायम्
।।श्री मतंग।।

स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर-रचना

चर-अचर समस्त प्राणियों में मानव-शरीर की रचना सर्व श्रेष्ठ है। यह शरीर अपरिमित ऊर्जा का स्रोत है। इच्छात्मक, ज्ञानात्मक तथा क्रियात्मक-शक्ति के दृष्टिकोण से भी यह अनुपम है, अनूठा है । इस शरीर में चिन्तन-शीलता है तो तद्नुरूप सृजन-शीलता भी है। मानव-शरीर भौतिक जगत् सम्बन्धी गवेषणात्मक-बुद्धि से परिपूर्ण है तो ब्रह्माण्ड के रहस्याति रहस्यात्मक परिदृश्यों, सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्वों, शक्तियों की अन्वेषिका-संबुद्धि से भी सम्पन्न है। यह शरीर अनन्त कलाओं का उद्गम-स्रोत है तो गहन वैज्ञानिक-चेतना-से भी पूरित है। स्वयं स्व विचारों को उद्भूत करने में सक्षम है तो अन्य शरीरों द्वारा उद्भूत विचारों को ग्रहण करने अथवा उसे स्व-विवेक की कसौटी पर परखने में भी समर्थ है। यह स्व नियोजित शक्ति से, स्फूर्त चेतनता से, मेधा से, ओज से, विशिष्टाचार से, व्यवहार से, प्रेम से, करुणा से, तपःचर्या से जगत् को ही नहीं पारलौकिक शक्तियों को आकर्षित करने में सक्षम है तो दिव्य-दृष्टि-प्राप्त कर तीनों त्रैलोक्यों (देव-त्रैलोक्य, असुर त्रैलोक्य तथा भौम त्रैलोक्य) को क्षण मात्र में मापने तथा निरीक्षण करने में भी समर्थ है ।

भौतिक जगत् के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक विकास की जो भी सीढ़ियाँ अबतक मापी गई है और भविष्य में मापी जायेगी, उसका श्रेय मानव-शरीर की चेतनता को ही है। जहाँ बुद्धिवादी (भौतिकवादी) पश्चिमी मानव समुदाय सभ्यता के विकास तथा आधुनिक विज्ञान (भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान) आदि के क्षेत्र में अनेकानेक सीढ़ियाँ मापने में सक्षम सिद्ध हुआ है, वहीं शरीर-स्थित आध्यात्मिक ऊर्जा-पुंजों अथवा ब्रह्माण्डीय-ऊर्जा-स्रोतों के ज्ञान के मामले में अत्यन्त पिछड़ा हुआ है।। आध्यात्मिक शक्तियों को विकसित कर भारतीय मनीषियों, चिन्तकों, ऋषियों तथा देशिकों ने बैठे-बैठे ब्रह्माण्ड ही नहीं, ब्रह्माण्ड के सृष्टि-मूल को

मापने सम्बन्धी जिस ज्ञानात्मक विद्या का मार्ग उन्मेषित किया है, वहाँ तक पहुँचने में पश्चिमी विज्ञान-वेत्ता मानवों को कई सहस्त्राब्दियों तक अन्वेषण-रत रहना पड़ेगा। फिर भी, उन्हें सफलता मिल ही जायेगी, इसकी सम्भावना अत्यल्प है। कारण यह है कि पश्चिमी विज्ञान (विद्या) का जन्म ही भौतिकवादी, भोगवादी तथा उपभोक्तावादी विचारों के उदय के कारण हुआ है। इसलिए, वहाँ के समस्त मानव-चेतनता "वीर भोग्या वसुन्धरा" के सिद्धान्त से प्रेरित और क्रिया-शील होती है, जो कभी असुर कहे जाने वाले मानवों की थी। उनकी समस्त शारीरिक चेतनता (व्यष्टि-गत या समष्टि-गत) ऐन्द्रिक भोगोपभोग के लिए क्रिया-शील होती थी । आज भी पाश्चात्य मानवीय चेतनता (व्यष्टि-गत या समष्टि-गत) भोगवाद के प्रति समर्पित है और क्रिया-शील है। अत:, भोगवाद के विस्तार के क्रम में उपनिवेशवादी प्रवृत्ति का जन्म हुआ और उसकी संरक्षा-सुरक्षा हेतु परमाणु बम तथा प्रक्षेपास्त्रों का निर्माण हुआ और हो रहा है। सभ्यता (वाह्य-रहन-सहन आदि) का विकास भी इसी दृष्टिकोण से होता रहा है और इसके साथ ही वर्चस्व के मार्ग में भविष्य में उठ खड़ी होने वाली चुनौतियों के समाधान व निदान में समस्त मानवीय चेतनता धन-बल और विज्ञान(विद्या-बल) के साथ सक्रिय है। इसके साथ कुछ मानवीय चेतनता पंच महाभौतिक मानव-शरीर की सुरक्षा-संरक्षा, दीर्घायुष्य एवं रोगादि से मुक्ति के संसाधन के अन्वेषण में लगा हुआ है। रोगादि निदान के क्षेत्र में अत्याधुनिक उपकरणों का आविष्कार किया जा रहा है, आनुवंशिकी की खोज जारी है। इन कार्यों से मानव को या अन्य जीव जगत् को चिकित्सकीय सुविधा मिल रही है, कल्याण हो रहा है- फिर भी, यह मानव -जीवन के लक्ष्यानुरूप नहीं है। इससे ब्रह्माण्ड की ध्वंसकारी प्रवृत्तियाँ, उच्छृँखलता, द्वेष-भाव, प्रति-द्वन्द्विता तथा आतंक को ही बढ़ावा मिल रहा है। प्रत्येक मानव महत्वाकांक्षा-ग्रसित हो चला है । समस्त-भौतिक सुख-समृद्धि को स्वमुष्टिगत करने के लिए भिन्न-भिन्न तरह के

दुराचार, आतंक को बढ़ावा दे रहा है। पाश्चात्य भोगवादी तथा भौतिकवादी (उपभोक्तावादी) विचारधारा लगभग पूरे विश्व को अपनी चपेट में ले चुका है। इस अपसंस्कृति से बचने के लिए अध्यात्म-मार्ग का ही सहारा श्रेष्यकर है।

ऊपर पाश्चात्य भोगवादी वैज्ञानिक चेतनता के सम्बन्ध में बतलाया गया है। अब भारतीय परिप्रेक्ष्य में, प्राच्य-विद्या के सम्बन्ध में, जिसके चलते भारत प्राचीन काल से आज तक पूरे विश्व का गुरु माना जाता रहा है, बतलाने की चेष्टा की जा रही है । वेद-काल से लेकर आज तक भारत में मानव-शरीर को साधन-शरीर माना गया है। इस शरीर को भोगवादी विचार-धारा से भरसक अलग-थलग रखने का सुझाव ऋषियों, चिन्तकों ने मनुष्य मात्र को दिया है। अर्थात्, भारतीय ऋषियों की दृष्टि में मानव-जीवन का लक्ष्य ''चतुर्विध पुरुषार्थ अर्थात् ''धर्मर्थकाम-मोक्ष:'' की प्राप्ति है। तात्पर्य यह कि जब वेद-कालीन ऋषियों ने ब्रह्माण्ड-विस्तार को देखा, तब उन्हें घोर आश्चर्य हुआ । इनकी आँखें फटी की फटी रह गई। इसी आश्चर्य के भीतर से सृष्टि को जाँचने-परखने, उसके नियन्ता के सम्बन्ध में जानने की जिज्ञाशा उत्पन्न हुई । इसी जिज्ञाशा ने उन्हें संकल्पित होकर दृढ़-निष्ठ होकर, तथा अनुशासित होकर सृष्टि-मूल के अन्वेषणार्थ प्रेरित किया । अन्वेषण-क्रम में उन्हें जो कुछ देखने, अनुभव करने को मिला, उससे वे दंग रह गये, चकित रह गये। उन्होंने ब्रह्माण्ड रचयिता को, नियन्ता को ढूँढ़ निकाला । साथ ही ब्रह्माण्ड के निर्माण में सक्रिय रूप से भाग लेने वाले भौतिक तत्वों, चेतन-तत्वों के साथ शिव-शक्तिमय अनन्त ऊर्जा-पुंजों को देखा। घोर आश्चर्य तो उन्हें तब हुआ जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि ब्रह्माण्डीय-रचना में जिस तरह, जिस रूप में पंच महाभूतों, प्रकृति तत्वों , आत्म-तत्वों, तथा शिव-शक्ति-तत्वों का योगदान है, ठीक उसी तरह, उसी रूप में इस मानव-शरीर की रचना में भी उनका योगदान है। और सभी भूतों की सर्वचेतनता (चैतन्यं सर्व भूतानां) इस

मानव शरीर में रहस्यात्मक रूप से विद्यमान है। यदि मानव ऐन्द्रिक संवेदन-शीलताओं (इन्द्रिय-जनित विचारों) पर अंकुश लगाकर आत्म-तत्व के चिन्तन का अभ्यास करे तो वह नर से नारायण की उपाधि धारण कर सकता है। ब्रह्माण्ड नायक बन सकता है। ब्रह्माण्ड की रचना करने वाली शक्तियाँ, इसमें योगदान करने वाले सभी तत्व तब मनुष्य के वशीभूत हो सकते हैं । इतना ही नहीं मनुष्य योनि-गत आणवों , कर्म-गत-मलों तथा लोक-गत आवरणों से मुक्त हो सकता है । जन्म के बन्धन से, संस्कार के बन्धन से भी मुक्त हो सकता है और परमानन्द स्वरूप परम शिवात्मक रूप को प्राप्त कर सकता है।

इस प्रकार ऋषियों ने मनुष्य को सृष्टि का सर्वचेतना मय प्राणी तथा मानव-शरीर को अनन्त-ऊर्जा के स्रोत के रूप में चिह्नित किया, पहचाना । और मनुष्य-जीवन का परम एवं चरम लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति (जगत् में रहकर भी समस्त जागतिक बन्धनों, जन्मान्तरों के बन्धनों से मुक्त होना) बतलाया । मोक्ष अर्थात् जीवात्मा का परमात्मा से मिल जाना, जीवन का लक्ष्य बतलाया।

उपरोक्त दृष्टिकोण से ऋषियों ने मानव-शरीर की रचना का बड़ा ही तथ्यपूर्ण वर्णन तन्त्रों, योग-शास्त्रों में प्रस्तुत किया है। यहाँ उल्लेख्य है कि ऋषियों ने मानव-शरीर का अध्ययन आध्यात्मिक दृष्टिकोण से किया है तथा मानव-शरीर में गोपित मस्तिष्क, तंत्रिकाओं (नशेन्द्रियों) तथा इनके द्वारा निर्मित आधार चक्रों (ऊर्जा-स्रोतों) का जो चित्र खींचा है, स्वरूप-वर्णन किया है, भौतिक दृष्टि से अत्याधुनिक चिकित्सा विज्ञान उन्हीं की सम्पुष्टि करता है । लेकिन, आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान मात्र स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से ही मानव- शरीर के बाह्य या आन्तरिक अध्ययन की ओर उन्मुख है, अग्रसर है।

आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान मानव-शरीर का भौतिक-संरचना के आधार पर तीन भागों में अध्ययन करता है। जैसे- 1. **शरीर रचना-विज्ञान**, 2. **शरीर-क्रिया-विज्ञान** और

3. विकृति-विज्ञान ।

(1) शरीर-रचना-विज्ञान-----इसके अन्तर्गत ऊत्तक विज्ञान (भ्रूण-विज्ञान) तथा अस्थि-विज्ञान का अध्ययन करता है। अर्थात् ऊत्तकों की रचना, तथा उसमे भाग लेने वाले भौतिक एवं रसायनिक तत्वों, भ्रूण-रचना तथा उसमें भाग लेने वाले रज-वीर्य की भौतिक एवं रसायनिक संरचना तथा भ्रूण के विकास का अध्ययन तथा अस्थि-संरचना में संलिप्त भौतिक एवं रसायिनक तत्वों का अध्ययन किया जाता है।

साथ ही इसके अन्तर्गत सन्धि-विज्ञान माँसपेशी-विज्ञान और वाहिका विज्ञान का अध्ययन किया जाता है। अर्थात् अस्थियों को जोड़ने वाली मज्जा की भौतिक एवं रसायनिक संरचना, माँसपेशियों की भौतिक एवं रसायनिक संरचना तथा ऐच्छिक तथा अनैच्छिक (स्वतंत्र) रूप से क्रिया-शील होने की प्रक्रिया तथा वाहिका नलियों की भौतिक तथा रसायनिक रचना, उनके भेदोपभेद तथा क्रिया का अध्ययन किया जाता है।

उपरोक्त विषय-वस्तुओं के साथ-साथ शरीर रचना सम्बन्धी प्रमुख तीन प्रकरणों तंत्रिका-तन्त्र, ज्ञानेन्द्रियों और त्वचा की भौतिक एवं रसायनिक रूप से संरचना तथा क्रियाशीलता का अध्ययन किया जाता है।

शरीर-क्रिया-विज्ञान - इसके अन्तर्गत लाला ग्रंथियाँ तथा इसके द्वारा निस्सृत लार में पाये जाने वाले रसायनिक तत्व (खमीर) एवं उसका भोजन पर प्रभाव, ग्रसिनी या अन्न-नली, अमाशय तथा उसकी श्लेष्मिक झिल्लियों से निस्सृत होने वाले अमाशयिक-रस तथा उनमें पाये जाने वाले रसायनिक तत्वों (खमीरों) तथा उनका पाचन पर प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। साथ ही इसके अन्तर्गत आग्नेयाशय, पित्ताशय, क्लोम-ग्रन्थि, छोटी आँत, बड़ी आँत में होने वाली पाचन-प्रक्रियाओं के अध्ययन के साथ-साथ रक्त -परिभ्रमण शिरा, महाशिरा, धमनी, महाधमनी, कोशिकाओं , हृदय फुस्फुस

वृक्कादि के साथ श्वाँसोच्छवास-प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है। **विकृति विज्ञान**-इसके अन्तर्गत रोगों की उत्पत्ति, लक्षण-निदान, रोगाणु, विषाणु आदि के सम्बन्ध में अध्ययन किया जाता है।

प्राच्य आयुर्वेद-शास्त्र भी उपरोक्त विषयों का ही विश्लेषण करता है । किन्तु, रोगादि या विकृति का कारक-कफ-पित्त तथा वायु को मानकर उपचार करता है।

उपरोक्त वर्णित तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक चिकित्सा शास्त्र मानव-शरीर तथा उसकी क्रिया-प्रक्रिया का अध्ययन भौतिक एवं रसायनिक स्तर पर करता है तथा उसकी भौतिक ऊर्जा को सुरक्षित-संरक्षित एवं संवलित करने का उपाय तलाशता है ।

भारतीय मनीषियों, आध्यात्मिक चिन्तकों, योगियों, तन्त्रज्ञों द्वारा मानव-शरीर का अध्ययन मात्र, भौतिक दृष्टिकोण से ही नहीं, वल्कि आध्यात्मिक ऊर्जा-स्रोत के रूप में किया जाता है। इनके अनुसार मानव-शरीर अनन्त ऊर्जा का स्रोत है। यह अनन्त ऊर्जा मात्र बौद्धिक बल, बाहुबल, कला-विज्ञान तथा भौतिक-क्रियात्मक-क्षमता के रूप में ही नहीं व्यक्त होती है, वल्कि इसके अतिरिक्त ब्रह्माण्ड-रचना में लीन समस्त भौतिक, आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक सत्ता के मूल ऊर्जा-स्रोत (अर्थात् सदाशिव) के रहस्यों को अनावृत कर उनकी समस्त कलाओं, तत्वों, शक्तियों तथा क्षमताओं को आत्म-सात् कर स्वयं ब्रह्माण्ड नायक बनने की क्षमता प्रदान करती है । इस तरह बौने मानव-शरीर में अप्रकट रूप से छिपी-पड़ी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की संचालिका शक्ति को उजागर कर मानव के लिए प्रत्यक्ष सृष्टि ही नहीं, सूक्ष्मातिसूक्ष्म सृष्टि के लोकों पर विजय प्राप्त करने वाला बना दिया है। इसी विद्या को प्राच्यविद्या के नाम से जाना जाता है और इसी रहस्यमय विद्या का ज्ञाता होने के कारण भारत विश्व गुरु है ।

ऋषियों ने मानव-शरीर को साधन-शरीर माना है। इस

मानव-शरीर ब्रह्माण्ड रचना के समस्त स्थूल-सूक्ष्म तथा कारण (सूक्ष्मातिसूक्ष्म) कारक (तत्व) में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से स्थित है। मानव-शरीर को भी एक लघु ब्रह्माण्ड की संज्ञा दी गई है। जिस प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को तीन भिन्न-भिन्न त्रैलोक्यों में विभाजित किया गया है, (जैसे-देव त्रैलोक्य, असुर त्रैलोक्य एवं भौम त्रैलोक्य),उसी प्रकार मानव शरीर को तीन त्रैलोक्य में विभाजित किया गया है। जैसे-

(1) शरीर- स्थित त्रिलोक

(क) शिरोलोक या शिरोगुहा - इन्द्रलोक

(ख) उरोलोक या उदर गुहा - वायुलोक

(ग) उदर लोक या उदरगुहा - अग्निलोक

प्रकारान्तर भेद से-

(क) गुदा से नाभि-पर्यन्त भाग - पृथ्वीलोक

(ख) हृदय से कण्ठ पर्यन्त - द्युलोक

(ग) इन दोनों के मध्य उदरभाग- अन्तरिक्ष लोक

स्थूलादि भेद से मानव-शरीर को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है। जैसे -

(1) स्थूल शरीर (2) सूक्ष्म शरीर तथा (3) कारण शरीर

स्थूल-शरीर--शिर, अस्थि तन्त्र, मज्जा, नाड़ी तंत्र, पाचन-तंत्र, हृदय, श्वसन-तंत्र, हाथ-पाद, उपस्थ आँख, कान, नाक, जिह्वा मय त्वचावेष्टित मानव-शरीर को स्थूल-शरीर की संज्ञा दी गई है। इस स्थूल शरीर को शिवालय की संज्ञा दी गई है।

"देहः शिवालयः प्रोक्तः सिद्धिः सर्वदेहिनाम् ।"

य०द०वि०प०, साधनापाद श्लोकार्द्ध 14

सूक्ष्म-शरीर--मानव के स्थूल शरीर में सूक्ष्म रूप से दस प्रकार की वायु से परिपूर्ण दस इन्द्रियों का जाल मूलाधारादि चक्र, कामगिरि, पूर्णगिरि, जालन्धर तथा उड्डियान आदि पीठ सहित शाम्भवी-शाम्भव-युत् षड्न्वय शाम्भव-विद्यायों का वास है। अर्थात् इड़ा, पिंगला तथा

सुषुम्ना नाड़ियों के साथ अन्य नशेन्द्रियाँ, जो सूक्ष्म रूप से दस इन्द्रियों को संचालित करती हैं, क्रिया-शील बनाती हैं, इसे ही सूक्ष्म शरीर की संज्ञा दी गई है ।

कारण-शरीर-इस मानव-शरीर में बिन्द- नाद- रूप में शिव-शक्तिमय महा लिंग का वास है। इसी बिन्दु-नाद-स्वरूप शिव-शक्तिमय महालिंग को कारण शरीर कहा गया है।

इस मानव-शरीर को त्रि-गुहामय कहा गया है अर्थात् शरीर को तीन गुहा भागों में विभाजित किया गया है । जैसे-

1. शिरोगुहा
2. उरो गुहा
3. उदर गुहा

शिरो गुहा ही समस्त इन्द्रियों का संचालक केन्द्र है। शिरो गुहा की समस्त इन्द्रियाँ इन्द्र से ही उत्पन्न या संचालित मानी गई है। इसलिये शरीर के इस भाग को इन्द्रलोक कहा जाता है । अर्थात् मानवीय इन्द्रियों को संवेदन-शील बनाने वाला तथा उसे नियन्त्रित करने वाला समस्त नाड़ी-तन्त्र इसी शिरा- भाग से (मस्तिष्क से) निकलता है। जैसे -

"देहस्य कार्यक्षमता साधनार्थं शरीरगाः ।
अनन्ता नाडिकाव्याप्ता, मस्तिष्कान्निःसरन्ति ।"

इस शिरोगुहा या मस्तिष्क को आधुनिक चिकित्सा शास्त्रियों (विज्ञानियों) ने निम्नलिखित भागों में विभक्त किया है-

1. प्रमस्तिष्क
2. मध्यमस्तिष्क
3. अनुमस्तिष्क
4. पौंस
5. अग्रमस्तिष्क
6. चतुर्थ निलय आदि

पुनश्च विस्तृत अध्ययन के दृष्टिकोण से तथा बनावट

के दृष्टिकोण से कई उपवर्गो में विभाजित किया है। इसी तरह दिव्य नेत्र-धारी ऋषियों ने आज से हजारों वर्ष पूर्व मस्तिष्क की बनावट, कार्य-शीलता एवं आध्यात्मिकता-जागरण के दृष्टिकोण से विभाजन करते हुए कहा है कि -

"अक्षो समः स्थूलः पञ्चभूत-प्रपञ्चितः ।
विभक्तः सप्तभागेषु, मानवास्यास्ति मस्तकः ।।"
य०द०वि०प०।। 26 ।।

अर्थात् पंच महाभूत-रचित इस मानव-मस्तिष्क को सात भागों में बाँटा गया है। इसका प्रथम भाग 7x7= 49 भागों में विभक्त है। द्वितीय भाग 8x8=64 भागों में विभक्त है। पुनः 64 भागा 3x3 भागों में विभक्त है । अर्थात् 64x3=192 भागों में विभक्त है । तृतीय भाग सात भागों में, चतुर्थ भाग पाँच भागों में, छठा भाग छः भागों में तथा सातवाँ भाग तीन भागों में विभक्त है । जैसे -

सप्तभाग विभक्तोऽपि सव्य-वामेति नामतः ।
योस्याऽस्ति प्रथमो भागः सप्तभागेषु विश्रुतः ।।
विभक्तो ह्यूनपञ्चाशद्-भागेषु च विशेषतः ।
चत्वारिंशच्च दौ भागाः सर्वेषां कार्य साधकाः।।
अवशिष्टाः सप्तभागाः षडभिः कार्य प्रकुर्वते ।
चतुष्षष्ठि विभागेषु विभक्तोऽयम् द्वितीयकः ।।

X X X

सप्तधा विभक्तोऽयं तृतीयो भागनामकः ।
चतुर्थ भागश्चास्यास्ति विभक्त षडविध स्मृतः ।।
योऽस्यास्ति पञ्चमो भागो विभक्तः सोऽपिसप्तधा ।
षष्ठो भागोऽस्तियः सोऽपि विभक्तः पञ्चधास्मृतः ।।
योऽस्यास्ति सप्तमोभागो विभक्तोऽस्ति द्विभागयो ।

सूक्ष्म शरीर में ऋषियों ने नाड़ियों, द्वारा बनाये गये आधार चक्रो, मनः चक्रों, पंच ज्ञानेन्द्रियों तथा पंच कर्मेन्द्रियों, वायु तथा उससे उत्पन्न होने वाली शक्तियों का ही अध्ययन किया है। प्रमुखतया नाड़ियों में

गुप्तभाव से निवास करने वाले प्रकृति तत्वों, आत्म-तत्वों, तथा शिव-शक्ति-तत्वों को चिह्नित करना, सजग करना एवं तत् प्रभाव से स्वयं ब्रह्म-मय बनने की कला को उद्घाटित करना ही ऋषियों, देशिकों, योगियों का लक्ष्य रहा है।

अतः, प्रस्तुत है सूक्ष्म शरीर की रचना की रूपरेखा। मस्तिष्क के इन समस्त भागों में अनेक रंग की नाड़ियों का जाल है। इस मस्तिष्क स्थित ब्रह्म-ग्रन्थि या ब्रह्म-रन्ध्र से सर्वप्रमुख सुषुम्ना नाड़ी निकलती है। सुषुम्ना नाड़ी मेरूरज्जु होती हुई त्रिक् भाग तक जाती है । अनुत्रिक् के पास एक पुच्छ गुहा में प्रवेश कर जाती है और गुदा मार्ग से दो अंगुल ऊपर कुण्डलीनुमा आकार ग्रहण कर लेती है । यहाँ उल्लेख्य है कि पौंस के पास भी सुषुम्ना एक पुच्छ -गुहा के भीतर से निकलती है। सुषुम्ना के बाद जो दो प्रमुख नाड़ी है, उसका नाम इड़ा (चन्द्र नाड़ी) तथा पिंगला (सूर्यनाड़ी) है। इड़ा बायाँ अण्डकोष से धनुषाकार रूप में निकल कर बायीं नाक तक आती है तथा पिंगला दायें अण्डकोष से धनुषाकार रूप में निकल कर दायीं नाक तक आती है । इड़ा और पिंगला इन दोनों नाड़ियों के मध्य सुषुम्ना स्थित है । इन तीन प्रमुख नाड़ियों के अतिरिक्त अन्य सात विशिष्ट नाड़ियाँ भी है, जिका नाम है-गान्धारी, हस्तिजिह्वा, वज्रा, अलम्बुषा, यशस्विनी, शंखनी तथा कुहू ।

ब्रह्म-रन्ध्र से अनुत्रिक तक के यात्रा क्रम में सुषुम्ना पाँच पर्वों का निर्माण करती है। इन पर्वों पर अलग-अलग रंग की नाड़ियाँ अलग-अलग दिशा से आकर मिलती हैं। तन्त्र या योगशास्त्र में इन पंच पर्वों को स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध तथा आज्ञा-चक्र की संज्ञा दी गई है । यथा-

"पूर्वोक्ता या सुषुम्ना या मध्यस्था या सुलोचने ।
नाभिहूत् कण्ठ तालू मध्य पर्व समुदूभव ।।
अधोमुख शिराः काश्चित् काश्चिदुर्ध्वमुखास्तथा ।
परातिर्य, गतास्याश्वत् तत्र लक्ष त्रय साधिकाः ।।

नाड्योऽर्ध्दलक्ष संख्याताः प्रधाना समुदीरिताः ।

कुछ ऋषियों द्वारा सुषुम्ना के मूल से अनुत्रिक पर्यंत बारह चक्रों की संख्या निर्धारित की गई है तो कुछ ऋषियों या देशिकों द्वारा चक्रों की संख्या सोलह बतलायी गई है । काली कल्प के अनुसार चक्रों की संख्या बारह कही गई है। जैसे -नीचे मूलाधार-चक्र और ऊपर सहस्त्रार को बतलाया गया है तथा इनके बीच में अधोर्ध्व क्रम से स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध, लम्बिका तथा आज्ञा है । इनमें से चार का अधो-चक्र भी होता है । उर्ध्व और अधो-चक्र के सम्मिलन से कुल बारह चक्र होते हैं। यथा-

"पूर्व हृदधः सहस्त्रारं, विषुवं मूलचक्रकम् ।।"
स्वाधिष्ठानं तदग्रे तु, ततस्तु मणिपूरकम् ।
स्वास्तिकं चैवानाहतं विशुद्धं चैवलम्बिका ।।
आज्ञा चक्रमिति त्रये प्रोक्तान्यूर्ध्ववक्त्राणि वर्त्मनि ।
स्वाधिष्ठानं मणिपूरमनाहत तथापि वा ।।
हृदिस्थाने स्थितं पद्मं तस्य वक्त्रमधोमुखम् ।
विशुद्धं चेति चक्राणि सन्तयधोमुखानि हि।।
एवं द्वादश चक्राणि कालीकल्पे भविन्त वै ।"

किन्तु, सुन्दरी कल्प के अनुसार सुषुम्ना के मूल से लेकर कुण्डल्यावस्था प्राप्त करने तक सोलह चक्र बतलाये गये हैं । यथा - "सुन्दरी कल्प चक्राणां संख्या षोडश विद्यते"

इसके अनुसार निम्न-क्रम से मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा, मनःचक्र, विन्दु, कला, रोधिनी, नाद, शक्ति, व्यापिका, समना, गुरु-चक्र और उन्मनी आदि सोलह चक्र है ।

मनः चक्र (विचार-चक्र) इसकी संख्या तीन है। :- (1) आज्ञा-चक्र के ऊपर (2) हृदय पद्म के दायीं ओर बगल में और (3) गुरु-पद्म के दायीं ओर । पहला और दूसरा अष्टदल है तथा तीसरा चक्र द्वादशदल युक्त है। आज्ञा-चक्र के मनः चक्र में आठ चित्ति-कोष होते हैं यथा - (1) मनुवहा (2) शब्द वहा, (3) स्पर्श वहा,

(4)रूपवहा, (5) रस-वहा, (6) गन्ध वहा, (7) स्वप्न-वहा सार्थक तथा (८) स्वप्न-वहा निरर्थक - ये आठ दल होते हैं ।

मनःचक्र के सात कोष बतलाये गये हैं - जैसे (1)) इन्दु (2) बोधिनी (3) नाद (4) अर्द्धचन्द्र (5) महानाद (6) काल तथा (7) उन्मनी (यह विशेषतः गुरु-मुख से जाना जाता है।

जिस प्रकार बाह्य जगत् वायु से पूरित है व आच्छादित है, उसी तरह मानव-शरीर के अन्दर भी वायु-तत्व फैल हुआ है। यही वायु मूलवायु अर्थात् श्वॉसोच्छवास की क्रिया से जाग्रत होती है और समग्र आन्तरिक क्रियाओं के सम्पादन में सहयोग करती है मानव-शरीर के भीतर रहने वाली वायु की संख्या स्थान भेद, रूपभेद एवं .कार्यभेद के अनुसार दस कहीं गई है। । जैसे- (1) प्राण, (2) अपान, (3) उदान, (4) समान (5) व्यान, (6) नाग, (7) कूर्म्म, (8) धनञ्जय (9) कृकल तथा (10) देवदत्त । यथा -

"प्राणापान समानाश्चोदान व्यानौ तथैव च ।
इमे सर्वे शरीरस्था: प्रधाना: पञ्चवायव: ।।
नाग: कूर्म्मोऽयं कृकरो, देवदत्तो धनञ्जय: ।
इमे पञ्चव पुस्तत्र गदिता उपवायव: ।।

शरीर में प्रमुख वायु निम्नलिखित स्थानों में व्याप्त रहती है- प्राणवायु- हृदय प्रदेश में, अपान वायु गुदा-प्रदेश में, समान वायु नाभि-प्रदेश में, उदान-कण्ठ-प्रदेश में तथा व्यान सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहती है तथा नागादि वायु त्वक्, अस्थि आदि भागों में निवास करती है। यथा-

" हृदि प्राणो गुदेऽपान: समानो नाभि-मण्डले।
उदान: कण्ठ देशेस्तु व्यान: सर्व शरीरग: ।।"
नागादि वायव: पञ्च: त्वगस्थ्यादिषु संस्थिता: ।।"

इन प्रमुख पाँच वायुओं का निम्नलिखित रंग है- रक्तवर्ण प्राण का , इन्द्रगोप के समान नील-रक्त आभायुक्त अपान वायु का,

गाय के दूध के समान श्वेत् वर्ण समान वायु का , अपाण्डुर उदान वायु का तथा व्यान का स्वर्णिम रंग है। यथा -

"रक्त्वर्णोमणि प्रख्य: प्राणो वायु प्रकीर्तित:
नील रक्तोऽपान वायुरिन्द्र गोप सम प्रभ: ।।
समानस्तु द्वयोर्मध्ये गोक्षीर सदृश: प्रभ: ।
अपाण्डुर उदान : व्यानो हयर्चि सम प्रभ: ।।"

प्राण आदि वायुओं के द्वारा सम्पादित होने वाले कार्यों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि - प्राण-वायु पेट स्थित अन्न, जल, तथा रसों को पृथक् करती है। अपान वायु मल-मूत्रादि को बाहर निकालती है तथा प्रसव कार्य -सम्पन्न कराती है। व्यान वायु नभ: सदृश ऊर्जा उत्पन्न करती है। नाग नामक वायु उद्गारादि क्रिया सम्पन्न करने में सहयोग करती है। कूर्म्म नामक वायु पलकों को खुलने तथा बन्द करने में मदद करती है। कृकल या कृकर नामक वायु क्षुधा जगाती है। देवदत्त जृम्भण (जम्हाई) का कार्य सम्पन्न कराती है तथा मृत देह (शव) की रक्षा धनञ्जय नामक वायु करती है । इस तरह भौतिक शरीर की समस्त क्रियाएँ वायु द्वारा नाड़ियों के सहयोग से संचालित होती है। यथा-

"तून्दस्थ जलमन्नं च रसादिनि सर्वश: ।
तुन्दमध्यगत: प्राण: कुरुते वै पृथक्-पृथक्।।
अपान वायुर्मूत्रादे: करोति च विसर्जनम् ।
प्रसवद्यापि कुरुते वायुरेष निरन्तरम् ।
प्राणापानादि चेष्टास्तु क्रियते व्यान वायुना ।
उज्जीर्यते शरीरस्थमुदाने नभस्वता ।।
पोषाणादि शरीरस्थं समानं कुरुते सदा ।
X X X
उद्गारादि क्रियां नागा: , कुर्मो नेत्रादिमिलनम् ।
कृकर: क्षुत्करो ज्ञेयो, देवदत्तो विजृम्भकृत् ।।
मृतगात्रस्य शोभादि कृदुक्तोऽस्ति धनज्जय: ।"

मानव-शरीर में नाड़ी तन्त्र-सर्व-चेतनता का सूक्ष्म-शरीर निर्माण करता है। सर्वप्रमुख नाड़ी सुषम्ना से अनन्त नाड़ियाँ उद्भूत होती है। इन समस्त नाड़ियों का उद्गम स्थल मस्तिष्क ही है। इन्हीं नाड़ियों के द्वारा समस्त चराचर जगत् भासमान होता है और पुनः मस्तिष्क में ही विलीन हो जाता है। अर्थात् समस्त ज्ञान-विज्ञान इन्हीं नाड़ियों के सहयोग से मस्तिष्क में आविर्भूत होता है और पुनः तिरोहित हो जाता है। शरीर में दृश्य, सूक्ष्म तथा अति सूक्ष्म नाड़ियों का जाल फैला हुआ है। इनकी संख्या साढ़े तीन करोड़ मानी जाती है । यथा-

"सार्धस्त्रिकोट्यो नाडयश्च सर्वतः सन्ति सङ्.कुलाः।।"

इनमें 72 हजार नाड़ियाँ प्रमुख है । इन 72 हजार नाड़ियों में 72 नाड़ियाँ प्रमुख मानी जाती हैं, जिनसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म नाड़ियों की उत्पत्ति होती है। इन्हीं नाड़ियों के द्वारा रक्त-शोधन, रक्त-संचालन तथा प्राण-तत्व धारण किया जाता हैं । मस्तिष्क के भागोपभाग से निकल कर मेरूदण्ड स्थित सुषुम्ना के प्रभाव-गत ये नाड़ियाँ समस्त शरीर में फैली हुई होती है। इन 72 नाड़ियों में भी सोलह नाड़ियाँ प्रमुख है। इनका नाम निम्नलिखित है। -

1. मेधा, 2. प्राणधारिणी, 3. सर्वज्ञान-प्रदा, 4. मनःसंयमनी, 5. विशुद्धा, 6. निरूद्धा, 7.चित्रा, 8. वज्रा, 9. ब्रह्मनाड़ी । ये सभी नाड़ियाँ सुषुम्ना के वाम भाग में स्थित है । सुषुम्ना के दक्षिण भाग में स्थित अन्य नाड़ियों के नाम निम्नलिखित है:- 10. वायु-संचारिणी, 11. तेजःशुष्करी, 12. बल-पुष्टिकारी, 13. बुद्धि-संचारिणी, 14. ज्ञान-जृम्भण-कारिणी, 15. सर्वप्राणहरा तथा 16. पुनर्जीवनकारिणी । योगियों, मन्त्रज्ञों ने इन नाड़ियों के नाम इनके गुण-कर्म के आधार पर रखे हैं । यथा- "एताः सप्तस्थिताः नाडयो यथा नाम तथा गुणाः।"

ये नाड़ियाँ मस्तिष्क भाग से निकल कर सम्पूर्ण शरीर-प्रदेश में तन्तु-जालिका-निर्माण करती हुई शरीर-स्थित अंगों, उपांगों, चेतनावयवों को संचालित तथा नियन्त्रित करती हैं । सुषुम्ना की उत्पत्ति में बह्म-नाड़ी, चित्रा तथा वज्रा का योगदान होना माना जाता

है। अर्थात् ब्रह्म, नाड़ियों के सम्मिलन से सुषुम्ना की उत्पत्ति मानी जाती है। यथा-

"ब्रह्म नाड़ी च चित्रा वज्रा तथैव च ।
एतास्तिसो मिलित्वैव सुषुम्ना रूपतां गता: ।।"

यह सुषुम्ना नाड़ी लघु मस्तिष्क के नीचे स्थित है । यह त्रयग्निरूपा नाड़ी समस्त नाड़ियों में प्रमुख है। इस सुषुम्ना नाड़ी के वाम और दक्षिण भाग से 31 जोड़ी नाड़ियाँ निकलती हैं । यथा-

"तत: एवं विनिर्यान्ति वाम दक्षिण भागयो ।
एक त्रिंशत् ह्येकत्रिंशन्नाडिका: सूक्ष्मरूपत: ।।"

ग्रीवा-प्रदेश में आठ नाड़ियाँ सम्मिलित होती है। इन्हें 'अनुग्रीविका' नाम से जाना जाता है। इन नाड़ियों के अतिरिक्त द्वाद्वश नाड़ियाँ पीठ में आकर अवस्थित होती हैं, इन्हें 'अनुपृष्ठिका' नाम से जाना जाता है। कटि-प्रदेश में पाँच नाड़ियाँ स्थित हैं । इन्हें "अनुकटिका" कहा जाता है। त्रिक्-प्रदेश में भी पाँच नाड़ियाँ आकर मिलती हैं । इन्हें "अनुत्रिका" कहा जाता है। एक नाड़ी जो त्रिक्शीर्ष पर स्थित होती है, उसे "त्रिक्शीर्षकी" के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार बायें तथा दायें क्रम से बासठ नाड़ियाँ नीचे की ओर जाती है, जो सुषुम्ना द्वारा ही उत्पन्न होती हैं । इसके अतिरिक्त 12 जोड़ी नाड़ियाँ ऊपर की ओर जाती हैं । आधुनिक चिकित्सा शास्त्री भी इसकी सम्पुष्टि करते हैं ।

उपरोक्त, नाड़ियाँ, जिन-जिन स्थान विशेष पर मिलती हैं, वहाँ एक गुच्छा (चक्र) का निर्माण करती हैं। यह प्रत्येक नाड़ी पुंज या चक्र अपने आप में विविध आध्यात्मिक शक्ति-पुंजों को छिपाये हुए रहता है । योगी या मन्त्रज्ञ इन्हीं चक्रों के ऊपर चिन्तन या मन्त्र-जप करके वायु तथा ध्वनि की प्रेरणा से इन्हें जाग्रित करता है । इन्हें आधार-चक्र के नाम से जाना जाता है। इस तरह अनुग्रीविका-विशुद्ध-चक्र, अनुपृष्ठिका-अनाहत, अनुकटिका-मणिपूर, अनुकटिका के दो विशेष नाड़ियों के एक नाड़ी के साथ सम्मिलन से

स्वाधिष्ठान-चक्र (षड्दल) तथा कटिभाग नाड़ी की तृतीय और चतुर्थ नाड़ियों के सम्मिलन से मूलाधार-चक्र का निर्माण होता है। इसी तरह कटिभाग की एक नाड़ी तथा अनुत्रिका भाग की पाँच नाड़ियाँ त्रिक्शीर्ष की एक नाड़ी से मिलकर सप्तक निर्मित करती हैं, जिसे जानने के बाद सभी लोकों की सिद्धि प्राप्त होती है। ये सभी उर्ध्वमुखी होती हैं। इन विशुद्धादि चक्रों का अधो-चक्र भी होता है। इनका निर्माण निम्नलिखित क्रम से होता है-

(1) अनुग्रीविका तथा अनुपृष्ठिका से निकलने वाली नाड़ियाँ विशुद्ध-चक्र का अधोमुखी-चक्र बनाती हैं।

(2) अनुपृष्ठिका तथा अनुकटिका से निकलने वाली नाड़ियाँ अनाहत का अधोमुखी-चक्र का निर्माण करती हैं।

(3) अनुकटिका तथा अनुत्रिका से निकलने वाली नाड़ियाँ अधोमुख मणिपूर का निर्माण करती है तथा

(4) विशुद्ध और स्वाधिष्ठान से निकलने वाली नाड़ियाँ अधोमुख स्वाधिष्ठान का निर्माण करती हैं।

इसको निम्नलिखित तालिका से सरलतापूर्वक समझा जा सकता है-

विशुद्ध (उत्तर) + स्वाधिष्ठान (पूर्व) = अधोमुख स्वाधिष्ठान
मणिपूर (दक्षिण) + स्वाधिष्ठान (पूर्व) = अधोमणिपूर
अनाहत (पश्चिम) + मणिपूर (दक्षिण) = अधो अनाहत
विशुद्ध(उत्तर) + अनाहत (पश्चिम) = अधोविशुद्ध

यथा-

"अनुग्रीवानुपृष्ठिकायामधो वक्त्रं समुद्गतिः।
अधोमुखं विशुद्धारं चक्रमायं निगद्यते।"
अनुपृष्ठ्यनुकटिका-नाड़ी योगाद्धोमुखम्।
अनाहताख्यमपर चक्रं तत्र द्वितीयकम्।।"
सविशुद्धानाहतयोर्मणिपूरस्य च क्रमात्।
स्वाधिष्ठानस्य चैवाधः परस्परसुयोगतः।।"

अधोमुखी चक्रों में जो नाड़ियाँ क्रिया-शील रहती हैं- उन्हें दो भागों में विभक्त किया गया है - (1) चित्रा तथा (2) निरूद्धा । चित्रा सीवनी नामक नाड़ी शुक्रमोचन का कार्य करती है तथा निरूद्धा नामक नाड़ी शुक्र -संरोधन का कार्य करती है। यहाँ मन: संयमनी नाड़ी भी सूक्ष्म रूप से सक्रिय रहती है । इसी मन: संयमनी अर्थात् मन को संयमित करने वाली नाड़ी को सक्रिय करना अभीष्ट प्राप्ति की ओर बढ़ना है। तात्पर्य यह कि मन: संयमनी नाड़ी के द्वारा चित्रा तथा निरूद्धा की गति को कुन्दकर वीर्य को उर्ध्वगामी बनाना ही अभीष्ट होता है ।

सम्पूर्ण मानव-शरीर को दक्षता प्रदान करने के लिए मस्तिष्क से निकल कर जो नाड़ियाँ शरीर के निम्न भाग की ओर निस्सृत हैं, 32-32 की संख्या में पृथक्-पृथक् रूप से ललना चक्र में आकर 64 हो जाती हैं । ललना-चक्रसे विशुद्ध-चक्र में आकर यह सोलह हो जाती हैं । वायव्य कोण से चौदह नाड़ियाँ निकल कर अनाहत-चक्र पर मिलती हैं, यहाँ बारह की संख्या में परिदृष्ट होती हैं। नैऋत्य कोण से ग्यारह नाड़ियाँ मणिपूर में आकर मिलती हैं। यहाँ दस नाड़ियाँ परिदृष्ट होती हैं। इसी तरह आग्नेय कोण से आठ विशेष नाड़ियाँ आकर स्वाधिष्ठान में मिलती हैं। प्रमुख रूप से छ: नाड़ियाँ ही परिदृष्ट होती हैं। ईशान कोण से ग्यारह नाड़ियाँ निकल कर मूलाधार में आती हैं, इनके सम्मिलन से चार नाड़ियाँ परिदृष्ट होती हैं । आज्ञा-चक्र में मुख्यत: दो नाड़ियाँ मस्तिष्कीय सुषुम्ना से निकल कर मिलती है। आज्ञा-चक्र के ऊपर विषु नामक चक्र में आठ तथा कुल चक्र में छ: की संख्या में नाड़ियाँ उपस्थित रहती हैं। इस तरह 72 नाड़ियाँ मस्तिष्क से निकलती हैं । इस प्रकार आरोह-अवरोह क्रम से उर्ध्व एवं अधोमुख चक्रों में नाड़ियों की संख्या निम्नलिखित हैं :-

आज्ञा में - 2

विशुद्ध में -16,

अनाहत में - 12,
मणिपूर में - 10,
स्वाधिष्ठान में - 6,
मूलाधार में - 4

अधोमुख

विशुद्ध में - 14,
अनाहत में - 11,
मणिपूर में - 8,
स्वाधिष्ठान में - 11

शाखा-प्रशाखा-क्रम से इन नाड़ियों की संख्या 72000 बनती है। पुनः, ये नाड़ियाँ सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप-तानिका (जाल) बनाती हैं। इनमें पचास हजार अतिसूक्ष्म नाड़ियाँ प्राण वाहिनी हैं, पचास हजार नाड़ियाँ मनोवृत्तियों में परिवर्तन करने वाली हैं । पचास हजार नाड़ियाँ दूरदृष्टि से सम्बन्धित हैं। पचास हजार नाड़ियाँ कल्याणकारी कार्यों को शीघ्र सम्पादित करने वाली हैं तथा पचास पचास हजार की संख्या में अन्य नाड़ियाँ बोध-प्रवृत्ति तथा मनोवृत्तियों के आकर्षण-कार्य में संलग्न रहती हैं ।

नाड़ियों के स्थानों का विवरण :-

सुषुम्ना नाड़ी-इडा, पिंगला तथा सुषुम्ना में सुषुम्ना सर्वश्रेष्ठ नाड़ी है। इसे शांकरी नाम से भी जाना जाता है। यह मुक्ति मार्ग गामिनी है। यह ब्रह्म-रन्ध्र या ब्रह्म-कन्द, जो मस्तिष्क के निम्न भाग में स्थित रहता है, से निकलती है। इसके बायें में इडा तथा दाहिने में पिंगला नाड़ियाँ रहती हैं । इडा और पिंडला को क्रमशः चन्द्र और सूर्य नाड़ी के नाम से जाना जाता है। ये चन्द्र-सूर्य नाड़ियाँ काल-गति के प्रतीक है। सुषुम्ना काल गति से परे है। इसीलिए, इसे काल-शोषिणी नाड़ी भी कहा जाता है। सुषुम्ना के पार्श्व भाग में सरस्वती तथा कुहू नामक नाड़ियाँ स्थित हैं। इडा के पृष्ठ भाग में गान्धारी तथा हस्तिजिह्वा नामक नाड़ी स्थित है । पिंगला के पृष्ठ भाग में पूषा तथा यशस्विनी

नाड़ियाँ स्थित है। विश्वोदरा नामक नाड़ी कुहू तथा हस्तिजिह्वा के मध्य में स्थित है तथा कुहू और यशस्विनी के मध्य भाग में वारणा नामक नाड़ी स्थित है। पूषा और सरस्वती के मध्य में पयस्विनी नाड़ी स्थित है। अंगुष्ठा! से दायीं नाक तक विश्वोदरा व्याप्त है। यशस्विनी दायें कान की ओर स्थित है तथा पूषा बायें नेत्र के पास तथा पयस्विनी दाहिने कान के पास फैली है । अलम्बूषा अधोमूल में स्थित है।

उपरोक्त प्रमुख नाड़ियों के अतिरिक्त इस शरीर में अनेकानेक नाड़ियों का संजाल परिव्याप्त है, उनमें से कुछ के नाम निम्नलिखित है-

1. दीपनी, 2 बन्धिनी, 3. भासुरा, 4. संकोचिनी, 5. दूता, 6. प्रकाशिनी, 7. विलम्बिता, 8. घर्घरा, 9. वेशिनी, 10. पूर्णा 11. क्षिप्ता, 12. रूक्षा, 13. भोगिनी, 14. चण्डा, 15. भानुमति, 16.ध्रुवा, 17. केकरा, 18. कुटिला, 19. शुभ्रा, 20. धरित्री, 21. दर्दशकुला, 22. चित्रा, 23. तेजस्विनी, 24. सती, 25. अव्यक्ता, 26. मालिनी, 27. मन्दा, 28. द्राविणी, 29. मधुमति, 30. भ्रामिणी, 31. रसवहा, 32. सौवीरा, 33. कपिला, 34. कर्षिणी, 35. उत्तरा, 36. रञ्जिनी, 37. रेवती, 38. विश्वदूता, 39. आप्यायिनी, 40. चन्द्रा, 41. विशाला, 42. हेमा, 43. मैत्री, 44. नन्दा, 45. वज्रपादिनी, 46. इन्द्रावती, 47. विचित्रा, 48. माण्डवी, 49. कल्पा, 50. सुकल्पा, 51. लोहिनी, 52. पूतना, 53.धारिणी, 54. धोरणी, 55. धीरा, 56. सुरभि, 57. वेगवती, 58. विवर्णा, 59. कृन्तनी, 60. विकल्पा, 61. कोटरा, 62. अचला, 63. तपिनी, 64. तापिनी, 65. धूमा, 66. मरीचि, 67. ज्वालिनी, 68. रुचि, 69. अग्निज्वाला, 70. सम्मोहा, 71. मूला, 72. स्वप्नवहा, 73. तन्द्रावती, 74. लम्बिका, 75. घंटका, 76. विग्रहा, 77. कैवल्या, 78. तुरीया, 79.विभ्रान्ति, 80. प्रशान्ता 81. श्रेणी, 82. योगिनी, 83. निर्वाणा, 84. पुनर्भवा, 85. अमृता आदि।

इस तरह उपरोक्त नाड़ियों का संजाल सूक्ष्मातिसूक्ष्म

आपाद मस्तक फैला हुआ है। और इसके साथ ही ध्वनि -बिन्दु-नाद-परा-पश्यन्ती मध्यमा एवं बैखरी रूप में सर्व चेतनता भूतानां अर्थात् शिव-शक्ति का इस शरीर में वास है। मूलाधार से लेकर आज्ञा-चक्र तक सर्ववर्ण मय, सर्वमन्त्रमय देवता का प्रसार है । वर्णों (अक्षरों) की उत्पत्ति का कारण भी यह शरीर ही है। अर्थात् इस मानव-शरीर में ही सदाशिव की चेतनता एवं शक्ति की क्रिया-शीलता छिपी हुई है। और इसका उद्घाटन भी स्वयं मनुष्य ही कर पाता है। इसलिए साधक के सूक्ष्म या कारण शरीर का ज्ञान उपरोक्त वर्णित तथ्यों के आधार पर करके साधना के क्षेत्र में अग्रसित होने पर अभीष्ट सिद्धि मिलने की सर्वाधिक सम्भावना होती है।

यहाँ सविशेष उल्लेख्य है कि ब्रह्म-रन्ध्र, जो अलख, निरंजन पर-शिव तथा परा-शक्ति की निवास भूमि है, उसमें परमानन्द-रूप शिवा-शिव धूसर एवं श्वते रँग के तरल पदार्थों के रूप में भौतिक रूप से विद्यमान रहकर नाड़ियों में प्रवाहित होते रहते हैं । यह धूसर एवं श्वते द्रव सुषुम्ना में सर्वाधिक रहता है, जबकि अन्य नाड़ियों में इसकी मात्रा अत्यल्प होती है । भौतिक रूप से यही द्रव-द्रव सर्व चेतनता का ऊर्जा-स्रोत है।

आध्यात्मिक शरीर

मानव के स्थूल शरीर में नाड़ियों का जो स्थूल जाल फैला हुआ है, वही आध्यात्मिक शरीर का स्थूल शरीर (रूप) है। इन्हीं नाड़ियों में इडा, पिंगला एवं सुषुम्ना के प्रभाव से आध्यात्मिक शक्तियाँ गोपनीय रूप से निवास करती हैं। पूर्व के अध्यायों में बतलाया जा चुका है कि सुषुम्ना नाड़ी, जो अनन्त ऊर्जा का स्रोत है, से अनेकानेक नाड़ियाँ निकलती हैं और ग्रीवा भाग में, हृदय भाग में, कटि भाग में क्रमशः अनुग्रैविका, अनुपृष्ठिका तथा अनुकटिका नाम से परस्पर मिलकर नाड़ी -गुच्छा का निर्माण करती है । साथ ही अनुकटिका तथा अनुत्रिका भाग से निकलने वाली नाड़ियाों से छः नाड़ियाँ निकल कर त्रिकशीर्षकी नामक एक नाड़ी से मिलकर गुच्छा बनाती है। सुषुम्ना ब्रह्म-रन्ध्र से निकल कर त्रिकशीर्ष पर पहुँचती है और वहाँ कुण्डली के आकार में परिवर्तित हो जाती है। सुषुम्ना के दायें-बायें भाग से क्रमशः इड़ा और पिंगला नामक नाड़ियाँ निकलती हैं, जो नासिका के दार्ये-बायें भाग से होती हुई दायें-बायें अण्डकोष में जाती है।

उपरोक्त नाड़ियों से निकलने वाली नाड़ियों से जो गुच्छा कण्ठ भाग में बनती है, उसे विशुद्ध-चक्र कहा जाता है । इसके दो मुख हैं- ऊर्ध्वमुख और अधोमुख । उर्ध्वमुख में सोलह दल हैं और अधोमुख में चौदह । ऊर्ध्वमुख विशुद्ध-चक्र के सोलह दलों में पूर्वादि क्रम से अ,आ, से अः तक सोलह वर्ण-मयी मातृकाओं का निवास है । अधोमुखी इड़ा-पिंगला तथा सुषुम्ना के प्रभाव से अनेकानेक नाड़ियाँ निकल कर उपरोक्त चक्रों के अतिरिक्त निम्नलिखित चक्रों का निर्माण करती है, जिसका अधोर्ध्व (नीचे से ऊपर) क्रम निम्नलिखित है-

1. मूलाधार-चक्र- (गुदा-लिंग के बीच में),
2. स्वाधिष्ठान-चक्र (लिंग-मूल प्रदेश में)।

3. मणिपूर-चक्र -(नाभि में)
4. अनाहत-चक्र -(हृदय में)
5. विशुद्ध-चक्र -(कण्ठ में)
6. लम्बिका-चक्र- (स्वर यन्त्र या टेंटुआ के पास में)
7. आज्ञा-चक्र-(दोनों भौंहों के बीच भाग में)
8. मानस या मनःचक्र -(आज्ञा-चक्र के ऊपर अग्र प्रमस्तिष्क में)
9. सोम-चक्र -(मानस-चक्र के ऊपर " " ")
10. बोधिनी-चक्र- (सोम-चक्र के ऊपर " ")
11. नाद-चक्र -(बोधिनी-चक्र के ऊपर " ")
12. अर्ध चन्द्र-चक्र -(नाद-चक्र के ऊपर " ")
या ब्रह्म रन्ध्र
13. शक्ति-चक्र -(ब्रह्म-रन्ध्र से ऊपर " ")
14. काल-चक्र या गुरु-चक्र - (उससे ऊपर ")
15. समना
16. उन्मनी (सहस्त्रार)

देशिकों एवं सिद्ध मनीषियों द्वारा इन आधार-चक्रों को देव-देवीमय माना गया है। इनके दल नाना वर्ण-युक्त हैं । वर्णों के माध्यम से ही चक्र-स्थित अधिनायक भैरवों, अधिनायिका शक्तियों, कलाओं, तत्वों आदि की अभिव्यक्ति होती है। शब्द-ब्रह्म से लेकर भिन्न-भिन्न देव-देवियों तथा निर्गुण ब्रह्म महाविन्दु या सदाशिव का परम गोप्य लोक यही चक्र है।

मूलाधार-चक्र-यह चक्र गुदा भाग से चार अंगुल ऊपर है । यह चतुष्कोणीय आकार का है। इसका रंग पीला है। इसकी चार कर्णिकायें या दल हैं । इसके मध्य भाग में हाथी का चित्र है तथा पृथ्वी-तत्व का बीज "लँ" अंकित है। इसके अधिनायक गणपति तथा अधिनायिका महोग्रा हैं । इसके चारो दलों में पूर्वादि क्रम से क्रमशः वँ,शँ,षँ तथा सँ मातृकाक्षर अंकित है । ये चारों वर्ण क्रमशः वरदा, श्री, षण्डा तथा सरस्वती आदि देवियों के द्योतक हैं। इसी चक्र

में बिन्दु रूप में परावाक् या शब्द-ब्रह्म स्थित रहता है। यहीं इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना का मिलन होता है। मूल रूप से जीव का निवास स्थान भी यही चक्र है। छिन्नमस्ता यहाँ की समया है। मूलाधार में साकिनी शक्ति का निवास होता है। ब्रह्मा यहाँ के भैरव हैं। यथा- "मूलाधारे साकिनी स्याच्छक्ति ब्रह्मा च भैरवः ।" इसी चक्र में कुल कुण्डलिनी बिन्दु रूप में निवास करती है। इसे कामराज-पीठ भी कहा जाता है।

स्वाधिष्ठान-चक्र- या सृष्टि-चक्र- लिंगमूल में अनुकटिका नाड़ियों एवं अनुत्रिका के प्रभाव से इस चक्र का निर्माण होता है। इसके ऊर्ध्व तथा अधो दो मुख है । इसका रैखिक आकार वृत्ताकार है। इसके मध्य वरुण का बीज "वँ" अंकित है। यह जल तत्वात्मक है। तथा 'वँ' बीज के नीचे मकर का चित्र अंकित है। इसका रंग श्वेत है। इसके अधिनायक विष्णु तथा अधिनायिका भुवनेश्वरी हैं। इसके ऊर्ध्वमुख-चक्र में छः कर्णिकायें या दल हैं, जिनमें क्रमशः ब,भ,म,य,र तथा ल वर्ण अंकित हैं। उपरोक्त वर्ण क्रमशः बन्दिनी, भद्रकाली, माया, यशस्विनी, रक्ता तथा लम्बोदरी आदि देवी शक्तियों के द्योतक हैं। इनकी समष्टि शक्ति से मेदा-धातु की अधिष्ठात्री काकिनी शक्ति का स्वरूप अंकुरित होता है। स्वाधिष्ठान-चक्र को पूर्वाम्नाय कहा जाता है । इसलिये, यह चक्र कादि विद्या का उद्भव-स्थल के रूप में चिह्नित है। स्वाधिष्ठान की समया जया-दुर्गा हैं। काल-लिंग रूप हैं।

अधोमुख स्वाधिष्ठान चक्र- इसका निर्माण -विशुद्ध (उत्तर)तथा स्वाधिष्ठान(पूर्व) की नाड़ियों के सम्मिलन से होता है। इसे ईशाम्नाय कहा जाता है। उसकी अधिष्ठात्री महाकाली हैं। यह शुद्ध-सत्वा देवी हैं । इस चक्र के आठ दल हैं। प्रत्येक दल पर क्रमशः बँ,भँ,उँ,ऊँ, ऋँ,ॠँ,लृँ तथा लॄँ वर्ण अंकित हैं, जो क्रमशः बन्दिनी, भद्रकाली, उमा, ऊर्ध्वकेशिनी, ऋद्धिदा, ऋद्धीशा, लृता तथा लृका नामक देवी शक्तियों के प्रतीक हैं ।

मणिपूर चक्र-इस चक्र की नाड़ियों को चिकित्सा-शास्त्र में अनुकटिका नाड़ी कहा जाता है, जो सुषुम्ना के अनुकटिका पर्व से (कटि-स्थल पर) निकलती है तथा अन्य नाड़ियों से मिल कर एक गुच्छा बनाती है। इसी गुच्छा को मणिपूर-चक्र कहा जाता है। इसका रैखिक आकार त्रिकोणात्मक है, जो वृत्त से घिरा हुआ है तथा वृत्त की परिधि पर बाहर की ओर दस दल बने हुए हैं। इसका रंग लाल है। इसे स्थिति-चक्र भी कहा जाता है। इसके अधिनायिका दक्षिणा काली तथा अधिनायक रुद्र हैं। इस चक्र के दलों पर क्रमशः डँ,ढँ,णँ,तँ,थँ,दँ,धँ,नँ,पँ तथा फँ वर्ण अंकित हैं तथा त्रिकोण के मध्य में अग्नि का प्रतीक रँ बीज अंकित है। इसके दलों में क्रमशः डामरी, ढकारिणी, णाकारिणी, तकारिणी, स्थानी, दाक्ष्यायिनी, धात्री, नादा, पार्वती तथा फेत्कारिणी देवी-शक्तियों का निवास है। त्रिकोण में अग्नि का वास होने से उनकी दस कला-शक्तियों का दस दलों में निवास है। यह अग्नि तत्वात्मक है। इसकी समष्टिगत शक्ति लाकिनी है। इसकी समया कालरात्रि हैं।

अधोमुख मणिपूर-चक्र- मणिपूर (दक्षिण) तथा स्वाधिष्ठान (पूर्व) की नाड़ियों के मिलने से अधोमुख मणिपूर-चक्र का निर्माण होता है। इसे आग्नेयाम्नाय भी कहा जाता है। इसकी अधिष्ठात्री देवी महालक्ष्मी हैं। मणिपूर चक्र की समया कालरात्रि हैं । काल-रूप बाणलिंग है। अधोमुख मणिपूर-चक्र की आठ कर्णिकायें या दल है। इन दलों पर क्रमशः डँ,ढँ,णँ,यँ,रँ,मँ,फँ वर्ण अंकित हैं जो क्रमशः निम्नलिखित देवी-शक्तियों का प्रतीक हैं। जैसे- डँ-डामरी, ढँ-ढँकारिणी, णँ-णाकारिणी, मँ-माया, यँ-यशस्विनी, पँ-पार्वती, तथा फँ-फेत्कारिणी आदि।

अनाहत-चक्र-अनाहत-चक्र का निर्माण सुषुम्ना के अनुपृष्ठिका-पर्व से निकलने वाली नाड़ियाँ करती हैं। इसका रैखिक आकार वृत्ताकार है। वृत्त के मध्य में षट्कोण है और इसके मध्य में यँ, वायु बीज अंकित है। ''यँ'' बीज के नीचे मृग का चित्र अंकित है। यह

पश्चिमाम्नायात्मक है। इसे संहार-चक्र भी कहा जाता है। इसकी अधिनायिका हंसेश्वरी या कुब्जिका है। यह चक्र सादि विद्या का स्रोत-स्थल है। इसका अधिनायक हंसेश्वर या ईश्वर हैं । इसके वृत्त पर बारह कर्णिकायें या दल हैं। यह वायव्यात्मक है। इसके दलों पर क्रमशः कँ,खँ,गँ,घँ,ङँ.,चँ,छँ,जँ,झँ,ञँ,हँ,टँ तथा ठँ वर्ण अंकित है, जो क्रमशः कालरात्रि, खातीता, गायत्री, घण्टाधारिणी, ङार्णात्मिका, चण्डा, छायात्मिका, जया, झंकारिणी, ज्ञानरूपा, टंकहस्ता तथा ठंकारिणी देवी शक्तियों का प्रतीक है। अनाहत की समया बगलामुखी हैं। काल रूप स्वयंभूलिंग हैं। इस चक्र में स्थित देवियों का समष्टिगत स्वरूप राकिनी शक्ति है।

अधोमुख अनाहत-अनाहत (पश्चिम) तथा मणिपूर (दक्षिण) की नाड़ियों के सम्मिलन से अधोमुख अनाहत-चक्र का निर्माण होता है। इसे नैऋत्याम्नाय भी कहा जाता है। इसकी अधिनायिका चामुण्डा भद्रकाली हैं । इस चक्र के ग्यारह दल है। इन दलों पर क्रमशः बँ,भँ, लँ,उँ,ऊँ, ऋँ,ॠँ, लृँ,लॄँ,एँ, तथा ऐं वर्ण अंकित हैं, जो क्रमशः बन्दिनी, भद्रकाली, लम्बोष्ठी, उमा, ऊर्ध्वकेशिनी, ऋद्धिदा, ऋद्धीशा, लृता, लृका, एकपादा तथा ऐश्वर्या आदि देवी-शक्तियों के प्रतीक है।

विशुद्ध चक्र-विशुद्ध का निर्माण इडा-पिंगला तथा सुषुम्ना के अनुग्रैविका पर्व से निकलने वाली नाड़ियों के संयोग से हुआ है। यह आकाशात्मक है। इसका रैखिक आकार वृत्ताकार है तथा इसकी सोलह कर्णिकायें हैं। वृत्त के बीच में ''हँ'' बीज अंकित हैं तथा हाथी का चित्र अंकित है। इसके दलों पर क्रमशः अ,आ,इ,ई,उ,ऊ, ऋ,ॠ ,लृ,लॄ,ए,ऐ, ओ, ,औ,अं तथा अः वर्ण अंकित है, जो क्रमशः अमृता आकर्षिणी, इन्द्राणी, ईशानी, उमा, ऊर्ध्वकेशी, ऋद्धिदा, ऋद्धीशा, लृता, लृका एकपादा, ऐश्वर्या, ओंकारात्मिका, औषधा, अम्बिका तथा अक्षरात्मिका का प्रतीक है। इसका अधिनायक सदाशिव तथा अधिनायिका गुह्यकाली हैं । इस चक्र की समष्टिगत शक्ति को डाकिनी कहा जाता है। इस चक्र की समया महात्रिपुरसुन्दरी है।

अधोमुख विशुद्ध चक्र- इसका निर्माण विशुद्ध (उत्तर)तथा अनाहत (पश्चिम) की नाड़ियों के सम्मेलन से होता है। यह वायव्याम्नायात्मक है। इसकी अधिष्ठात्री देवी महासरस्वती हैं । इस चक्र में चौदह पद्म-दल हैं , जिनपर क्रमश: अँ,आँ,इँ,ई,घँ,ङँ,चँ,छँ,जँ,झँ,ओं,औं,अं,तथा अ : वर्ण अंकित हैं, जो क्रमश: अमृता, आकर्षिणी, इन्द्राणी, ईशानी, घण्टाधारिणी, ङार्णात्मिका, चण्डा, छायात्मिका, जया, झंकारिणी, ओंकारात्मिका, औषधा, अम्बिका तथा अक्षरात्मिका का स्वरूप-संकेत है। यहाँ अधिनायक ब्रह्मा तथा अधिनायिका महासरस्वती हैं। यह वायव्याम्नायात्मक है।

लम्बिका चक्र-विशुद्ध चक्र के चार अंगुल ऊपर स्वर-यन्त्र के पास 64 दलों युक्त लम्बिका चक्र है। इसमें महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वती के बीच में चामुण्डा का निवास है।

आज्ञा-चक्र - यह चक्र वृत्ताकार तथा दो पद्म-दलों से युक्त है। इसके मध्य में दाहिनी ओर पाँच मुखों तथा दस बाहुओं वाली शान्त्यातीता मनोन्मनी देवी का निवास है तथा बाँयें में पंचमुख-दस भुजाधारी शान्त्यतीतेश्वर विराजमान रहते हैं। इसके दोनों दलों में हँ तथा क्षँ वर्ण अंकित होते हैं । हँ वर्ण हँसवती तथा क्षँवर्ण क्षमावती देवियों के द्योतक हैं । इन दोनों के मध्य में हाकिनी शक्ति निवास करती है। इसकी अधिष्ठात्री देवी बाला त्रिपुर सुन्दरी हैं तथा अधिनायक महेश्वर हैं। इसकी समया नवरत्ना कुब्जिका है।

सहस्त्रार चक्र-आज्ञा चक्र के ऊपर कई गोप्य चक्रों के ऊपर सहस्त्रार चक्र है। यहाँ "याकिनी" शक्ति का वास होता है। इसकी अधिनायिका कामेश्वरी तथा अधिनायक कामेश भैरव है। इस चक्र में सुषुम्ना, ब्रह्म रन्ध, इडा, तथा पिंडला के प्रभाव से सहस्त्र-पद्म-दलों की रचना होती है। सर्वमन्त्रमय एवं सर्ववर्णमय है। यहाँ महानिर्वाण भैरव तथा महानिर्वाण भैरवी (षोडशी निर्गुण) का निवास है।

इस प्रकार नाड़ियों तथा प्राणादि वायुयों के संयोग से मिली सर्व वर्णमयी नाना रूपालंकार युक्त देव-देवियों का

निवास-स्थल इस शरीर में रहस्यमय रूप से विराजमान है। इसे जानना ही आध्यात्मिक शरीर तथा उसकी ऊर्जा को जानना है।

उपरोक्त प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियाँ इस मानव-शरीर में विन्दु-नाद-बीज रूप से नाड़ी-निर्मित चक्रों में रहस्याति-रहस्य रूप में प्रतिष्ठिता होकर आध्यात्मिक शरीर का निर्माण करती हैं और वायु-प्रभाव से सूक्ष्म से स्थूल एवं पुनः सूक्ष्मतम रूप में परमानन्दावस्था में विलीन हो जाती हैं। मुख्यतया इस शरीर में छिन्नमस्ता (महोग्रा), भुवनेश्वरी, दक्षिणाकाली, कुब्जिका, गुह्य कालिका तथा महात्रिपुर सुन्दरी अपनी आँगिक शक्तियों के साथ तथा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव तथा महेश्वर अपने आंगिक भैरवों (शाम्भव-रश्मिओं के साथ भिन्न-भिन्न रूपालंकारों से युक्त हो निवास करते हैं । इन्हें जानना ही विद्या को जानना है।

कूट-भेद से इन विद्याओं को क्रमशः कादि, हादि तथा सादि विद्या के नाम से मनीषियों के बीच जाना जाता है। कादि विद्या का निवास सृष्टि-चक्र अर्थात् स्वाधिष्ठान-चक्र है। कादि विद्या की प्रमुख काली, हादि विद्या की प्रमुख सुन्दरी तथा सादि विद्या की प्रधान तारिणी देवी है। कादि को वाग्भव कूट, हादि को विद्या कूट तथा सादि को शक्ति कूट के नाम से जाना जाता है। आम्नाय की दृष्टि से कादि-क्रम में गुहय काली (उत्तराम्नाय) भुवनेश्वरी (पूर्वाम्नाय) तथा कुब्जिका (पश्चिमाम्नाय) प्रधान देवियाँ हैं । हादि-क्रम में दक्षिणा काली (दक्षिणाम्नाय) महात्रिपुर सुन्दरी (ऊर्ध्वाम्नाय)प्रमुख है । सादि में बौद्ध-मत से आर्यतारा प्रमुख हैं । शिव-मत से उपसादि -क्रम की विद्यायें आराध्या है। अतः उप-सादि क्रम में महाकाली (ईशा नाम्नाय), महालक्ष्मी (आग्नेयाम्नाय) तथा महासरस्वती (वायव्याम्नाय) की प्रमुख देवी है। कादि क्रम से उत्तराम्नाय की अन्तर्लीन कला का मूलभूत राव-बीजात्मक-तत्व, पूर्वाम्नाय की सृष्टिकला का मूलभूत माया-बीजात्मक-तत्व तथा पश्चिमाम्नाय की संसार-कला का मूलभूत खेचरी बीजात्मक-तत्व है। हादि-क्रम में दक्षिणाम्नाय की स्थिति कला का मूलभूत कुन्ती बीजात्मक-तत्व, दक्षिणाम्नाय मिश्रित

अधराम्नाय की बोध-कला की मूलभूत स्त्री-बीजात्मक तत्व तथा ऊर्ध्वाम्नाय की अनुग्रह कला की मूलभूत प्रसादी बीजात्मक-तत्व है। उप-सादि क्रम में ईशानाम्नाय की ऐशान्यकला की मूलभूत काम बीजात्मक-तत्व वायव्याम्नाय की वायव्यकला का मूलभूत-वाणी बीजात्मक-तत्व तथा आग्नेयाम्नाय की आग्नेय-कला की मूलभूत त्रपा-बीजात्मक-तत्व है। कादि-हादि तथा उप सादि-क्रम में कुल नौ बीजात्मक तत्व अन्तर्लीन हैं।

फिर उपरोक्त प्रत्येक बीज से तीन-तीन विद्याओं का उद्‌भव हुआ है।

(1) राव-बीजात्मक तत्व से- सिद्धिलक्ष्मी, सिद्धिकराली तथा काम-कला काली,

(2) माया बीजात्मक-तत्व से-उन्मनी, पूर्णेश्वरी, तथा भुवनेश्वरी,

(3) खेचरी बीजात्मक-तत्व से-अघोर कुब्जिका, वज्रकुब्जिका तथा समया कुब्जिका,

(4) कुन्ती बीजात्मक तत्व से-आद्या काली, श्यामा काली तथा दक्षिणा काली,

(5) स्त्री-बीजात्मक तत्व से एक जटा, नील सरस्वती तथा उग्रतारा,

(6) प्रसादी-बीजात्मक-तत्व से-बाला त्रिपुरा, श्री विद्या ललिता तथा षोडशी

(7) काम-बीजात्क-तत्व से-महाकाली, विपरीत प्रत्यंगिरा तथा कालरात्रि,

(8) वाणी-बीजात्मक तत्व से-महासरस्वती, ज्ञान सरस्वती तथा चिन्तामणि सरस्वती ।

(9) त्रपा-बीजात्मक-तत्व से-महालक्ष्मी, सिद्धिकाली तथा उग्रचण्डा दुर्गा ।

इसी तरह अनेकानेक शक्ति तथा शाम्भव रूप, उद्‌भूत होते हैं तथा महाबिन्दु में विश्रान्ति पाते हैं। इस तरह आध्यात्मिक शरीर को जान लेने के बाद साधक को साधना की ओर अग्रसर होने पर आशातीत लाभ होता है ।

कृत-कर्म-दोष के कारण ही आत्मा जन्म लेती है।

भारतीय महर्षियों, आत्म-अनुसन्धान-कर्त्ता मनीषियों ने पूरा काल में ही यह घोषणा कर दी कि अलख, अनादि, अविनाशी परम ब्रह्म परमेश्वर (सदाशिव) से विखण्डित हो आत्मा कही जानेवाली ऊर्जा-पुञ्ज अजन्मा तो नहीं, किन्तु सर्वथा अजर अमर एवं अविनाशी तत्व है। इसके अस्तित्व, अस्मिता एवं शक्ति-पुञ्ज होने की पुष्टि करते हुए श्रीमद् भागवत् गीता में स्वयं भगवान श्री कृष्ण ने पार्थ से कहा है कि "आत्मा ईश्वर का अविनाशी तत्व है। यह एक पूर्ण ऊर्जा-स्रोत है । यह स्वयं शक्तिमान है। साथ ही ईश्वर तक पहुँचने का प्रबल माध्यम भी है।

जगत् में अबतक कोई ऐसा अस्त्र-शस्त्र नहीं बन सका है, जो आत्मा का भेदन कर सके । हवा इसका शोषण नहीं कर सकती । अग्नि इसको नहीं जला सकती । यह सदा अजर-अमर एवं स्थायी तत्व है। शरीर के अशक्त होने पर वह ठीक उसी तरह काया का परित्याग कर देती है, जिस तरह वस्त्र के पुराना होने पर मनुष्य उसे त्याग देता है।" कहने का तात्पर्य यह है कि सृष्टि के आदिकाल में मात्र निष्कल सदाशिव ही थे। सदाशिव ने ही स्वयं को सकल ईश्वर के रूप में परिणत किया और घोषणा की "एकोऽहम् बहुस्याम"। फिर सकल ईश्वर (महा विष्णु)की सम्पूर्ण कला-ईयता-त्रिमूर्ति अर्थात् ब्रह्मा-विष्णु-महेश के रूप में प्रतिमूर्त हुई । इसी भाँति सदा शिव-तत्व के साथ सम्पृक्त ललिता-शक्ति भी उन्हीं का अनुशरण करती हुई महाकाली, महालक्ष्मी एवं महासरस्वती के रूप में प्रतिमूर्त एवं क्रिया-शील हो गईं। इन महती ऊर्जा-पुंजों का विखण्डन रूका नहीं । देव-आत्माओं का अस्तित्व स्थापित हुआ और तत्पश्चात् आत्मायें अलग होकर प्रतिमूर्त एवं क्रिया-शील हो उठीं ।

जिस तरह आधुनिक वैज्ञानिक के अनुसार निहारिका में

हुए विस्फोट के कारण तदूर्जा-स्वरूप सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध ,वृहस्पति, शुक्र, शनि, पृथ्वी आदि जैसे ग्रहों-उपग्रहों का अस्तित्व ब्रह्माण्ड में स्थापित हुआ ठीक इसी तरह निष्कल सदा शिव के कलायमान होने पर आत्माओं का अस्तित्व ब्रह्माण्ड में स्थापित हुआ। जिस तरह निहारिका के विखण्डन से विनिर्मित ग्रहों-उपग्रहों का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है, गति है, स्वरूप है, किन्तु, अप्रत्यक्षत: ये सभी सूर्याकर्षण में आबद्ध हैं ठीक इसी तरह ब्रह्माण्ड में बिखरी अनन्त आत्मायें अपनी स्वतन्त्र, अस्मिता, स्वरूप, गति, तेज एवं ऊर्जा रखते हुए भी अप्रत्यक्ष रूप से शिव-तत्वाश्रित हैं ।

ध्यातव्य है कि सूर्य से लेकर अन्यान्य ग्रह-उप-ग्रह मात्र भौतिक ऊर्जा-पुञ्ज है, जड़ है, चिन्तन-रहित हैं, वहीं आत्मा चेतनता-सम्पन्न, आदि-मध्यान्त का ज्ञाता, एक दिव्य तेजस्-स्वरूप है।

सृष्टि के आदिकाल में देवात्माओं की संख्या अधिक थी। पुराणों के अनुसार इनकी संख्या तैंतीस कोटि थी। ललिता-शक्ति की संख्या नौ कोटि थी। पृथ्वी पर आनेवाली आत्माओं में आयामों से उच्चस्थ विचरण करने वाली आत्माओं में जहाँ ईश-तत्व की मौलिकता पूर्णतया मौजूद थीं, वहीं पृथ्वी-तल पर विचरण करने वाली आत्माओं अर्थात् गर्भ में आने वाली आत्माओं पर उत्तरोत्तर भौतिकता की छाप अधिकाधिक पड़ने लगी।

जबतक इन आत्माओं की मौलिकता बरकरार थी तब तक गर्भ में आने के बाद भी इनमें ईश्वरीय तत्व की अधिकता रही। इनमें दैवी गुण प्रचुर मात्रा में था। इन आत्माओं द्वारा संचालित मानवीय काया में सहज प्रेम, प्रकृति के प्रति कुतूहल, सहानुभूति, दया आदि का आधिपत्य था। इनकी मूल प्रेरणा आत्मानुसन्धान के प्रति समर्पित थी। क्योंकि, इनपर पंच भौतिक महा तत्व-ज़नित कायिक सुखानुभूतियाँ हावी नहीं थीं । यह कहा जा सकता है कि कायिक इन्द्रिय-जनित संवेदन-शीलता का इनके ऊपर अत्यल्प प्रभाव था। इस काल में मानव सर्वाधिक ऊर्ध्वमुखी था। तप:चारी एवं

ईश-तत्व-चिन्तक था। इसीलिए, सृष्टि के इस प्रारम्भिक काल को ''सत्युग'' की संज्ञा दी गई। क्योंकि, ''सत्'' ईश्वर का प्रच्छन्न रूप है। सत् से विखण्डित सदांश भी अपना मूलरूप अपने आप में सहेजे-समेटे हुए था। रजो और तमो गुण के प्रति इनकी अनभिज्ञता थी या उपेक्षा का भाव था ।

किन्तु, काल-क्रम से मनुष्य को पंच-भौतिक महा तत्वों ने अपने प्रभाव की ओर आकृष्ट करना प्रारम्भ कर दिया । शारीरिक इन्द्रियाँ तीव्र वेग के साथ सम्वेदन-शील होने लगीं। इन्द्रिय-भोग की क्षणिक ही सही, सुखानुभूति ने इनके विचारों को अपनी ओर आकृष्ट करना प्रारम्भ कर दिया । विरले ही इस इन्द्रिय-जनित-सुखाकर्षण से मुक्ति पाने में सफल हो पाते । सामान्य जन तो इसी के वशीभूत होता चला गया। परिणामत: आत्मा की निर्मलता कुन्द होती चली गई। ईश्वरीय अंश एवं पूर्ण तेजस् सम्पन्न होने के बावजूद भी आत्म-मण्डल के ऊपर कर्म-का आवरण आवेष्टित होने लगा। इसी कर्म-बन्धन ने परम स्वतन्त्र आत्मा-तत्व को पर-तन्त्र बना डाला। अब न वह अपनी इच्छा से किसी गर्भ में प्रवेश कर सकता था और न इच्छानुरूप स्वतन्त्रत: ब्रह्माण्ड में विचरण ही कर सकता था। अब उसका विधाता से नाता-रिश्ता भी टूटता चला गया ।

अर्थात् जिस तरह किसी विशाल मणि के ऊपर मिट्टी का लेप चढ़ा देने पर उसकी प्रभा लेप से बाधित हो जाती है, उसी तरह आत्मा के ऊपर कर्म-बन्धन का आवरण (लेप) आवेष्टित हो जाने से उसका मूल तेजस् स्वरूप कुन्द हो जाता है। उसकी स्वतन्त्रता जाती रहती है। कुन्द हो जाती हैं उसकी प्रेरण-शक्तियाँ ।

यदि सद्गुरु के उपदेश एवं अपने स्वच्छ आचरण से ऐसी आत्मा-वंचित रही और सांसारिक सुखोपलब्धि के प्रति आसक्त एवं क्रियाशील रही तो उस आत्मा की पीड़ायें और भी बढ़ जाती हैं। उसके बन्धन आवरण और भी मजबूत हो जाते हैं। उसका सम्पूर्ण अस्तित्व नाकारात्मक हो जाता है और कर्मावरण के चलते उसे

बार-बार तदनुरूप गर्भ में प्रवेश करना पड़ता है।

इस कर्म-बन्धन का आवरण आत्माओं पर काल-चक्र के साथ और भी गहराता चला जाता है। यही कारण है कि जहाँ ''सतयुग'' अर्थात् सृष्टि के आदिकाल में मानव सतोगुण-सम्पन्न रहा, त्रेता में गुरुवरों के अंकुश-बल से मार्यादित रहा वहीं द्वापर काल में रजोगुणी एवं तमोगुणी बन गया। सतोगुण-सम्पन्न लोगों की संख्या अत्यल्प हो गई । रजोगुण एवं तमो-गुण सम्पन्न मनुष्यों की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि हुई। दया-करुणा , स्नेह, सत्य, शील, तप, योग, सहानुभूति का स्थान, मोह, मद, मात्सर्य, कुण्ठा, क्रोध दम्भ, उच्छृँखलता, छल-प्रपंच एवं स्वार्थ ने ले लिया। तात्पर्य यह कि कायिक इन्द्रियों की संवेदन-शीलता से प्रेरित मानव ''अहं'' का शिकार हो गया । उसके हृदय में सुख-भोग की अन्तहीन लिप्सायें कुलाँचे भरने लगीं । अहं की तुष्टि के लिए वह समस्त भू-गोल की समृद्धि के साथ-साथ अनन्त ब्रह्माण्ड को भी अपनी मुट्ठियों में कैद करने की बात सोचने लगा। पहले तो ऐसी सोच व्यक्तिगत स्तर पर पल्लवित-पुष्पित होती रही, व्यक्तिगत परितुष्टि के लिए ही । लेकिन, समय के साथ-साथ ऐसी सोच का दायरा, स्वरूप विस्तार-सामूहिक, राष्ट्रीय हो चला गया । अणु, परमाणु-बम इसी अहं की संतुष्टि की परिणति है।

इस वैचारिक प्रदूषण का विकराल रूप द्वापर-काल में ही प्रकट हो चुका था। अहं तुष्टि एवं वर्चस्व के लिए ही लड़ा गया महाभारत का युद्ध । तब तक दिव्य तेजस् स्वरूप ईश्वरीय अंश आत्मायें अतीत के मानवों के कर्म-बन्धन में सर्वाधिक जकड़ चुकी थीं। विवश हो चली थीं। जिस-जिस शरीर की वह अधिकारिणी थी, उस पर कई धर्म हावी हो गये थें । जैसे-कुल-धर्म-जाति-धर्म, मातृ-धर्म, पितृ-धर्म, गुरु-धर्म, राज-धर्म, वर्णाश्रम-धर्म आदि-आदि। वास्तविक अध्यात्म-विद्या की ओर विरले ही मुखातिब थे। विविध धर्मो में आबद्ध मानव किसी सद्गुरु का उपदेश भी श्रवण करने के लिए

तैयार न था । जिसकी रुचि थोड़ी परिमार्जित थी भी, तो भी वह आध्यात्मिक सत्य या पूर्ण ईश्वरीय-सत्य पर भरोसा करना नहीं चाहता था। यों कहा जाय कि वह "प्रत्येक्षमेकं दर्शनम्" की गणितीय चाल से चलना चाहता था। अर्थात् सर्वाधिक व्यक्ति मूर्खता(जड़ता) को प्राप्त हो चुके थे। तभी तो श्री कृष्ण जैसे गुरु को भी पार्थ को योग की विभूतियों, आत्मा की अनश्वरता, कर्म-तत्व, निष्कर्म-तत्व आदि की शिक्षा देते-देते थक जाना पड़ा और अंततोगत्वा यह कहना पड़ा कि-"पार्थ ! तुम्हारे विचारों पर नाना प्रकार के धर्मों का अमिट प्रभाव मौजूद है। जब तक उन धर्मों से तुम्हें मुक्ति नहीं मिलेगी तुम "सत्य" का दर्शन करने में समर्थ नहीं हो पाओगे। तुम उन तमाम धर्मों का, जैसे जाति-धर्म, कुल-धर्म, राज-धर्म, रिश्ते-नातों का धर्म आदि त्याग करो। केवल मेरे धर्म, अर्थात् ईश्वर-धर्म (अध्यात्म-विद्या) को ग्रहण करो तभी तुम्हारे विचारों में सत्य का प्रस्फुटन होगा और इस अध्यात्म-विद्या में अवगगाहन करने से तुम सृष्टि के वास्तविक रहस्य को समझने में सक्षम हो सकोगे और लक्ष्य को निर्धारण करने में समर्थ हो पाओगे । साथ ही मनुष्य का सर्वोत्तम लक्ष्य "मुक्ति" की भी तुझे प्राप्ति होगी।

"सर्वान् धर्मान् परित्पज्य मामेकं शरणं व्रज"

महाभारत कालीन इस वर्चस्व की लड़ाई ने लोगों के मन में दिव्यास्त्रों की प्राप्ति की होड़ पैदा कर दी थी।

तब से जैसे-जैसे समय आगे की ओर सरकता गया आत्माओं पर कर्म का बन्धन और भी दृढ़ से दृढ़तर होता गया। अब गिने-चुने ऋषियों, तपस्वियों की ही स्वतंत्र आत्मायें ब्रह्माण्ड में विचरण करने में समर्थ रह गई है। पूर्व की निर्मल आत्मायें ही जन्म-जन्म तक के कर्म-बन्धनों से विवश होकर अनचाहे मातृ-गर्भस्थ-पिण्ड में प्रवेश करती हैं और जन्म-जन्मान्तर के मित्र, रिपु, स्त्री, पुत्र के द्वन्द्व-जाल में फंस कर तड़पती रहती हैं । मुक्ति के लक्ष्य की बात कोई अपने गले से नीचे नहीं उतारता । इस भाँति

भौतिक उपलब्धि में ही सभी व्यस्त एवं मस्त रहते हैं ।

प्रश्न उठता है कि जब आत्मा परम चैतन्य, दिव्य तेज -सम्पन्न, अजर-अमर एवं अविनाशी है तो फिर वह कर्म-बन्धन अर्थात् मानव (कायाधारी) द्वारा किये गये कर्मों के बन्धन में कैसे बँध जाती है? यह कर्म-बन्धन उसको किस तरह जकड़ लेता है?

उपर्युक्त प्रश्नों का उत्तर निम्नलिखित बातों से स्पष्ट होगा। विधाता इस मानव शरीर-रूपी महायन्त्र का निर्माण पंच महाभूतों के संयोग से करता है। ये पंच महाभूत माता-पिता के रजो-वीर्य स्थित सूक्ष्म शुक्राणुओं के सम्मिलन से विकसित हो पिण्ड (काया) का रूप धारण करते हैं। गर्भस्थ शिशु की काया में आत्मा प्रवेश कर सम्पूर्ण यन्त्र को ऊर्जस्वित कर देती है। शरीरस्थ सम्पूर्ण अंग क्रिया-शील हो उठते हैं । सजगता आ जाती है काया में । आत्मा काया की स्वामिनी बन बैठती है। आत्मा के काया में प्रवेश करने मात्र से शरीरस्थ इन्द्रियाँ सजग हो उठती हैं । उसकी संवेदन-शीलता बढ़ जाती है। इसी इन्द्रिय-जनित सम्वेदन-शीलता से प्रेरित होकर मनुष्य कर्म की ओर सक्रिय होता है। इस सम्वेदन-शीलता तथा कर्म की प्रक्रिया-सुख की अनुभूति प्रथमतया वह समाज तथा प्रकृति की संगति में पाता है। पुनः, वह लक्ष्य-निर्धारित कर आगे बढ़ जाता है। सुखानुभूति में जैसे-जैसे उसकी रुचि बढ़ती जाती है, वह उच्छृँखल होता जाता है। सदगुरुओं, मनीषियों द्वारा प्रतिपादित सारे नियमों -उप-नियमों को लाँघकर सम्पूर्ण सुखानुभूति का, संतृप्ति को, अपनी मुट्ठियों में कैद कर लेना चाहता है। सत् प्रेरणा देने वाली आत्मा तब विवश और लाचार हो जाती है। मनुष्य को उसके द्वारा किये जा रहे कर्म से विरत कर पाना उसके वश की बात नहीं होती । चूँकि, आत्मा काया की स्वामिनी होती है। अतः, स्वामित्व-भाव-बोध के कारण ही वह दोषी होती है। और यही दोष उसका बन्धन बन जाता है। उसकी पर-तन्त्रता की जड़ है। निम्नलिखित उदाहरण से और स्पष्ट हो जायेगा कि अधिकार-बोध जनित दोष क्या है और वह किस प्रकार

अधिकारी को दोष-ग्रस्त बना डालता है ?

घोड़ा पर सवारी करते हुए किसी अश्वारोही को आपने अवश्य देखा होगा । घोड़ा स्वयं एक पूर्ण चैतन्य प्राणी है। वह बलिष्ठ भी होता है। लगाम न लगी हो तो किसकी विसात है कि उसे पकड़ कर कब्जे में रखे । उस पर सवार व्यक्ति भी एक पूर्ण स्वतंत्र, चैतन्य एवं बलिष्ठ होता है। अलग-अलग रहने पर दोनों स्वतंत्र, दोनों चैतन्य एवं अपने-अपने मन का राजा होते हैं। किन्तु, जब व्यक्ति घोड़े पर सवार हो जाता है तब वह उसका स्वामी बन जाता है। वह घोड़े को निश्चित मार्ग पर अपने गन्तव्य की ओर ले जाना चाहता है। घोड़ा सरपट दौड़ने लगता है। इसी बीच कोई व्यक्ति घोड़े के पाँव के नीचे आ जाता है। इस हादसे को कुछ दर्शक देखते हैं । उनमें से कुछ आहत व्यक्ति को बचाने के लिए दौड़ पड़ते हैं तो कुछ व्यक्ति घोड़े और घुड़सवार को पकड़ने के लिए लपक पड़ते हैं ।

सामान्य मत से तो घोड़ा को पकड़ना एवं उसे दण्डित करना सटीक बैठता है। क्योंकि, दौड़ते हुए घोड़े के पाँव से व्यक्ति आहत हुआ रहता है। लेकिन, यहाँ सामान्य मत से दर्शक-गण कार्य नहीं करते । उनका सारा का सारा आक्रोश घुड़सवार के प्रति ही होता है। उसे ही वे फटकारते हैं, या दण्डित करते हैं। ऐसा इसलिए कि घोड़ा चैतन्य है, वहीं दौड़ लगा भी रहा था। किन्तु, उसका अधिकारी घुड़सवार ही है। और अधिकारी होने के नाते ही उसे दण्ड का भागी बनना पड़ता है। अतः, यही अधिकार बोध-आत्मा के साथ कार्य करता है। व्यक्ति तो अपनी इन्द्रिय सम्वेदन-शीलता से प्रेरित हो क्रिया-शील होता है, कर्म करता है। लेकिन, शरीर के अधिकारी होने के कारण ही आत्मा को दोष-ग्रस्त होना पड़ता है। इसी कृत कर्म-जनित-दोष या पाप को आत्मा का "कर्म-बन्धन्" या जन्मार्जित संस्कार् कहा जाता है। इसी कर्म-दोष से विवश होकर आत्मा दोषानुकूल परिस्थिति को इर्द-गिर्द पाकर मातृ-गर्भ में प्रवेश पाता है।

इसी कर्मावरण (दोष) को काटने के लिए सदगुरु किसी को उपदेश देते हैं । कोई तप: चर्या करता है, कोई योग-साधना या कोई निष्काम योग साधना करता है।

आत्मा के इसी कर्म-जनित-दोष से ग्रसित होकर पुर्नपुन: मातृ-गर्भ में आने की बात भगवान बुद्ध ने मानी है। उन्होंने साफ तौर पर कहा है कि "आत्माओं के गर्भ में प्रवेश करना उनके पूर्व जन्मार्जित कर्म-दोष पर आधारित है, ईश्वर की कृपा पर नहीं।" कर्म-बन्धन से मुक्ति की प्रेरणा सद्गुरु से ही प्राप्त होती है। और उसका अनुष्ठाता भी स्वयं व्यक्ति ही होता है। हाँ, सतोगुण की ओर अग्रसर होने पर पूर्ण सतोगुणी कृपा अवश्य प्राप्त होती है।
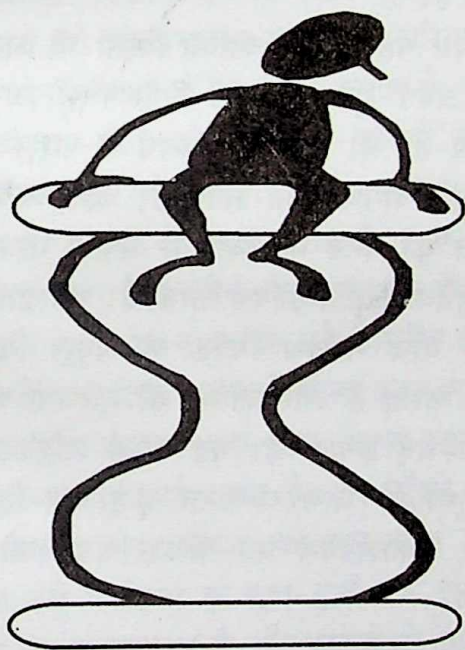
क्रम-दीक्षाः एक विवेचना

दीक्षा का अर्थ मात्र मार्ग-दर्शन, शिक्षण या उपदेशन नहीं होता है।आध्यात्मिक सिद्धि के लिए दीक्षा एक अनिवार्य प्रक्रिया है। इसके बिना साधना में सफलता की कल्पना करना आकाश-कुसुम जैसा ही है। दीक्षा समर्थ गुरु के द्वारा ही दी जाती है। समर्थ गुरु से तात्पर्य उस व्यक्ति से है, जिसने परा-विद्या में परम्परानुसार दीक्षा प्राप्त कर स्व-गुरु प्रदत्त साधनाओं को सफलता पूर्वक सम्पन्न कर सिद्धियों को कर-गत कर चुका होता है।

अर्थात् आध्यात्मिक-ज्ञान-सिद्धियों के लिए सिद्ध-हस्त गुरु द्वारा स्व-सिद्धियों की ऊर्जा-शक्ति बीज रूप में निषेचित कर शिष्य के तन-मन-प्राण में प्रतिष्ठापित करने की क्रिया को ही दीक्षा की संज्ञा दी गई है।

तात्पर्य यह कि जो व्यक्ति किसी भी आध्यात्मिक मार्ग से दीक्षित एवं अपने गुरु के मार्ग-निर्देशन में अनुशासन पूर्वक ध्यान-धारणा, जप-तप या योग के माध्यम से परा-विद्या के रहस्यों को जानने में सक्षम-समर्थ हुआ रहता है, वही व्यक्ति परम्परा से प्राप्त ऊर्जा-शक्ति को यन्त्रों में, ध्यान में अथवा मन्त्र में पुटित कर अपने शिष्य के हृदय में प्रतिष्ठापित करता है। गुरु द्वारा बीज रूप में प्रतिष्ठापित यही बीज गर्भस्थ पिण्ड के सदृश विकसित होकर शिशु-रूप ग्रहण करता है और जीवन की गुत्थियों को सुलझाने में शिष्य को सामर्थ्यवान् बनाता है। यह ऊर्जा-शक्ति-प्रकाश-स्वरूप होती है, जौ मनुष्य के जन्म-जन्मान्तर कृत पाप-तिमिर-जाल को छिन्न-भिन्न कर, प्रकाश-पथ का पथिक बनने की क्षमता प्रदान करती है।

मानव अधिकार बोध के कारण कई जन्मों में प्राप्त शरीर, विचारों, क्रियाओं द्वारा संचित पाप-पुण्य का सहयोगी बन जाता है। इन्हीं कृत पापों का अन्धकार या भ्रम आत्मा को आवेष्टित

किये हुए रहता है। जिसके चलते प्रकाशवान् आत्मा भी घने बादलों के बीच में छुपे हुए सूर्य की भाँति दीप्ति-हीन हो जाता है। दीक्षा के द्वारा ही गुरु मनुष्य को आत्मा पर पड़े आवरण को विनष्ट करता है। माया, भय, घृणा, द्वेष, मोह, क्रोध, कटुता, शत्रुता, असहजता, अमानुषिकता, क्रूरता, संशय तथा कुविचारादि के जालों को काट कर सद्गुरु शिष्य में ज्ञान-पिपासा, विवेक, करुणा, दया, सहजता, अनलसता, शान्ति, प्रेम एवं अहिंसादि वृत्तियों को उजागर करता है और उसे सत्यान्वेषी बनाता है। सत्य से , अमृत से, ज्ञान से, रहस्यमयी विद्याओं से, अतीन्द्रिय शक्तियों से शिव-स्वरूप परम ईश्वर से परिचय कराता है एवं साक्षात्कार भी ।

दीक्षा द्वारा गुरु जहाँ आत्मा और परमात्मा के बीच फैले सघन-तिमिर-जाल को विनष्ट कर प्रकाश-पथ का निर्माण करता है जिसके सहारे आत्मा-परमात्मा का सम्मिलन सुनिश्चित होता है, वहीं शारीरिक क्रियाओं को भी प्रभावित करता है। मस्तिष्क-स्थित शुभद ग्रन्थियों की संवदेन-शीलता में भी वृद्धि करता है, सामान्य इच्छाओं के प्रति सम्वेदन-शील होकर मानव-वृत्तियों को भटकानेवाली ग्रन्थियों की क्रिया-क्षमता को घटाकर निष्क्रिय बनाता है। ध्यान-धारणा को पुष्ट करता है। जड़ता को नष्ट करता है। साथ ही, शरीर-स्थित नाड़ियों का शोधन कर बल-वीर्य-तेजस् बढ़ाता है। सच तो यह है कि दीक्षा के द्वारा गुरु गंगा के प्रवाह को विपरीत (उल्टी)दिशा की ओर मोड़ देता है। जागतिक प्रपंच में फँसा हुआ मनुष्य, सुख-दुःख के द्वन्द्व में फँसा हुआ मनुष्य,ममता-ग्रस्त मनुष्य अपने मूल की खोज के लिए आकुल-व्याकुल हो जाता है। वह ढूँढ़ने लगता है अपनी अमरता का, अजरता का, आनन्द का मूल-स्त्रोत और उसकी यही ललक, लालसा उसे परमेश्वर के गुहा-द्वारों तक ला खड़ा करती है। वह ईश्वर का द्वार खटखटाता है और झटके से खुल जाता है प्रभु का द्वार । पलक झपकते ही एक अदना, बौना मानव''सोऽहम् ब्रह्माऽस्मि'' की उद्घोषणा कर उठता है। ब्रह्माण्ड के एक सामान्य

जीवसे ब्रह्माण्ड नायक बन जाता है।

दीक्षा आध्यात्मिक समुन्नति का प्रथम सोपान है, किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण सोपान है। दीक्षा के कई प्रभेद हैं-जैसे-क्रम-दीक्षा, शक्ति-पात-दीक्षा, स्पर्श-दीक्षा आदि। यहाँ शास्त्रों में प्रचलित क्रम-दीक्षा की विवेचना करना ही लेखक का मुख्यतया वर्ण्य विषय है।

शाक्तों का मुख्य ध्येय पश्चिमाम्नाय नायिका ललिता महात्रिपुर सुन्दरी की कृपा प्राप्त करना होता है। शैव-मत में जो स्थान सदाशिव को प्राप्त है, वही स्थान शाक्तों के बीच भगवती महा त्रिपुर सुन्दरी का है। अर्थात् जिस तरह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के नायक सदाशिव हैं, वैसे ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की नायिका ललिताम्बिका महात्रिपुर सुन्दरी है। इनकी ही त्रिगुणात्मिका शक्ति है- महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती । तन्त्रों में इन्हीं को क्रमशः कादि विद्या, हादि विद्या एवं सादि विद्या के नाम से जाना जाता है। इनके मन्त्र समूह को कादि कूट, हादि कूट एवं सादिकूट कहा जाता है। इन्हीं कादि, हादि एवं सादि विद्याओं के आधार पर क्रम-दीक्षा आधारित है-यथा-कादि-क्रम दीक्षा, हादि-क्रम-दीक्षा तथा सादि-क्रम-दीक्षा । इसके अतिरिक्त विद्या-क्रम-दीक्षा , महाक्रम-दीक्षा एवं पूर्ण-क्रम-दीक्षा शाक्तों में प्रचलित है।

कादि-क्रम-दीक्षा-इस क्रम में दीक्षित शिष्य को सर्वप्रथम भरत उपासिता गुह्य काली या रामोपासिता गुह्य काली की साधना-दीक्षा दी जाती है। इस साधना में निष्णात् पात्र को भुवना-साधना की दीक्षा दी जाती है। इसी तरह सिद्धि-लाभ प्राप्त करने वाले शिष्य को क्रमशः कुब्जिका, वज्र-कुब्जिका, अघोर कुब्जिका की दीक्षा देने के पश्चात् विभेद-क्रम से चार शाम्भव-विद्या की दीक्षा दी जाती है। तत्पश्चात् गुरु शिष्य का लघु पूर्णाभिषेक करता है। पुनः, दशवक्त्रा काली के षोड्श वर्ण-युक्त मन्त्र की साधना-दीक्षा प्रदान करता है और उसके बाद चौवन वर्ण-युक्त-मन्त्र की दीक्षा प्रदान करता है। इस क्रम में गुह्य काली मुख्यरूप से सर्वाधिष्ठात्री देवी होती है।

साधनात्मक दृष्टि से निम्नलिखित स्वरूपों में इनकी अराधना की जाती है-

1. काम-कला काली, 2. गुह्य काली, 3. छिन्नमस्ता, 4. तारा, 5. वज्र कपालिनी तथा 6. सिद्धि लक्ष्मी । इसमें प्रत्येक अनमोल सिद्धियाँ प्रदान करने वाली है।

हादि-क्रम-दीक्षा-यह क्रम सर्वार्थ सिद्धिदायक है। इस क्रम की साधना से व्यक्ति भोग और योग दोनों प्राप्त करता है। इस क्रम में सर्वप्रथम गुरु द्वारा दक्षिणा काली की दीक्षा प्रदान की जाती है। तत्पश्चात् क्रमशः महोग्रतारा बाला त्रिपुर सुन्दरी, पंचदशी त्रिपुर सुन्दरी, षोडशी की दीक्षा देकर साधना सम्पन्न करायी जाती है। इसके बाद छः आम्नाय-गत शाम्भव-विद्याओं की साधना-दीक्षा दी जाती है। पुनः, भैरवी कुल की दीक्षा देकर इनकी साधनायें सम्पन्न करायी जाती हैं ।

पंच हादि-क्रम-दीक्षा-इस क्षेत्र में सम्प्रदाय और परम्परा भेद से हादि-क्रम एवं हादि-नव-क्रम की दीक्षायें दी जाती है।

हादि-पंच-क्रम-दीक्षा-इस दीक्षा-क्रम में गुरु द्वारा क्रमशः दक्षिणा काली, तारा, छिन्ना, बगला, महात्रिपुर-सुन्दरी की साधनाएँ सम्पन्न करायी जाती हैं। तत्पश्चात् परमेश्वर शाम्भव-साधना सम्पन्न करायी जाती है।

हादि-नव-क्रम-दीक्षा-इस दीक्षा में गुरु द्वारा क्रमशः आद्या काली, श्यामा (मातंगी), दक्षिणा काली, एक जटा, तारा, नील सरस्वती, महोग्रतारिणी, बाला, पंचदशी षोडशी, तथा षडन्वय शाम्भव विद्या की दीक्षा दी जाती है। तत्पश्चात् पूर्णाभिषेक किया जाता है।

कादि-नव-क्रम-दीक्षा-इस क्रमानुसार गुरु द्वारा सर्वप्रथम सिद्धि लक्ष्मी की साधना-दीक्षा दी जाती है। इस साधना-सिद्धि में निष्णात् होने के पश्चात् सिद्धकराली, काम-कला काली, उन्मनी, अन्नपूर्णा, भुवनेश्वरी, कुब्जिका, वज्रकुब्जिका, अघोर कुब्जिका, तथा शाम्भव विद्या की साधना सम्पन्न करायी जाती है। इसके पश्चात् लघु

पूर्णाभिषेक किया जाता है ।

सादि-क्रम-दीक्षा-इस क्रम में गुरु द्वारा सर्वप्रथम पद्मावती की दीक्षा दी जाती है। पद्मावती-साधना में सिद्ध-हस्त होने के पश्चात् गुरु द्वारा क्रमशः वज्रपूर्णा, योगिनी, विजयेश्वरी, एकजटा, नील सरस्वती, सरस्वती, उग्रतारा, महोग्रतारा, महार्या तारिणी, तथा मूलात्म-शाम्भव-विद्या की साधना-सिद्धि-सम्पन्न करायी जाती है। यह मुक्ति दायिनी विद्या है।

महाक्रम-दीक्षा-इस दीक्षा-क्रम में गुरु द्वारा सर्वप्रथम आद्या की साधना सम्पन्न करायी जाती है। तत्पश्चात् क्रमशः श्यामा(मातंगी), दक्षिणा काली, एकजटा, नील सरस्वती, महोग्रा, शारदा, श्री बाला त्रिपुर सुन्दरी, पंचदशी त्रिपुर सुन्दरी, सिद्धि लक्ष्मी, सिद्धि-कराली, काम-कला काली, उन्मनी, अन्नपूर्णा, भुवनेश्वरी, कुब्जिका, वीर कुब्जिका, वज्र-कुब्जिका, .परमेश्वरी, पंचदशी, षोडशी, श्रीमद् महाषोडशाक्षरी विद्या की साधना सम्पन्न करायी जाती है। तत्पश्चात् षडन्वय शाम्भव-विद्या की साधना सम्पन्न करायी जाती है। इस विद्या में पूर्ण सिद्ध-हस्तता प्राप्त करने के पश्चात् महापूर्णाभिषेक की क्रिया सम्पन्न करायी जाती है। इसके बाद गुरु द्वारा पाशुपतास्त्र-विद्या की दीक्षा दी जाती है।

पूर्ण-क्रम-दीक्षा-पूर्ण-क्रम पूर्ण ब्रह्म-स्वरूपात्मक है। इस क्रम में गुरु द्वारा सर्वप्रथम आद्या की साधना सम्पन्न करायी जाती है। इस विद्या में सफलता प्राप्त कर लेने के पश्चात् क्रमशः श्यामा(मातंगी), दक्षिणा काली, एकजटा, नील सरस्वती, महोग्रा तारिणी, शारदा, बाला त्रिपुरा, बाला त्रिपुर-सिद्धि लक्ष्मी, बालासुन्दरी, कराली, सिद्धि कालिका, सिद्धि कपालिनी, गुह्यकाली, काम-कला काली, उन्मनी, अन्नपूर्णा, भुवना, भुवनेश्वरी, श्रीमद् भुवनपूर्णा, त्रिपुर सुन्दरी, महाकाली, महालक्ष्मी, महा सरस्वती, चामुण्डा, कुब्जिका, अघोर कुब्जिका, वीर कुब्जिका, वज्र कुब्जिका, पंचदशी, षोडशी, गायत्री, महाषोडशी, पूर्ण शाम्भव-विद्या, चतुष्पदा गायत्री, पाशुपतास्त्र-विद्या आदि की साधना

सम्पन्न कराने के बाद महापूर्णाभिषेक की क्रिया सम्पन्न करायी जाती है ।

लघु-क्रम-दीक्षा-आदि शंकराचार्य का कथन है कि पूर्ण -क्रम या महा-क्रम की दीक्षा कलियुग में यदि सम्भव न हो तो दक्ष गुरु की सेवा-रत हो लघु-क्रम-दीक्षा का आश्रय लेकर ही शिष्य को अपनी साधना-सम्पन्न करनी चाहिये।

यथा-

यदि दैवशात् पूर्णक्रम कश्चिन्न लभ्यते।
तदा महाक्रम कुर्याद् परव्रह्म पदाप्तये ।।
कलौ देववशाद्देवि, सुगुरुश्चन लभ्यते ।
तदा सूक्ष्म प्रकाराख्यं लघुक्रममथाचरेत् ।।

(यति दण्डैश्वर्य विधान पद्धति)

इस क्रम में गुरु द्वारा सर्वप्रथम गुह्य काली की साधना-दीक्षा शिष्य को प्रदानकी जाती है। इस साधना में पूर्णता प्राप्ति के बाद क्रमशः भुवना, कुब्जिका, दक्षिणा काली, तारा, श्री विद्या, परमेश्वरी, चामुण्डा के नवार्ण मन्त्र की दीक्षा दी जाती है। कौलाचरण-रत हो इन मन्त्रों को सिद्ध किया जाता है। पुनः, गुरु शाम्भव-विद्या की दीक्षा प्रदान कर शिष्य को परब्रह्म-पद का साक्षात्कार कराता है और सिद्धि-लाभ दिलाता है।

विद्या-क्रम-दीक्षा- यह क्रम में शरीरस्थ चक्रों में स्थित परा-विद्या के विविध स्वरूपों की साधना है। इस क्रम में गुरु द्वारा शरीरस्थ चक्रों का तथा उसमें स्थित दिव्य परा-शक्तियों का ज्ञान कराया जाता है। तत्पश्चात् तत्-तत् चक्र में ध्यान लगाकर उसकी नायिकाओं के मन्त्रों का जप किया जाता है। इसका निम्नलिखित क्रम ह ै:- यथा पूर्व आम्नाय में उन्मनी, पूर्णेशी, भुवनेश्वरी, शाम्भव-विद्या का ध्यान किया जाता है।

आद्या, श्यामा और दक्षिणा काली का ध्यान दक्षिण आम्नाय में किया जाता है। यह आम्नाय मणिपूरक चक्र में स्थित है।

इस चक्र में इसकी शाम्भव-विद्या का भी जपानुष्ठान सम्पन्न किया जाता है। पश्चिमाम्नाय में कुब्जिका, वज्र कुब्जिका, अघोर कुब्जिका तथा इसकी शाम्भव-विद्या का ध्यान-मन्त्र-जप किया जाता है। उप मार्ग में आद्या-काली, लक्ष्मी, सरस्वती तथा चामुण्डा का ध्यान-जप किया जाता है। साथ ही, इसकी शाम्भव-विद्या का भी ध्यान-जपानुष्ठान किया जाता है। यह अनाहत-चक्र में स्थित हृदय-स्थल का भाग है।

उत्तर आम्नाय (विशुद्ध-चक्र)-में सिद्ध लक्ष्मी, सिद्धि करालिका, काम-कला काली, गुहय काली, हंस-शाम्भव-विद्या का जप-ध्यान किया जाता है। इसका स्थल कण्ठ है।

ऊर्ध्व आम्नाय (आज्ञाचक्र, भू-मध्य में स्थित)इसमें-बाला पंचदशी, षोडशी, तथा पर शाम्भव-विद्या का ध्यान-जपानुष्ठान सम्पन्न किया जाता है।

श्री विद्या क्रम-यह क्रम भी पूर्ण क्रम के सदृश ही है। वर्त्तमान में इसके तीन क्रम-भेद प्रचलित है-यथा- (1)हयग्रीव-क्रम (2) आनन्द भैरव-क्रम, और (3) दक्षिणामूर्ति-क्रम ।

1. हयग्रीव या लोपामुद्रा क्रम-इस क्रम की साधना शुष्क भाव में सम्पन्न की जाती है। इस क्रम में गुरु द्वारा क्रमशः (1) त्रिपुरा, (2) त्रिपुरेशी (3) त्रिपुर सुन्दरी (4) त्रिपुर वासिनी (5) त्रिपुरा श्री (6) त्रिपुर मालिनी (7) त्रिपुर सिद्धा (8) त्रिपुराम्बा (9) श्री विद्या पंचदशाक्षरी और (10) श्री विद्या षोडशाक्षरी की साधना सम्पन्न करायी जाती है। साथ ही इनकी शाम्भव-विद्याओं की भी साधनाएँ सम्पन्न करायी जाती हैं।

आनन्द भैरव-क्रम-इस क्रम में गुरु द्वारा क्रमशः (1) त्रिपुरा (2) त्रिपुरेशी (3) त्रिपुर सुन्दरी (4) त्रिपुर वासिनी (5) त्रिपुरा श्री (6) त्रिपुरमालिनी (7) त्रिपुर सिद्धा (8) त्रिपुराम्बा (9) त्रिपुर भैरवी (10) श्री विद्या पंचदशाक्षरी (11) श्री विद्या-षोडशाक्षरी की साधनायें सम्पन्न करायी जाती हैं। साथ ही इनकी शाम्भव-विद्याओं की भी साधनाएँ सम्पन्न करायी जाती हैं ।

दक्षिणामूर्ति-क्रम-इस क्रम में गुरु द्वारा क्रमश: (1) त्रिपुरा (2) त्रिपुरेशी (3) त्रिपुर सुन्दरी (4) त्रिपुर वासिनी (5) त्रिपुरा श्री (6) त्रिपुर मालिनी (7) त्रिपुर सिद्धा (8) त्रिपुराम्बा (9) त्रिपुर भैरवी (10) श्री विद्या पंचदशाक्षरी (11) श्री विद्या-सप्तदशाक्षरी (12) लघु पाशुपत (13) मध्यम पाशुपत (14) महापाशुपत (15) श्री विद्या षोडशाक्षरी (16) षडन्वय शाम्भव-विद्या (17) पूर्णाभिषेक (18) सर्वाधिकार दीक्षा (19) श्री विद्या सप्तदशी की साधनायें सम्पन्न करायी जाती हैं।

उपर्युक्त किसी भी क्रम में दीक्षा प्राप्त शिष्य सद्‌गुरु की कृपा से शिव और शिवा की अहैतुकी कृपा प्राप्त करने में सक्षम-समर्थ हो जाता है। ऐसे साधकों की मुट्ठियों में कैद होती है समस्त सिद्धियाँ। ऐसा ही साधक स्वयं तो मुक्त होता ही है-भोग और मोक्ष का दाता भी होता है।

''मन से हारे हार है, मन के जीते जीत''

मन के वर्चस्व की चर्चा आदि काल से अब तक होती आ रही है सभी आध्यात्मिक ग्रन्थों में इसकी गति, प्रभाव एवं शक्ति का विशद् वर्णन मिलता है। कई आध्यात्म-वेत्ताओं ने परमात्मा एवं आत्मा की ही भाँति मन की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार किया है। चार्वाकों ने तो मन को ही जीवन एवं जीवन की विभूतियों का पूर्ण कारक माना है। चाहे द्वैत-मतावलम्बी या अद्वैत-शाखाश्रयी हों, सबने मन पर नियन्त्रण पर बल दिया है। भक्ति-मार्ग ही नहीं उत्कृष्ट सामाजिक, राजनैतिक या सांस्कृतिक जीवन के लिए भी मन पर नियन्त्रण की बात आवश्यक मानी गई है।

मन सचमुच अद्‌भुत् चमत्कारी एवं प्रबल प्रभावकारी है। मन ही हमारे जीवन का अलौकिक पुरोधा है, जिसके सहारे हम अपने जीवन को सजाते-सँवारते है। लक्ष्यालक्ष्य का निर्धारण करते हैं। साथ ही निर्दिष्ट दिशा में गतिशील होते हैं ।

साहस और सम्बल का संचार मन के द्वारा ही होता है। संघर्ष की क्षमता मन से ही प्राप्त होती है। मन के द्वारा ही सुख-दुःख, भय-शोक, घृणा-द्वेष, हर्ष-विषाद आदि का अनुभव होता है। सच तो यह है कि मन उत्प्रेरक का कार्य करता है तो कारक का भी कार्य सम्पादित करता है, मन भोग्य का निर्धारण करता है, तो भोक्ता का आनन्द भी लेता है।

अब प्रश्न उठता है कि आत्मा या परमात्मा की तरह क्या मन की कोई स्वतंत्र सत्ता है? इस प्रश्न का सटीक उत्तर अभी तक नहीं मिल पाया है। इसलिए यह एक अत्यन्त विचारणीय प्रश्न है। यद्यपि मन पर अनेकानेक आध्यात्मिक, धार्मिक शास्त्रों में पुरजोर चर्चा हुई है। आज भी, प्रति-दिन पूरे विश्व में इस गूढ़ विषय पर आध्यात्म-विदों, चिन्तकों, दर्शनिकों तथा साधु-सन्तों, के द्वारा बोला

जा रहा है। मन को व्याख्यायित किया जा रहा है। इसके प्रभाव तथा प्रभाव-नियन्त्रण पर चर्चाएँ हो रही हैं । फिर भी, मन है कि व्याख्यायित न हो पा रहा है। पकड़ में नहीं आ पाता है। और बनाये रखता है अपनी गूढ़ता, अपनी गोपनीयता। नचाता रहता है जीवों को अँगुलियों पर । विशेषतः सृष्टि की चेतना का श्रृंगार समझा जाने वाला मानव पर ही इसका विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है । मन के चमत्कारी प्रभावों के कारण ही जगत् में यत्र-तत्र श्लाध्य या घृण्य कार्य सम्पादित होते रहते हैं । प्रबल महत्वाकाक्षाएँ, जिसके चलते कभी-कभी विश्व में अकल्पनीय घटनाएँ घटित हो जाती हैं, उसकी जड़ में भी मन का ही प्रभाव होता है। इस तरह मन एक स्वतंत्र मदारी की भाँति ही मानव को स्व-अनुकूल क्रिया-कलाप करने के लिए विवश एवं बाध्य कर देता है। अब प्रश्न है मन की स्वतंत्र सत्ता का । इस प्रश्न के उत्तर को ढूँढ़ने के लिए हमें सर्वप्रथम इस बात का पता लगाना होगा कि शरीर विज्ञान के अनुसार क्या मन कोई ग्रन्थि-विशेष है ? जैसा कि दिल, यकृत, अमाशय या पक्वाशय आदि ? इसका स्पष्ट तौर पर उत्तर है - ''नहीं'' । मन का शरीर में कोई भौतिक ठोस आधार नहीं है। अस्तित्व नहीं है। जिसको किसी चिकित्सा-विधि द्वारा काट-छाँट कर नियन्त्रित किया जा सके । जिसकी गति को क्षीण किया जा सके। जिसके प्रभाव को शमित या नष्ट किया जा सके । तब यह है क्या ?

इसको जानने के लिए हमें सिद्धों, योगियों, सुफियों, तथा सन्तो की ओर मुड़ना पड़ेगा । उनकी अनुभूतियों को जानना होगा । जिनका ज्ञान शारीरिकी तथा आध्यात्मिक दोनों दृष्टिकोण से परिपक्व है, परिपुष्ट है, जिन्होंने अपनी आध्यात्मिक यात्रा के क्रम में मन की सूक्ष्म से सूक्ष्मतर गति को मापने की चेष्टा की है। मन की गुत्थियों को सुलझा कर परमात्मिक पराकाष्ठा को लाँघा है। पंच-भौतिक तत्वों के आकर्षण-विकर्षण की पहचान की है। मनको नियन्त्रित ही नहीं किया है, उसे शमित भी किया है, नष्ट किया

है। साथ ही, मन-द्वारा उपस्थित की गई बाधाओं के जाल को छिन्न-भिन्न कर अपना लक्ष्यात्मक मार्ग उन्मेषित किया है, प्रशस्त किया है।

सुधी जनों की दृष्टि में मन की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है। मन तो आकाश-लता-सरीखा पर-जीवी है, जो दूसरे कारकों को आधार बनाकर उत्पन्न होता है, प्रेरण की क्रिया करता है और सुख-दुःख, घृणा-द्वेष, भय-शोक, आशा-जिज्ञाशा, हर्ष-विषाद की अनुभूतियों का भण्डार-सा बना डालता है। और मन हृदय को उद्वेलित कर देता है। जिसके चलते मानव-जीवन की शान्ति लुट जाती है। मानव विवश और मजबूर हो जाता है।

मौलिक रूप से मन के दो ऊर्जा-श्रोत है-

(1) पंच-ज्ञानेन्द्रियाँ और (2) आत्मा ।

(2) पंच-ज्ञानेन्द्रियाँ - हमारे शरीर की संरचना में पंच महा भौतिक तत्वों का योगदान है। ये पंच महाभौतिक तत्व है -"क्षिति-जल-पावक-गगन-समीरा"। ये पंच महाभौतिक तत्व स्थूल या सूक्ष्म रूप से मानव शरीर में विद्यमान रहते हैं । स्थूल रूप में इन का स्वरूप होता है- माँस, अस्थि, मज्जा, रक्त-वीर्यादि। वहीं सूक्ष्म रूप में रूप-रस-गन्धादि के रूप में ये शरीर में या जगत् के जीव-जंगम में अवस्थित होते हैं। या कहा जाय कि मानव-मस्तिष्क में कई ऐसी ग्रन्थियाँ होती है, जिनका सम्बन्ध हमारी पंच-ज्ञानेन्द्रियों से होता है। ये ग्रन्थियाँ पंच महाभौतिक तत्वों से समबद्ध पंच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा संकलित सम्वेदन-शीलता को ग्रहण करती हैं । इन ग्रन्थियों की ग्रहण-शीलता भी बड़ी तीव्र होती है। ये ग्रन्थियाँ पंच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा जन्म से लेकर वर्त्तमान तक की संकलित सम्वेदन-शीलता को अक्षुण तो रखती ही हैं, साथ ही उसकी तुलनात्मक श्रृँखला तैयार करके भविष्य की योजना को भी निर्धारित करती हैं। ये कपाल-खात में प्रमस्तिष्क के अग्रभाग में स्थित होती है योग की खोज के अनुसार आज्ञा-चक्र के ऊपर मनःचक्र होता है। मनःचक्र के आठ दल होते

हैं। ये दल सुषुम्नादि नाड़ियों से निकलने वाली नाड़ियों से निर्मित होते हैं। इन्हें -मनुवहा, शब्दवहा आदि के नाम से जाना जाता है। ये नाड़ियाँ दृश्य जगत् , ध्वनि-जगत्, स्वाद-जगत्, गन्ध-जगत् आदि सूक्ष्मातिसूक्ष्म चेतना को ग्रहण करती हैं तथा चित्त-कोष तक पहुँचाती हैं- चित्त- कोष द्वारा पुनः अन्तःप्रेरण की क्रिया के परिणामतः उपरोक्त नाड़ियों से सम्बन्धित इन्द्रियों में संवदेन-शीलता उत्पन्न हो जाती है। चित्त-कोष की संख्या सात है। यही ग्रन्थियाँ हमारी ज्ञानेन्द्रियों, जैसे-आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा को सम्वेदन-शील बनाती हैं। इनकी उत्तेजना को ग्रहण कर प्रत्युत्तेजित करती हैं। इनकी उत्तेजन-शीलता या संवदेन-शीलता विचारों के रूप में उत्पन्न होती हैं । साथ ही ज्ञानेन्द्रियों द्वारा उत्पन्न संवदेन-शीलता, विचारों की श्रृँखला का निर्माण करती है। और "यही विचार-श्रृँखला मन कहलाती है।" साधारणतया मन के निर्माण में इन ज्ञानेन्द्रियाँ का अद्वितीय योगदान होता है। इन ज्ञानेन्द्रियों में आँखें अत्यन्त बलशाली उत्प्रेरक है। अर्थात् शेष चार ज्ञानेन्द्रियों की संवदेन-शीलता को बढ़ाने में आँख का प्रभावकारी योगदान होता है। उदाहरणार्थ, आँख सर्वप्रथम किसी गुलाब के फूल को देखती है। त्वचा और नासिका की सम्वेदन-शीलता को उत्तेजित करती है।। त्वचा का स्पर्श-बोध सजग-सक्रिय हो जाता है। अँगुलियों में रक्त का संचार बढ़ जाता है। अँगुलियाँ फूल के स्पर्श के लिए लपक पड़ती हैं । तोड़ लेती हैं फूल को । स्पर्श की सम्वेदन-शीलता इतना उग्र हो जाती है कि अँगुलियाँ उसे मसलने लगती है । सच तो यह है कि त्वचा की संवेदन-शीलता इतना उग्र, इतना तीव्र हो जाती है कि वह पूर्णरूपेण फूल की स्निग्ध ता को आत्म-सात् कर लेना चाहती है। इसी बीच नासिका की घ्राण-शक्ति (संवेदन-शीलता) भी उग्र हो जाती है और यही कारण होता है कि हाथ की अँगुलियाँ स्वैच्छिक माँस-पेशियों की भाँति कार्य करने लगती हैं। जहाँ एक ओर फूल की स्निग्धता को चरम-विन्दु तक अनुभूतियों में जकड़ लेना चाहती हैं, वहीं दूसरी

ओर घ्राणात्मक संवदेन-शीलता की संतृप्ति के लिए बार-बार नासिका की संवदेन-शीलता सजग हो जाती है। और ये तीनों ज्ञानेन्द्रियाँ अलग-अलग अपनी-अपनी सम्वेदन-शीलता को आन्दोलित करती हैं। और स्व-जनित संवेदन-शीलता का तुलनात्मक जाल बुनना भी प्रारम्भ कर देती है। आँखें फूल के सौंदर्य की तुलना पूर्व में देखे गये फूलों के सौंदर्य से करने में व्यस्त हो जाती हैं। और भविष्य में उससे भी अधिक सौंदर्य-पूरित-पुष्प के दर्शन की आकाँक्षाएँ सँजोने लगती है। त्वचा फूल की स्निग्धता का जो स्पर्श-सुख पाती है, उसकी तुलना पूर्व काल में अन्य पुष्पों के स्पर्श से प्रारम्भ कर देती है। साथ ही उससे भी अधिक स्निग्ध, अधिक कोमल पुष्प के स्पर्शन की आकाँक्षा पालने लगती है। इसी तरह नासिका पुष्प-गन्ध को ग्रहण करती है। उसकी तुलना पूर्व में ग्रहण की गई गन्धों से करती है और भविष्य में उससे बेहतर गन्धोपलब्धि की योजना बनाने में लीन हो जाती है। अर्थात् अलग-अलग ही सही तीनों ज्ञानेन्द्रियाँ वर्त्तमान से अतीत और वर्त्तमान से भविष्य की कल्पना-परिकल्पनाओं में लीन हो जाती हैं। और यही कल्पना-शीलता मन की उत्पादिका बन जाती है, या मन कहलाती है।

ठीक इसी तरह आँखें भोज्य-पदार्थों को देखती हैं। उसकी विविधता पर (रूप-जनित) संवेदन-शीलता सजग हो उठती है। साथ ही पूर्व के भोज्य-पदार्थों के रूपों से उसकी तुलना करने लगती है। आँखों की संवेदन-शीलता स्वादेन्द्रिय (जिह्वा) और स्पर्शेन्द्रिय (त्वचा) को प्रेरित करती है, उनकी संवदेन-शीलता को सजग कर देती है। फिर क्या ? देखते ही देखते स्पर्शेन्द्रिय त्वचा की संवेदन-शीलता के कारण अँगुलियाँ हरकत में आ जाती है और स्वादेन्द्रिय (जिह्वा) की संवदेन-शीलता के वशीभूता होकर भोज्य पदार्थों को जिह्वा के पास मुँह तक पहुँचा देती हैं। इस तरह आँख, त्वचा तथा जिह्वा की संवेदन-शीलता विचारों की श्रृँखला तैयार करने लगती है और मन उत्पन्न हो जाता है। यहाँ उल्लेख्य है कि जिह्वा

जहाँ स्वाद की सम्वेदन-शीलता को उत्पन्न करती है, वहीं वह वाक् की सम्वेदन-शीलता को संकलित एवं प्रस्फुटित करती है, उजागर करती है। अर्थात् वर्त्तमान में भोक्ता मानव जिन भोज्य पदार्थों के स्वाद को चखता है, उसकी तुलना पूर्व में चखे स्वादों से करता है और भविष्य में उससे अधिक स्वादिष्ट भोज्य-पदार्थ की कल्पना में लीन हो जाता है। स्वाद की यही विचार-श्रृँखला, जो वर्त्तमान से भूत और भविष्य में दौड़ती रहती है, मन कहलाती है।

इसी तरह श्रवण-शक्ति की सम्वेदन-शीलता कान से उत्पन्न होती है। कान वर्त्तमान में किसी धुन, लय, ताल, शब्द,वाक्य या गीत-संगीत को सुनता है, उसकी तुलना अतीत में सुने गये ताल,धुन या शब्द आदि से करना प्रारम्भ कर देता है और भविष्य में उससे मधुर उससे प्रिय, उससे हितकर स्वर-श्रवण की कल्पना में लीन हो जाता है और कान की यही विचार-श्रृँखला-मन कहलाती है।

अत:,यह स्पष्ट है कि ''मन पंच ज्ञानेन्द्रिय- जनित विचारों की श्रृँखला मात्र है ।'' उसकी उत्पत्ति जब ज्ञानेन्द्रियों से होती है, तब वह पूर्णतया भौतिक होता है, जागतिक और प्राकृतिक होता है, आत्मिक या परमात्मिक नहीं । क्योंकि, सत्य-सिद्ध है कि ये पंच ज्ञानेन्द्रियाँ पंच महाभौतिक तत्वों के स्थूल या सूक्ष्म गुणों को ही ग्रहण करने की क्षमता रखती हैं। अर्थात् इन ज्ञानेन्द्रियों के उत्प्रेरणा के कारक हैं-जागतिक वस्तुएँ, जगत् के अनन्त दृश्य-परिदृश्य, अनन्त-वस्तुएँ, तथा तत् जनित गुण-बोध ही इनके आकर्षण के केन्द्र- बिन्दु होते हैं । भौतिक सुख-संसाधन के प्रति इन का स्वभाविक लगाव होता है, मोह होता है। और इसीलिये मन गतिमान होता है, बेलगाम होता है। सुस्ताने का नाम नहीं लेता, मधुकर-प्रवृत्ति का होता है। क्योंकि, जगत् में असंख्य दृश्य-परिदृश्य हैं, वस्तुएँ हैं, जो उसकी उत्पत्ति के कारक हैं-उसे चैन की साँस नहीं लेने देतीं। जाग्रत अवस्था में ये ज्ञानेन्द्रियाँ अशान्त किये रहती है तो सुषुप्तावस्था में तत्-सम्बन्धित ग्रन्थियाँ विश्रमित नहीं होने देतीं । और विचार

श्रृँखलाओं का निर्माण निरन्तर होता रहता है।

आत्मा-मन का दूसरा ऊर्जा स्रोत है आत्मा । किन्तु, यह गौण कारक है। अर्थात् कहने का तात्पर्य यह है कि आत्मा विचार- श्रृँखला का निर्माण करती है । लेकिन, उसमें प्रत्यक्ष या ऐन्द्रिक सुखों का अभाव-सा होता है। जगत् के नश्वर सुखों की ओर आत्मा प्रेरित नहीं करती या यों कहा जाय कि आत्मिक विचार-श्रृँखला शून्यता ध्यान-धारणा-समाधि की ओर ले जाती है, परमानन्द की ओर ले जाती है,जिससे कायिक भोगों की उपलब्धि नहीं होती है, मन की तुलनात्मक क्षमता, सुखोपभोग की क्षमता, पंच-भौतिक-तत्वों की गुणवता क्षीण हो जाती है, नष्ट हो जाती है। परन्तु, आत्मिक संवेदन-शीलता उद्‌भूत करना सबके वश की बात नहीं । माया में रहकर जगद् के आकर्षण -पाश में न आवद्ध होने की कल्पना करना-जल में रहकर मगर से बैर मोल लेने जैसी बात होगी। फिर भी, मंगलकारी लक्ष्य-प्राप्ति के लिए, आत्मिक-ऊर्जा की जागृति के लिए तथा आध्यात्मिक-विकास की सीढ़ियों को लाँघने के लिए मन को नियन्त्रण में रखना परमावश्यक है।

अब प्रश्न उठता है कि मन को कैसे नियन्त्रित किया जा सकता है? इस प्रश्न का उत्तर सद्‌गुरुओं के पास सहज ही प्राप्त हो जाता है। इसके लिए उनका सधुक्कड़ी अन्वेषण अत्यन्त ही सफल, सहज एवं शीघ्र प्रभावकारी है। गुरुजनों के अन्वेषण के अनुसार शरीर-स्थित पंच ज्ञानेन्द्रियों की संवेदन-शीलता को नष्ट करके ही मन पर नियन्त्रण पाया जा सकता है। एतदर्थ, सिद्धों ने, सन्तों ने गाँव-गिराँव की भाषा में कतिपय सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। जैसे (1) खाओ पर चखो मत -'स्वादेन्द्रिय जिह्वा के लिए', (2) बोलो पर बको मत-(वागेन्द्रिय जिह्वा के लिए), (3) देखों पर ताको मत (आँख के लिए), (4) सुनो पर तुलो मत (कान के लिए),(5) गन्ध लो राह चलो -(नासिका के लिए) और (6) स्पर्श से बचो (त्वचा के लिए) ।

अर्थात् क्षुधा-पूर्ति के लिए, जीवन-रक्षा के लिए, बल-वीर्य की वृद्धि के लिए भोज्य-पदार्थों को ग्रहण करना चाहिए। किन्तु, उसमें विशेष रुचि लेना ठीक नहीं । यहाँ 'खाओ' का तात्पर्य है-उदर-पूर्ति और "चखो" का मतलब है-स्वाद में रुचि लेना। क्योंकि, स्वाद में रुचि लेना ही स्वाद के वशीभूत होना है। स्वादेन्द्रिय की संवेदन-शीलता बढ़ाना है। स्वाद की तुलनात्मक विचार-श्रृंखला का निर्माण करना है। इस तरह वर्त्तमान से भूत की तुलना करने और भविष्य की कल्पना करने में खो जाता है मानव। और देखते-देखते मन सक्रिय हो जाता है। स्वाद में रुचि न लेना ही मन को मारना है। "देखो पर ताको मत" का लक्ष्यार्थ है- आँख का मूलभूत कार्य है देखना, सामने में जो भी दृश्य जागृत होगा उसे आँख देखेगी ही । आँख है तो देखना तो मनुष्य की मजबूरी है, किन्तु, मुड़-मुड़ कर देखना घातक है। मोहोत्पादक है। लालच बढ़ाने वाला है। अकरणीय कार्य को भी करा देने वाला है। "ताको मत" का अर्थ ही है मुड़-मुड़ कर मत देखो। मुड़-मुड़ कर देखने से मन बेलगाम हो जायेगा। और मुड़-मुड़ कर वस्तु- विशेष को न देखने से स्वत: आँख की सम्वेदन-शीलता विनष्ट हो जायेगी। मन नियन्त्रण में रहेगा।

इसी तरह "सुनो पर तुलो मत" का लक्ष्यार्थ भी स्पष्ट है। मधुर स्वर-लहरी को सुनकर कान की सम्वेदन-शीलता सजग हो जाती है। तुलनात्मक विचारों की श्रृंखला बनने लगती है । मन पूरे जोश-खरोस के साथ ताल ठोकने लगता है। मन को नियन्त्रण में रखना है तो तुलना से परहेज आवश्यक है।

हवा बहती है। जगत् में बिखरे गन्धिल पदार्थ से टकराती है। और गन्धों को लेकर उड़ चलती है, फिर गन्ध नासिका को रुचिकर लगती है,वह बार-बार गन्ध को श्वाँस के साथ कैद कर लेना चाहती है। यहाँ तक तो ठीक है। किन्तु, कभी-कभी गन्ध नासिका की संवेदन-शीलता को इतना तीव्र कर देती है, बढ़ा देती है कि मानव का सम्पूर्ण शरीर नासिका के वशीभूत हो जाता है। और घ्राण-शक्ति के इशारे पर चलने को बाध्य हो जाता है। फिर सुगन्ध

के कारक को येन-केन प्रकारेण कैद में रखने की कामना करने लगता है। विचार-श्रृँखला-बनने लगती है-तीव्रता के साथ और मन निरंकुश हो जाता है। अत:, गन्ध क तुलना और गन्ध के कारक की तलाश से विमुख होना ही मन पर नियन्त्रण पाना है।

"बोलो पर बको मत" का तात्पर्य है औपचारिक स्तर तक वागेन्द्रिय से काम लेना । अर्थात् अनावश्यक बोलने से बचने की कोशिश करना । इससे वागेन्द्रिय की संवदेन-शीलता नष्ट होती है। मन नियन्त्रित होता है। इसीलिए, साधक अधिक से अधिक मौन धारण करने की चेष्टा करता है।

"स्पर्शन से बचो" का तात्पर्य है कि आकर्षक पदार्थों के स्पर्श से मनुष्य को बचना चाहिए। क्योंकि, स्पर्शेन्द्रिय त्वचा अत्यन्त ही क्षमतावान् होती है, साढ़े पाँच फीट लम्बे शरीर के किसी अंग-विशेष के रोमांश के स्पर्श मात्र से सम्पूर्ण शरीर की त्वचा एकबारगी सजग हो जाती है, हरकत में आ जाती है और अनर्थकारी सिद्ध हो जाती है। सच ही त्वचा की सम्वेदन-शीलता तुलनात्मक दृष्टि से अन्य इन्द्रियों से कही ज्यादा है। इसीलिये, मन को मारने के लिए स्पर्शन से बचने का प्रयास सतत् करना चाहिए। अन्ततः, कहा जा सकता है कि "मन मात्र विचारों की श्रृँखला है।" इसकी उत्पत्ति का मूल कारक पंच ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं। चूँकि, ये ज्ञानेन्द्रियाँ पंच महाभूतों से सम्बन्ध रखती हैं। अत:, मन भी भौतिक ही होता है। अर्थात् मन की यात्रा पृथ्वी मण्डल, जल मण्डल, अग्नि-मण्डल, वायु-मण्डल, प्रभा-मण्डल तथा आकाश-मण्डल की वाह्य कलाओं तक ही हो पाती है। और जब तक भौतिक तत्वों के आकर्षण-विकर्षण में विचार-श्रृँखला उलझी रहती है तब तक आत्मिक शक्ति परदे की ओट में होती है। अर्थात् आन्तरिक ऊर्जा-स्रोत पर ध्यान-धारणा नहीं जमती। मन की गति-शीलता अवरूद्ध होने पर ही, विचार श्रृँखला की गति शिथिल होने पर ही आत्मिक या परमात्मिक शक्तियाँ उद्भूत होती हैं। अत:, मन को चिदात्मक वृत्ति की संज्ञा दी गई है। और इनका उपरोक्त ढंग से निरोध करके ही आध्यात्मिक ऊर्जा को ऊर्जस्वित किया जा सकता है। योग का

भक्ति का, मेधा का, ओज का, तेज का मार्ग प्रशस्त हो सकता है। यथा-महर्षि पतंजलिने कहा है कि "चिद्-वृत्तिः निरोधः योगः" ।

जब्र मन शमित होता है तभी आत्मिक रश्मियाँ हृदय में प्रस्फुटित होने लगती हैं-प्रेम, विवेक, सहानुभूति, आदि के रूप में ,ध्यान एकाग्र हो जाता है। धारणा पुष्ट होने लगती है। आने लगती है स्थित प्रज्ञता, अन्त:करण में देवत्व का अवतरण होने लगता है। शान्ति का, संतृप्ति का वितान तनने लगता है। और परमात्मिक कल्याणकारी मार्ग उन्मेषित होने लगता है।

आज विश्व-मानव-समुदाय संक्रान्ति-काल से गुजर रहा है। वह भौतिक रहस्य-सूत्रों की तलाश में संलग्न है। उसकी सभी ज्ञानेन्द्रियाँ व्यस्त हैं। और ज्ञानेन्द्रियों द्वारा उत्पन्न मन क्षणिक तुष्टि की, नश्वर सुख-आनन्द की चाह से आकुल-व्याकुल है। अनन्त इच्छाएँ द्वार पर दस्तक देती हुई खड़ी हैं। उसे साधने में मानव खपता जा रहा है। महत्वाकाक्षाएँ प्रभावकारी और बलवती होती जा रही हैं, मानवों में अधिक से अधिक सुख-संसाधनों के लिए होड़ लगी हुई है। अधिक से अधिक भौतिक विस्तार पर आधिपत्य के लिए होड़ लगी हुई है। आत्मा पर का परदा और अधिक गझिन होता जा रहा है । चारों तरफ घोर विषमता बढ़ती जा रही है। अशान्ति बढ़ती जा रही है। मानव से मानव की दूरी बढ़ती जा रही है। इस संक्रान्ति-काल में आवश्यकता है मन को नियन्त्रण में रखने की। ज्ञानेन्द्रियों की बेड़ियों से मुक्त होकर आत्मा की तलाश में ध्यान देने की, ताकि अशान्ति का, क्रूरता का, अनयता का, स्वार्थता का गहराता तम छिन्न-भिन्न हो सके और उदित हो सके बन्धुता, प्रेम, शान्ति, त्याग, तप की किरणों को फैलाने वाला एक दिनमान, मंगलकारी दृष्टि मिले मानव को । सृष्टि के जड़-चेतन के साथ उसका तदात्म्य भाव स्थापित हो और मानव-कुल शाश्वत-सुख -शान्ति का वितरक बन सके । ऐसा तभी सम्भव है जब मन पर मानव का नियन्त्रण हो जाये। क्योंकि, कहा गया है कि -"मन से हारे हार है, मन के जीते जीत"। अर्थात् मन से पराजित हो जाना ही वास्तविक पराजय है और मन को जीत लेना ही वास्तविक जीत है।

''अहम्'' महामन्त्र : एक विश्लेषण

वर्ण-माला के वर्णों की खोज भारत के प्राचीनतम ऋषियों, आत्म-तत्व-चिन्तकों दर्शकों एवं मनीषियों की अन्यतम देन है। प्रत्येक वर्ण की एकल ध्वनि-तरंग को माप कर उसकी भौतिक एवं आध्यात्मिक उपादेयता को अनुसन्धानित कर उन्होंने अपनी विलक्षण प्रतिभा एवं मेधात्मक शक्ति का परिचय दिया। साथ ही सामान्य जन वर्ण की एकल ध्वनि-तरंग को किस भाँति निकालने एवं पहचानने में सक्षम समर्थ हों, इसके लिए सिद्धान्त भी निरूपित किया। नाभिस्थ नाद-बिन्दु को बैखरी तक के यात्रा-क्रम में स्वर-यन्त्र के पश्चात् कंठ, तालु, दाँत, ओठ, नासिका आदि की सहायता से एकल ध्वनि-तरंग निस्सरित करने की सटिक विधि प्रदान की । वर्ण से शब्द,शब्द से भाषा का यात्रा-क्रम एक अथक परिश्रम, अलौकिक चिन्तन तथा अद्‌भुत मेधा का ही परिणाम है।

एकल-ध्वनि-तरंग की माप करते समय मनीषियों ने जहाँ सामान्य जन के वाच्यार्थ शब्दों, वाक्यों, तथा भाषा का विकास किया, छन्दों, छन्दों का गायन तथा रागों को स्वरूप प्रदान कर लोकरंजनार्थ एवं कल्याणार्थ भी भौतिक अभिज्ञान का मार्ग उन्मेषित किया, वहीं एकल-ध्वनि-तरंग के सतत् अभ्यास-रत रहकर ब्रह्माण्ड में रहस्यात्मक रूप से भ्रमण-शील शक्तियों के स्वरूप को भी अनावृत किया। एकल-ध्वनि में गुम्फित-गोपित भौतिक तत्वों का अनुसन्धान किया। साथ ही, उनके अविनाशी होने का समर्थ प्रमाण भी प्रस्तुत किया। इन एकल-ध्वनि तरंगों के प्रधान तत्व की पहचान कर उन्हें एक वर्ण का स्वरूप प्रदान किया। पुनश्च, किसी एक वर्ण की एकल-ध्वनि-तरंग के साथ अन्य वर्णों की एकल-ध्वनि-तरंग के साथ संयोजित कर एक विशिष्ट तत्वानुसन्धान की ओर अग्रसर इन ऋषिओं, चिन्तकों को वर्णों की समष्टि-गत ध्वनि-तरंग मुख से अनवरत निकालते रहने (जप करते रहने) से पंच महाभौतिक तत्वों,

तन्मात्रात्मक तत्वों के साथ-साथ अन्यतम रहस्यमय एवं गोपनीय बुद्धि आदि पंचीकरण तत्वों तथा आत्म-तत्व का बोध प्राप्त हो सका । दैवी शक्तियों के रूपालंकार का, परिचय प्राप्त हुआ। स्वर या वर्ण की अनश्वरता की भी थाह लगी । ऋषि -परम्परा अपनी खोज पर गद्गद् हो उठी । और घन-घोष किया कि 'नादो ब्रह्मास्ति' फिर, अविनाशी नाद से उत्पन्न बैखरी वर्ण भी अविनाशी प्रमाणित हुए। इसीलिए, वर्ण को "अक्षर" की संज्ञा दी गई । अर्थात् "न क्षरति इति अक्षर:" (जिसका क्षरण न हो, उसे अक्षर कहा जाता है।)" इन अक्षरों के अनुसन्धान में अनेक ऋषियों "चिन्तकों, देशिकों का अपूर्व योगदान रहा है।

अलग-अलग ऋषियों ने अपने अलग-अलग अनुसन्धान के द्वारा अलग-अलग पचास एकल-ध्वनि-तरंगों को ढूँढ़ निकाला और भिन्न-भिन्न एकल ध्वनि-तरंगों के पंच-महाभूतात्मक तत्व, तन्मात्रात्मक तत्व, उनका आकर्षण या विकर्षण क्षेत्र-विस्तार, रैखिक आकार-प्रकार, रूपालंकार, भेद तथा उनकी भौतिक आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक उपादेयता की खोज भी की । इस क्रम में उन्हें पचास मातृकाओं का अभिदर्शन भी प्राप्त हुआ। मानव-शरीर में गोपित भाव से इनके स्थानों का भी ज्ञान उन्हें प्राप्त हो गया। साथ ही, ब्रह्माण्ड में इनकी उपस्थिति का भी आभास हुआ। यही कारण है कि इन चिन्तकों ने अक्षर को एक अपर संज्ञा से भूषित किया। यथा- "मातृकाक्षर" । अर्थात् मातृकाओं का स्वर(वर्ण), अर्थात् ऊर्जा का स्वर, शक्ति का स्वर । इस तरह उद्भव हुआ वर्ण-माला के पचास वर्णों का ।

प्रारंभ में ऋषियों का चिन्तन पूर्ण रूपेण सात्विक था। यही कारण है कि वैदिकों ने पूर्ण सात्विक मातृका-अनुसन्धान-क्रम में प्रणव अर्थात् ॐकार को पूर्ण ब्रह्म-स्वरूप माना और तदनुसार अपनी आत्मिक चिन्तन प्रक्रिया को प्रश्रय दिया। अ, उ, तथा म के साथ अर्द्ध मात्रा तथा बिन्दु की एकल-ध्वनि-तरंगों को

सम्पृक्त कर ॐकार की समष्टि-गत ध्वनि-तरंग का अनुसन्धान, तत् तात्विक चिन्तन से उपलब्ध भौतिक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक-सिद्धियों का मार्ग उन्मेषित किया ।

ॐकार में गुम्फित (सम्मिलित) वर्णों के, अवयवों के विषय में उनका कथन है-

अकारश्चायुतावयवान्वित: ।
उकार: शतावयवान्वित: ।।
मकार: सहस्त्रावयवान्वित: ।
अर्द्धमात्रा प्रणवोऽनन्तावयवान्वित:

ॐकार को सगुण-निर्गुण एवं उभय गुणात्मक ईश्वर की प्राप्ति का साधन माना गया है।

जिस तरह पूर्ण ब्रह्म की सोलह कलायें मानी गई हैं, उसी तरह ॐकार को भी सोलह कला-सम्पन्न माना गया है। यथा-1. अकार, 2. उकार, 3. मकार, 4. अर्द्धमात्रा, 5. नाद, 6. बिन्दु, 7. कला, 8. शक्ति, 9. शाँति, 10. समना, 11. आत्मन, 12. मनोन्मनी, 13. बैखरी, 14. मध्यमा, 15. पश्यन्ती, 16. परा ।

तात्पर्य यह कि शिव-शक्ति-स्वरूप सूर्य अर्थात् तेजस्-शक्ति बिन्दु-रूप में मूलाधार-चक्र में अवस्थित रहती है। ऐन्द्रिक संवेदन-शीलता-जनित-भाव से प्रेरित हो ''सोम-सूर्याग्नि भेद से बिन्दु में स्फुरण होता है और वह परा, पश्यन्ती, मध्यमा के रूप में यात्रा करती हुई बैखरी रूप में (वर्ण रूप में) प्रकट होता है। अत:, शास्त्रों में कहा गया है कि-

''सोम-सूर्योग्नि भेदेन मातृका-वर्ण सम्भवा ।''

यहाँ सूर्य को तेजस्-शक्ति, चन्द्रमा को मन (विचार शक्ति) एवं अग्नि को उद्दीपन या क्रियात्मक शक्ति माना गया है। अर्थात् मस्तिष्क में विचार-शक्ति के स्फुरण मात्र से मूलाधार-स्थित ब्रह्म-स्वरूप तेजस्-शक्ति अग्नि-शक्ति के प्रभाव से स्फुरित होती है और मातृकाक्षरों की उत्पत्ति होती है। व्यावहारिक स्तर पर अगर

चिन्तन किया जाय तो कहा जा सकता है कि ऐन्द्रिक संवेदन-शीलता के कारण मस्तिष्क में जब विचारों का (मन व इच्छा का) उदय होता है तब उसका प्रभाव मूलाधार-स्थित सर्व वर्ण-मय ब्रह्म-तेजसात्मक शक्ति-स्वरूप बिन्दु पर पड़ता है। फिर, मानव सोम-सूर्य अर्थात् इड़ा-पिंगला द्वारा श्वाँसोच्छवास क्रिया के द्वारा चक्रों में दहन-शीलता का संचार करता है, जिससे बिन्दु में सुषुम्ना-प्रभाव से विस्फोट होता है। और उसी विस्फोट के कारण परा-रूप बिन्दु पश्यन्ती एवं मध्यमा का स्वरूप धारण करता हुआ बैखरी रूप में स्फुटित होता है, प्रकट होता है। इस तरह स्वरोदय होता है। वर्णों की उत्पत्ति होती है। इसी बात को "शारदा-तिलक" द्वारा निम्नलिखित रूप में व्याख्यायित किया गया है ।

"सूते तद्वर्णाऽभिन्ना कला रुद्रादिकान् क्रमात् ।।
निरोधिका भवेद्वह्निरर्द्धेन्दु स्यान्निशाकरः ।।
अर्कः स्यादुभयोयोगे ....निधि ।।
ज्ञाता वर्णा यतो बिन्दोः शिव-शक्ति मयादतः ।।
अग्नि षोमात्मकास्ते स्युः शिवःशक्तिमयाद्रवे।
येन सम्भवापन्नाः सोमसूर्याग्निरूपिणः ।।"

इसी बात की पुष्टि करते हुए श्रुति का वचन है-

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विर्दुब्रह्मणा
ये मनीषिणः ।। गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं
वाचो मनुष्याः वदन्ति ।"

अर्थात् चार प्रकार का वाचन-ज्ञान ब्रह्मण-गण जानते हैं। तीन प्रकार की वाचन-कला गुफाओं में है - अर्थात् अत्यन्त गोपनीय है। जैसे-परा, पश्यन्ती तथा मध्यमा। चौथे प्रकार की वाचन-कला का ज्ञान प्रत्येक सामान्य मनुष्य को होता है, जिसे बैखरी कहते हैं।

वर्णात्मक ध्वनि-तरंग-मय ही यह सम्पूर्ण सृष्टि है। अतः, इसे अग्नि-षोमात्मकं जगत् भी कहा गया है।

सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में प्रश्नोपनिषद् में महर्षि पिप्पलि कबन्ध से कहते हैं कि-

तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथिनमुत्पादयेत् ।

रयिं च प्राणः चेत्येतौ मे बहुधाः प्रजा करिष्यत् इति।

आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा.............स एष वैश्वानरो विश्वरूप प्राणोऽग्नि रुदयते ।

अर्थात् प्रजा की कामना से प्रेरित हो प्रजापति ने तपस्या की । तपाग्नि से तप्त हो उन्होंने एक जोड़ा उत्पन्न किया, जिसे प्राण (सूर्य) तथा रयि (चन्द्रमा) की संज्ञा दी गई ।

उपरोक्त कथन के द्वारा शिव-कल्प प्रजापति (ऋषि) ने ईश-तत्व-अन्वेषण-रत तप-याग के द्वारा प्राण-तत्व (सूर्य-प्रकाश) तथा रयि (चन्द्रमा) अर्थात् मनः तत्व की खोज की और अग्नि तत्व (क्रिया-शक्ति -श्वाँसोच्छवास-क्रिया) द्वारा वर्णात्मक जगत् को ढूँढ़ निकाला। इन्हीं समस्त वर्णों की समष्टि-गत-ध्वनि तरंग-मय यह अखिल ब्रह्माण्ड है। ऊपर कहा जा चुका है कि तन्त्र ने विशद् रूप से इन वर्णों की एकल-ध्वनि-तरंग की शक्ति को रूपालंकारों के साथ वर्णित किया है। इन वर्णों के रूपालंकार का वर्णन आगे प्रस्तुत किया जायेगा। सम्प्रति मैं सम्पूर्ण वर्णमाला को अपने अन्तस् में गोपनीय ढंग से छिपाये रखने वाले ''अहं'' शब्द की व्याख्या करना चाहूँगा ।

शास्त्रों का वचन है कि -

''अहमेव महामन्त्र' अहमेव अहंभावः।।

या

''अहमेव ब्रह्मास्मि, अहमेव शिवोस्मि।'' आदि

अर्थात् ''अहं'' महामन्त्र है, अहं ही मैं-पन का भाव है । मैं ही ब्रह्म हूँ । मैं ही शिव हूँ ।'' यहाँ उल्लेख्य है कि ''अहं'' का सामान्य अर्थ है मैं और ''अहंभाव'' का अर्थ है मैं-पन का बोध ।

यह अर्थ भाषा-साहित्य में स्वीकार किया गया है । किन्तु, इस अर्थ के अतिरिक्त भी इसका विशद् एवं परम गोप्य अर्थ है । अपने गोप्य अर्थो में ही "अहं" महामंत्र संज्ञा धारण करता है। यहाँ पर "अहं" में गोपित उसके विशद् अर्थ को उद्घाटित करना ही लेखकीय ध्येय है ।

"अहं" शब्द तीन अक्षरों के मेल से बना है- अ+ह+म् । इस शब्द में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की इच्छा-ज्ञान-क्रिया की शक्ति सन्निहित है। इसमें सतो-रजो तथा तमो-गुण की प्रतिष्ठा सन्निहित है। इसमें ब्रह्म-वर्चस्व की सम्पूर्ण कलायें छिपी पड़ी हैं। और इसमें सन्निहित है परम गोप्य रूप से सम्पूर्ण ब्रह्माण्डीय शिव-शक्ति का स्वरूप, महाविद्याओं, सिद्धविद्याओं, उनके भैरवों, नित्याओं, कृत्याओं, योगिनियों की तेजसात्मक शक्तियों का स्वरूप । साथ-साथ पंच महाभूतों, तन्मात्राओं आदि के साथ आत्म-तत्व, विद्या-तत्व इत्यादि का इस शब्द में स्वरूप छिपा हुआ है।

आईए, इस "अहं" शब्द पर विचार करें । वर्णों को मातृकाओं का स्वरूप कहा गया है। यथा-

"पञ्चाशल्लिपिभिर्विमुक्त-मुखदोजन्मध्य वक्षस्थलीं,
भास्वन्मौलिनिबद्ध चन्द्रशकलामापीन तुङ्.गस्तनीम ।
मुद्रामक्ष गुणं सुधाढ्यकलशं विद्या च हस्ताम्बुजै
र्विभ्राणां दिशद् प्रभां त्रिनयनां वाग्देवतामाश्रये ।।"

उपरोक्त श्लोकानुसार मातृकाक्षरों की संख्या पचास है। किन्तु, मौलिक रूप से अकार से हकार तक 48 वर्णों का ऋषिओं ने सर्व प्रथम अनुसंधान किया। विशिष्ट शक्तिरूप में "ल" (ड+ल) तथा क्ष'(क् +ष) वर्ण द्वय का बाद में अनुसन्धान किया गया । तब यह "अह" स्वरूप वर्ण-माला "अक्ष" स्वरूप बना और वर्णमाला में वर्णों की संख्या 48 से बढ़कर 50 हो गई । "अह" के बदले "अक्ष" को वर्ण-माला की संज्ञा दी गई ।

ऊपर कहा जा चुका है कि "अहं" शब्द का निर्माण-

अ+ह+म्'' से हुआ है। अर्थात् अकार से हकार तक जो भी व्रर्ण हैं, वे सभी ''अहं'' के मध्य स्थित है। अर्थात् ''अहं'' शब्द में अकार से लेकर हकार पर्यन्त वर्णों की ध्वनि-तरंग समष्टि रूप से गोपित है। इस प्रकार सम्पूर्ण मातृ-शक्तियाँ तथा ब्रह्म-विष्णु-रुद्र अपनी तेजसात्मक शक्तियों, त्रिगुणात्मक शक्तियों, इच्छात्मक-ज्ञानात्मक क्रियात्मक-शक्तियों, तथा पंच महाभूतात्मक तत्वों के साथ ''अहं'' शब्द में प्रतिष्ठित हैं। अर्थात् ''अहं'' शब्द की ध्वनि-तरंग में सर्व वर्ण की ध्वनि-तरंग सन्निहित है। यह शब्द सर्व तत्वात्मक त्रिगुणात्मक, सर्व शक्तिमान, सगुण-निर्गुण ब्रह्म-स्वरूप है ।

अहं शब्द आत्म-भाव का प्रतीक है तो सर्वात्म-एवं परमात्म-भाव का भी द्योतक है। इच्छा-ज्ञान-क्रिया का समन्वित-स्वरूप है। पंच महाभूतों का स्थूलात्मक शरीर-रूप है। पूर्ण तेजसात्मक परम प्रकाशात्मक सूर्य-स्वरूप हैं अहंभाव सम्पन्न होने के कारण सोम-स्वरूप भी है। दिव्य विद्युतीय शक्ति-सम्पन्न होने के कारण अग्नि-स्वरूप है। अर्थात् ब्रह्माण्ड-स्वरूप है। सोम-सूर्याग्नि-तत्वात्मक जगत्-स्वरूप है। इसलिए, ''अहंमेव महामंत्र: '' है।

'अहं'' शब्द में प्रयुक्त वर्णों अर्थात् अ, ह, तथा म् के रूपालंकार, रैखिक आकार, ध्वनि-तरंग-विस्तार, तत्व, रंग आदि पर अलग-अलग विचार करने पर इन वर्णों का निम्न रूप स्पष्ट होता है-

अकार---अकार वर्णमाला का प्रथम वर्ण है। इसके प्रति ऋषियों का निम्नलिखित कथन ध्यातव्य है-

''अं इति ब्रह्म:'' (अकार ब्रह्म-स्वरूप है ।)

''अकारो सृष्टि स्वरूप:'' (अकार सृष्टि-स्वरूप है।)

''अकारो वायव्यात्मकं जगत्'' (अकार वायु-तत्वात्मक जगत् है।)

उपरोक्त कथनानुसार वर्ण-माला का प्रथम मातृकाक्षर अकार वायु तत्वात्मक, पश्चिम आम्नायात्मक, सृष्टि स्वरूप एवं ब्रह्म स्वरूप है। इसका रंग हरित है। आदि शंकराचार्य -विरचित ''यति

दण्डैश्वर्य-विधान-पद्धति'' के अनुसार अकार का रंग पीला है। ''स्वरोदय के अनुसार अकार का रैखिक विस्तार वृत्ताकार है। ''गौरी कंचुकी-तन्त्र'' के अनुसार अकार की ध्वनि-तरंग पुरुषात्मक है। अकार के रूपालंकार का वर्णन करते हुए कहा गया है कि-

''अकारो विष्णुदैवत्वं वैष्णव्या चापराजितम् ।
शंखं-चक्रं गदां पद्मं चतुर्वक्त्रं चतुर्भुजम्।।
नील जीमूत संकाशं पीताम्बरधरं शुभम्
गरुडासनमारूढं सर्वदुष्टं निकृन्तनम् ।।''

इस ध्यान के अनुसार गरुड़ पर सवार, हाथों में क्रमशः शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये हुए, नील मेघ-सदृश कान्तिवान् चार मुख वाले तथा वैष्णवी देवी को वाम भाग में बिठाये हुए विष्णु का स्वरूप स्पष्ट होता है। अन्य तन्त्र में अकार का रूपालंकार निम्न प्रकार से वर्णित किया गया है-

''चामीकरनिभः शूल-गदा राजद् भुजाष्टकः
चतुरास्योऽ तिकायः स्यादकारः कूर्मवाहनः।।''

अर्थात् स्वर्णाभायुक्त शरीर, आठ भुजाधारी, चार मुखों वाला, हाथों में शूल-गदा धारण करने वाला, कच्छुआ पर सवार जगन्मोहन कामदेव सदृश स्वरूप है अकार का । तन्त्रान्तर में अकार के स्त्री-रूप का भी वर्णन मिलता है-

''अजामुखी रक्तवर्णा हंसगा धवलांशुका ।
शरासरंवरं दक्षे धत्ते वामे शराभयो ।।''

बकरी के मुख (अजन्मा, अनन्यसुन्दर) मुख वाली, रक्त वर्ण वाली, हंसगा, श्वेत वस्त्र वाली, दायें हाथों में धनुष एवं वर-मुद्रा तथा बायें हाथ में बाण और अभय-मुद्रा धारण करने वाली अकार का स्त्री-रूप है। रूप-भेद से ब्रह्मणी का रूप झलकता है।

अकार को परम धाम कहा गया है। जहाँ ब्रह्मा कमल आसन पर विराजमान रहते हैं । यथा-

''अकाराख्यं परमं धामं ब्रह्मा स कमलासनः ।

अकार को विहंगनामा कहा गया है-''अः वर्णोस्ति विहंगनामा''।

सृष्टि भाव-रूप से अकार का आम्नाय पूर्व माना गया है। ("अकार: पूर्व आम्नाय कथित: सृष्टि बोधका।")

अकार को कादि विद्या कहा जाता है। विशुद्ध-चक्र, स्वाधिष्ठान एवं अनाहत-चक्र से अकार का सम्बन्ध है। और इन चक्रों में निवासित विद्याओं को (देवी-शक्तियों को) कादि विद्या के नाम से जाना जाता है। कादि विद्या को सृष्टि-स्वरूपा कहा गया है। इसके मन्त्र को "वाग्भव कूट" के नाम से जाना जाता है । चूँकि कुण्डली-क्रम से वाग्भव-कूट का आम्नाय उत्तर-पूर्व एवं पश्चिम है। उत्तर-पूर्व-पश्चिम आम्नाय की महाविद्यायें, सिद्ध विद्यायें भैरव आदि अकार में गुम्फित-गोपित हैं । यथा

"अकारस्य विशुद्धं च स्वाधिष्ठानमनाहतम् भवन्ति त्रीणि चक्राणि कादि विद्या तथैव च ।"

(य०द०वि०प०)

"अकार: सृष्टि रूपो य: पूर्वाम्नायात्मक स्थित: ।"

(वही)

"स च तत्पुरुषाख्यस्तु मृतो वाग्भव कूटवान् ।"

अकारस्थ महाविद्याओं एवं सिद्ध-विद्याओं की चिन्तनपूर्ण विवेचना करने पर स्पष्ट होता है कि भरतोपासिता गुह्य कालिका रामोपासिता गुह्य कालिका, कामकला कालिका, उन्मनी, पूर्णेश्वरी, भुवना, भुवनेशी, भुवनेश्वरी, अघोर कुब्जिका, समया कुब्जिका,वीर कुब्जिका तथा कर्म कुब्जिका आदि देवी-शक्तियाँ अकार में स्थित हैं। इनका आधार-चक्र क्रमश: स्वाधिष्ठान, अनाहत एवं विशुद्ध है। इस तरह डाकिनी, काकिनी तथा राकिनी समस्त देवियों का उद्‌भव-विकास अकार से होता है। उपरोक्त विद्याओं को ही कादि विद्या कहा जाता है।

हकार-अब हकार पर विचार करें तो अभिज्ञात होता है कि यह आकाश तत्वात्मक है। आकाश जैसा ही इसका रंग है। यह उत्तर आम्नायात्मक है। 'स्वरोदय' के अनुसार यह बिन्दु के आकार का है।

यह निर्गुण शिवात्मक है। इसके स्वरूप का वर्णन करते हुए "तत्वचिन्ता-मणि-तन्त्र" का कथन निम्नलिखित है-

"हकार : नीलशून्याभं शब्दरूपं परात्परम् ।
सूक्ष्मं निरंजनम् नित्यं शब्दातीतं परात्परमे ॥
भिन्नेन्द्रनील संकाशं कालिन्दी-जल सन्निभम् ।
ध्यातं च नाशयेत्येष विषं चराचर जीव स्थावर जड्.गम् ॥

उपरोक्त ध्यानानुसार हकार का वर्ण नीले आकाश की तरह है। यह बैन्द्वाकार का है। यह शब्द-रूप परात्पर है । सूक्ष्म, निरंजन, नित्य एवं शब्दातीत पर-ब्रह्म-स्वरूप है। इसका ध्यान करने से स्थावर जीव-जंगमका विष नष्ट होता है। अर्थात् यह पर-शिव-तत्वात्मक मुक्तिदाता है।

तन्त्रान्तर वचन के अनुसार श्वेत वर्ण का त्रिबाहु, माथे पर चन्द्रमा धारण करने वाला हकार का स्वरूप है। यथा-"हार्णः श्वेतस्त्रिबाहु स्यात् व्यापतः शीतांशु शेखरः ।"

इसके स्त्री-रूप को "आध्यापिनी विद्या" कहा गया है। उसके रूपालंकार का वर्णन करते हुए कहा गया है कि -

"आध्यापिनी हकाराख्या मत्त मातंग वाहना
पाटलाभं करैर्धत्ते चिदंबुजं वराभयान् ॥"

अर्थात् हकारात्मिका आध्यापिनी विद्या उन्मत्त हाथी पर आरूढ़ हैं । पाटल अर्थात् लाल रंग की हैं। हाथों में क्रमशः चिन्मुद्रा, कमल, वर मुद्रा तथा अभय मुद्रा धारण करने वाली हैं । अर्थात् यह आध्यापिनी विद्या पर-शिवात्मिका है।

हकार को हादि-विद्या भी कहा जाता है। इसकी क्रम-विद्याओं का वर्णन करते हुए 'यति दण्डैश्वर्य विधान पद्धति' में आदि शंकराचार्य का कथन निम्नलिखित है-

"आद्याकाली च महाद्याकाली चैव तथा भवेत् ।
श्यामाकाली, सिद्धिकाली दक्षिण कालिका ततः।

तारिण्येकजटा चोग्रतारा, नील सरस्वती ।
महानीला, महोग्रा च शारदा चैव सम्मता:।
बालादि त्रिपुरा, बाला सुन्दरी बाला भैरवी ।
बाला पूर्वा या त्रिपुर भैरवी सैव सुन्दरी ।।''

अर्थात् कामराज कूटा हादि विद्यायें निम्नलिखित है।- 1. आद्याकाली, 2. महाद्याकाली, 3. श्यामाकाली, 4. सिद्धिकाली, 5. दक्षिणा काली, 6. तारिणी, 7. एकजटा, 8. उग्रतारा, 9. शारदा, 10. बाला त्रिपुरा, 11. बाला सुन्दरी, 12. बाला भैरवी, 13. बाला त्रिपुर भैरवी, 15. बाला त्रिपुर सुन्दरी ।

हादि-विद्या के आम्नायों पर विचार करने पर ज्ञात होता है कि इसके दक्षिण, अधर एवं ऊर्ध्व तीन आम्नाय हैं । इस क्रम से इनकी शक्तियों का देह में निवास स्थल मूलाधार, मणिपूर एवं आज्ञा-चक्रों में है।

हादि-विद्या की विशिष्टता की ओर संकेत करने वाले निम्नलिखित शास्त्र-वचन भी ध्यातव्य हैं-

''हादि विद्या स्थिति स्वरूपा ।''
''हादि चिद्ज्ञान गोचरा ।।''
''हादि लोपामुद्रेरिता ।''

अर्थात् हादि-विद्या स्थिति-स्वरूपा, चिद्-ज्ञान गोचरा एवं लोपामुद्रा द्वारा प्रतिपादित है।

मकार-मकार प्रकाश-स्वरूप सूर्य का वर्ण माना गया है। इसको विद्या कूट कहा जाता है। इसके सम्बन्ध में शास्त्रों का निम्नलिखित वचन ध्यातव्य है- ''मकारो रुद्र रूप: ।''

मकार का स्वरूप वर्णन करते हुए तत्व-चिन्ता-मणि तन्त्र का कथन निम्नलिखित है -

''मकारं वृषारूढ़ं भस्मोद्धूलित धूसरम् ।
नीलकंण्ठं च जटिलं सर्वनीतिकरं शिवम् ।।
पञ्चवक्त्रं दशभुजं त्रिंशार्द्ध पिंगल-लोचनम् ।

खड्गांकुश त्रिशूलानि पाशं डमरूकं तथा ।।

कमण्डलुपदमुष्ट्यभयं पात्रं दधत् करैः ।''

अर्थात् साँढ़ पर आसीन, भस्मावेष्टित धूम्र वर्ण-युक्त नीलकण्ठ, जटाधारी, सभी नीतियों का नियामक, पाँच मुखों वाला, दस भुजाधारी, पन्द्रह नेत्रों वाला, हाथों में दायें क्रम से खड्ग, अंकुश, त्रिशूल, पाश तथा डमरू एवं बायें क्रम से कमण्डल, कमल, उष्टि अभय एवं पात्र (खप्पर) को धारण करने वाला पशुपति सदा-शिव का रूप ही मकार का स्वरूप है। तन्त्रान्तर-मत से मकार का निम्नलिखित स्वरूप प्राप्त होता है-

''मण्डितो मुण्डमालाभिः शशि खण्ड विराजितः।

व्याप्तः चतुर्भुजो धूम्रो मार्णः स्यात् मृगसंस्थितः।।

अर्थात गले में मुण्डमाला , शिरस्थ चन्द्रमा, मृगारूढ, चतुर्भुज, धूम्र वर्णाभायुक्त व्यापक स्वरूप है मकार का।

तन्त्रान्तर-मत से ही मकार के स्त्री-रूप का निम्नलिखित स्वरूप प्राप्त होता है -

''यो विद्या श्यामला देवी हयस्था स्फटिक प्रभा ।

वीणा वादन तत्वज्ञा वराभय करा शुभा ।।

अर्थात् हयारूढ़ा, स्फटिक सदृश श्वेत-वर्णाभायुक्त वीणा-वादन में प्रवीणा तथा वर एवं अभय मुद्रा धारण करने वाली श्यामला देवी मकार की शक्ति हैं ।

मकार की शक्तियों को सादि-विद्या कहा जाता है तथा मन्त्र-कूट को विद्या-कूट । मकार आकाश तत्वात्मक धूम्र वर्ण का है। मकार पश्चिम आम्नायात्मक है। शरीस्थ इसके आधार-चक्र हैं-मूलाधार, मणिपूर तथा सभी उपाम्नाय-गत आधार यथा-

1. मकारो पश्चिम आम्नाय रूपः स्याल्लय संज्ञितः ।

(य०द०वि०प०)

2. कहादि-सादि रूपश्च मकारस्यात्र वर्णितः । (वही)

3. ''मकारः शक्ति-कूटात्मकः।''

मकारस्थ सादि-कूट की शक्तियों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि -

चण्डिका चैव चामुण्डा भद्रकाली तथा स्मृता ।
भद्रकाल्या समं दुर्गा तथा चैव सरस्वती ।।
तथा मोहिनी मातंगी, विपरीत प्रत्यङ्गिरा ।
भद्रकाली महा सरस्वती चैव तथा मता ।।
कात्यायिनी समं दुर्गा महालक्ष्मी च तारिका ।
महालक्ष्मीश्चोग्रचण्डा यथानाम तथा गुणा ।।
दशवक्त्रा महाकाली सैवास्ते रक्त दन्तिका ।
दशवक्त्रा महाकाली चामुण्डा च त्रिशक्तिभिः।।
मकारस्य मात्रा शक्त्यः अष्टादश मता शुभाः।
उपाम्नायगता देव्या नैऋत्यादि क्रमस्थिता ।।

अर्थात् उपाम्नायगत नैऋत्यादि क्रम से प्रपूजित होनेवाली देवी-शक्तियाँ ही मकार की शक्तियाँ हैं, जिन्हें सादि-विद्या के नाम से जाना जाता है । मोहिनी, मातंगी, सरस्वती तथा उग्रतारा मिलकर चामुण्डा का रूप, जिसे लोक जीवन में महामाया भद्रकाली कहा जाता है, नैऋत्य कोण की अधिष्ठात्री देवी हैं । पूर्व दिशा-गत कमला, तथा उत्तर दिशा-गत बगला मिलकर महालक्ष्मी का स्वरूप धारण करती हैं, जो आग्नेय कोण की अधिष्ठात्री देवी हैं। कादि-विद्या को ब्रह्म-स्वरूप, हादि-विद्या को शिव-रूप-चित्-शक्ति कहा जाता है, वहीं सादि-विद्या को चिदानन्द स्वरूप शिव-शक्तिमय माना गया है।

"कादित्वा ब्रह्मरूपत्वं, हादित्वाच्छिव रूपता ।
चित्छक्तिः कादिरूपास्याद् हादिश्चिदज्ञानगोचरा ।।
चिदानन्द स्वरूपाख्यं शिवशक्त्यात्मकं मह ।
सादिश्च सर्व सम्मतया पारिभाषिक मीरितम् ।।

कादि-विद्या की प्रधान देवी काली हैं । हादि-विद्या की प्रधान देवी सुन्दरी तथा सादि-विद्या की प्रधान देवी तारिणी(कुब्जिका)

है। यथा-

"कादि-हादि-सादि काली-सुन्दरी-तारिणी ।

प्राचीन मतानुसार सादि विद्या नवात्मिका है। अर्थात् सादि-विद्यान्तर्गत नव शक्तियाँ सन्निहित हैं, जिनका नाम निम्नलिखित है-

"पन्नगेशी, वज्रपूर्णा, विजयेश्वरी, एकजटा, नील सरस्वती, उग्रतारा, महोग्रा, महार्या तथा तारिणी । इन्हें नव रत्न कूब्जिका के नाम से जाना जाता है।

यथा-

"पन्नगेशी वज्रपूर्णा विजयेश्वरी ।
एकजटा नीलापूर्वा च सरस्वती ।।
उग्रतारा महोग्रा-महार्या तारिणी तथा ।
नवात्म शाम्भवं ज्ञेय तु मुक्तिदाविद्या ।।
(य०द०वि०प०)

उपरोक्त शास्त्र-कथनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि "अहं" की ध्वनि-तरंग सर्वमन्त्रमयी, सर्व शक्तिमयी सर्वात्ममयी, सर्व तत्वमयी, त्रिगुणात्मिक, ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र रूपा है और महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वती स्वरूपा भी है। इसी "अहं" वर्ण-माला में ऊपर कहा जा चुका है कि 48 वर्णो की ध्वनि-तरंग गुम्फित-गोपित है। तात्पर्य यह कि अकार से हकार तक जितने वर्ण हैं, जितने वर्णात्मक वर्ग है -वे अकार एवं हकार रूपी दोनों ढक्कनों से ढँके हुए हैं। या कि अ और ह के बीच ही गर्भित हैं, सन्निहित है। अतः, "अहं" शब्द की ध्वनि-तरंग में अव्यक्त रूप से सभी स्वर वर्णों एवं व्यंजन वर्णों की ध्वनि -तरंग सम्पृक्त है । इन अवर्गादि वर्णों से ही सिद्ध विद्याओं एवं इनके भैरवों की उत्पत्ति हुई है। इस सम्बन्ध में आगमों में विस्तार से विवेचना की गई है और कुछ गुरु-गम्य भी है। देशिकों तथा अध्यात्म-विदों के अनुसार अ-वर्गादि की विद्याओं के नाम निम्नलिखित है-

अवर्ग-सृष्टि स्वरूपा ब्रह्माणी का रूप है।

इनका ध्यान निम्नलिखित है-

''ध्यायेत् ब्रह्माणीं पलाशस्थां हंसारूढ़ा चतुर्भुजाम् ।
अक्षमाला वराभीति कमण्डलु करारुणाम् ।।

कवर्ग- कवर्ग माहेश्वरी का रूप है। इनका ध्यान निम्नलिखित है-

''वृषारूढ़ां भाल चन्द्रां त्रिनेत्रां शशि सन्निभाम् ।
दधतीं शूल डमरूं महाहिवलयां भजे ।।''

चवर्ग- यह वर्ग कामेश्वरी का रूप है। इनका ध्यान निम्नलिखित है-

''शक्त्यक्षस्रग्वराभीति करां बन्धूक सन्निभाम् ।
मयूरध्वजिनीं रक्त वस्त्रामौदुम्बर स्थिताम् ।।
हरित कञ्चुकिकां रम्यां नानालंकार भूषिताम ्।।''

टवर्ग- टवर्ग-भगवती वैष्णवी का रूप है । इनका ध्यान निम्नलिखित है-

''शंख चक्र गदा पद्मधरां पीताम्बरावृताम् ।
दूर्वा श्यामास्य कमलां पीनोन्नत पयोधराम् ।।
ताक्ष्येस्कन्धगतां त्र्यक्षां शिरीषोपरि संस्थिताम् ।
स्वर्ण रत्नादि संभूषां स्मितां वैष्णवीं भजे ।।''

तवर्ग- तवर्ग भगवती वाराही का रूप है । इनका शास्त्रोक्त स्वरूप निम्नलिखित है -

''ततो ध्यायेत् घनश्यामां त्रिनेत्रामुन्नतस्तनीम् ।
कोलास्यां चन्द्रभालां च दंष्ट्रोद्धृत वसुन्धराम् ।।''
खड्गाङ्कुशो दक्षिणयोर्वामयोश्चर्म पाशकौ ।
अश्वारूढां भीषणास्यां नानालङ्कार भूषिताम् ।।''

पवर्ग- पवर्ग भगवती इन्द्राणी का स्वरूप है। अर्थात् पवर्ग की ध्वनि-तरंग से भगवती इन्द्राणीका उद्भव हुआ है। इनका स्वरूप निम्न प्रकार है-

माहेन्द्री च त्रिनयनां ध्यायेद्रत्नादि भूषिताम् ।
वज्रपाश वराभीति हस्तां श्यामाम्बरावृताम् ।।

चतुर्दन्त गजा कल्पच्छाया संस्थां हिण्यभाम् ।।

यवर्ग- यवर्ग की ध्वनि -तरंग से भगवती चामुण्डा का अवतरण हुआ है । इनका रूपालंकार निम्नलिखित है -

नीलोत्पलदलस्यामा चतुर्बाहु समन्विता ।
खट्वाङ्ग चन्द्रहासं च विभ्रती दक्षिणे करे ।।
वामे चर्म च पाशं च ऊर्ध्वतो भावतः पुनः ।
दधती मुण्डमालां च व्याघ्र चर्मवराम्बरा ।।
कृशाङ्गी दीर्घद्रंष्ट्रा च अति दीर्घाऽतिभीषणा ।
लोलजिह्वा निम्न रक्त नयनाकार भीषणा ।।
कबन्ध वाहनासीना विस्तारित्तश्रवणानना ।

शवर्ग- शवर्ग की ध्वनि-तरंग से महालक्ष्मी का समुद्भव हुआ है। इनका स्वरूप निम्नलिखित है -

''सुवर्ण वर्ण दीप्तांगी त्रिनेत्रा सिंहवाहिनी ।
ईषत्प्रहसिता देवी नीलोत्पल दलेक्षणा ।।
भुजषोडश सम्पन्ना सर्वालङ्कार भूषिता ।
खड्ग घण्य शरं सूत्रमङ्कुशं शूल पद्मकम् ।।
दधानां दक्षिणै हस्तैरनाथेभ्यो वर प्रदा ।
तथा वामैर्हस्तपद्मैः फेटकं डिंडिभं धनुः।।
कमण्डलुं नागपाशं कपालं पुस्तकाभयम् ।
जाज्वल्यमाना तेजोभिरतीवाह्लाद कारिणी ।।

उपरोक्त वर्गाष्टक वर्णों की मातृकाओं के साथ पुंसात्मक ध्वनि-तरंग से अष्ट भैरव का स्वरूप प्रकट हुआ है, जो निम्नलिखित है -

1-ब्रह्माणी के साथ असितांग भैरव,
2-माहेश्वरी के साथ रुद्र भैरव,
3-कौमारी के साथ चण्ड भैरव,
4-वैष्णवी के साथ क्रोध भैरव,
5-वाराही के साथ उन्मत्त भैरव,

6- इन्द्राणी के साथ कपाली भैरव,

7- चामुण्डा के साथ भीषण भैरव,

8- महालक्ष्मी के साथ संहार भैरव ।

उपरोक्त शक्ति तथा भैरवों के सम्मिलन से आठ तत्वों की उत्पत्ति हुई है। इन तत्वों से अन्य आठ देवी रूपों का उद्‌भव हुआ है। जैसे-

अवर्ग से -रुद्र चण्डा

कवर्ग से - प्रचण्डा

चवर्ग से - चण्डोग्रा

टवर्ग से -चण्डनायिका

तवर्ग से - चण्डा

पवर्ग से - चण्डवती

यवर्ग से - चण्डरूप

शवर्ग से - अति चण्डिका

इसी तरह अ आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ,लृ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः, क ख ग घ ड. च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म य र ल व श ष स ह आदि वर्णों की एकल-ध्वनि तरंगों से भिन्न-भिन्न शिव-शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ है। साथ ही उपरोक्त वर्णों की एकल-ध्वनि-तरंग के साथ अन्य वर्णों के सम्मिलन से जो संयुक्त ध्वनि-तरंग उत्पन्न होती है, उससे कई प्रकार की भिन्न-भिन्न देवी शक्तियों का उद्‌भव हुआ है और उनके साथ भिन्न-भिन्न शिव-रूपों का भी समुद्‌भव हुआ है। जैसे- क्+ल्+ई +म् = क्लीम्, ह+र+ई+मं= ह्रीम्, श्+र्+ई+म् = श्रीं, प+ल+ई+म् = प्लीम्, ग्+ल+औ+म् = ग्लौं, र+आ+म= राम , ह+र+इ+:= हरिः , स+औ+: = सौः (परा प्रसाद मन्त्र) ह्+ल्+ई+म् = ह्ल्रीम (बगला मुखी मन्त्र), आदि । फिर इन संयुक्त वर्णों की ध्वनि-तरंग से समुत्पन्न देव-देवी के मिथुनात्मक संयोग से कई अन्य सिद्ध विद्याओं की उत्पत्ति हुई है । इस तरह "अह" वर्णमाला

के विभिन्न वर्णों की ध्वनि-तरंगों से देव-देव्यात्मक कोटिश: रूपों का उद्भव हुआ है। ये ही शिव-शक्तियाँ ब्रह्माण्ड के सृष्टि-स्थिति-संहार में क्रिया-शील रहती हैं। अर्थात् जनन-पालन-एवं संहार की क्रियाओं को सम्पादित करती हैं । अत:, उपरोक्त बातों पर विचार करने पर पूर्णतया यह तथ्य उजागर होता है कि सभी देव-देवी शक्तियों की जननी "अह" वर्ण-माला ही है। यहाँ यह उल्लेख्य है कि "अ-- रूपी प्रकाश, विमर्श स्वरूप हकार से मिलकर म-रूपी चिदाकाश में विश्रान्ति पाता है। अर्थात् अहम् शब्द के अनवरत चिन्तन एवं उच्चारण मात्र से सामान्य मनुष्य ब्रह्माण्ड नायक तक बन सकता है। प्राचीन या अर्वाचीन ऋषि, देशिक, सिद्ध आदि इसी "अहम्" नाद-ब्रह्म के अभ्यास में रत होकर पूर्ण उर्ज्जावान् हुए हैं, त्रिलोकज्ञ हुए हैं। अपनी दिव्यता से, अपने चमत्कारों से जगत् को चमत्कृत कर गये हैं तथा वर्त्तमान में कर रहें हैं। इस क्रिया को ही नाद-योग की संज्ञा दी गई है।

नादानुसन्धान की क्रिया किसी योग्य गुरु से दीक्षा प्राप्त कर उनके निर्देशन में ही करना श्रेष्यकर होता है। फिर भी सामान्य तौर पर नादानुन्धान या "अहम्" की ध्वनि-तरंग को जानने-समझने के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया के तहत अभ्यास-रत एवं क्रिया-शील रहा जाता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि सामान्य मनुष्य जिन ध्वनि-तरंगों को या वर्णो को बोलता है, वह वर्ण का बैखरी रूप है। वह मात्र भौतिक जगत् के कार्यों को सम्पादित करने में ही समर्थ है तथा उसके द्वारा भौतिक जगत् की ही पहचान हो पाती है । ब्रह्माण्ड के रहस्यों को उद्घाटित करने में यह बहुत ही कम उपयोगी है। अत:, साधक, चिन्तक, को ब्रह्माण्ड के रहस्यात्क जगत् या तेजसात्मक सत् के शिव-शिवात्मक शक्तियों को जानने-पहचानने एवं उनकी ऊर्जा, जो इस मानव-शरीर में भी गुम्फित -गोपित है, उसी मात्रा में जिस मात्रा में वह ब्रह्माण्ड-नायक-शिव तथा

ब्रह्माण्ड-नायिका शिवा में सन्निहित है, को ऊर्जस्वित करने के लिए, वर्णों (अहम्) के परा, पश्यन्ती एवं मध्यमा रूपों के ही चिन्तन-अनुचिन्तन में अभ्यास-रत रहना चाहिए । यहाँ उल्लेख्य है कि - वर्ण के परा-स्वरूप का चिन्तन-अनचिन्तन मूलाधार-चक्र में करना चाहिए।

मूलाधार-चक्र-गुदा मार्ग से दो अंगुल ऊपर विस्तार में मूलाधार चक्र अवस्थित है । इसका रैखिक विस्तार चतुष्कोणीय है । चतुष्कोणीय आकार के मध्य में ''यँ'' बीज अंकित है। साथ ही विशाल हाथी खड़ा है। यहाँ ब्रह्मा अपनी साकिनी शक्ति के साथ विराजमान हैं । इनका वर्ण लाल है मूलाधार चक्र के चार दलों पर पूर्वादि क्रम से वँ शँ, षँ तथा वँ वर्ण अंकित है। मूलाधार को कामराज पीठ कहा जाता है। इस पीठ पर ध्यानस्थ होकर नाद-मन्त्र -चिन्तन-व जप से मनुष्य का स्वरूप चिन्मय हो जाता है - यथा -

''मूलाधारे जपाद् ध्यानान्मन्त्रस्य चिन्मयवपुः ।
जायते च ततो ध्येयास्यापि चिन्मयरूपता ।।''

इस चक्र में नवात्मकेश्वर तथा नवात्मकेश्वरी नामक शाम्भव, जो योगसिद्धि दायक है, विराजित हैं । भू-सम्पत्ति-की प्राप्ति के लिए भी मूलाधार-चक्र में ध्यान देकर मन्त्र जप से सद्यः सफलता मिलती है-यथा-

''भूमिकामो जपेन्मन्त्रं मूलाधारे चतुर्दले ।''

मूलाधार-चक्र की अधिनायिका महोग्रा है। मूलाधार सृष्टि-बीज-स्वरूप है। मौलिक रूप से सभी वर्णात्मक शक्तियाँ इसी चक्र में निर्ध्वनित रूप में विराजमान रहती हैं ।

स्वाधिष्ठान-चक्र-गत-नाद-मूलाधार-चक्र-स्थित बिन्दु स्वाधिष्ठान का परा-रूप चक्र है। इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना के प्रभाव से ''परा'' का विशिष्ट रूप नाद के रूप में स्वाधिष्ठान में प्रकट होता है- यही नाद मणिपूर की यात्रा करता हुआ अनाहत में ''पश्यन्ती'' (अव्यक्त) रूप में प्रकट होता है तथा विशुद्ध-चक्र में

प्रवेश कर मध्यमा (व्यक्त) रूप में परिणत हो जाता है। फिर स्वर-यन्त्र से निकल कर कण्ठ-तालु, जिह्वा, ओष्ठ, दाँत तथा नासिका की सहायता से बैखरी रूप में प्रकट होता है और विस्तार पाता है। आन्तरिक क्रियाओं में यही मध्यमा लंबिका-चक्र होती हुई आज्ञा-चक्र में गुंजायमान होकर गुरु-चक्रादि को पार करती हुई सहस्त्रार में प्रवेश कर समस्त सिद्धियों का द्वार उद्घाटित करती है ।

अत:, साधकों को परा-पश्यन्ती एवं मध्यमा-आधारित चक्रों पर क्रमश: पूर्णतया ध्यानस्थ होकर ऊर्ध्व-चक्र अर्थात् आज्ञा-चक्र एवं सहस्त्रार तक "अहम्" का चिन्तन -अनुचिन्तन करना चाहिए। इस तरह के अभ्यास से साधक को समस्त सिद्धियों का लाभ प्राप्त होता है। तथा मोक्ष और योग दोनों सिद्ध होता है। साधक शिव कल्प-सदृश हो जाता है। इस तरह बैखरी का "अहम्" जिसका सामान्य अर्थ "मैं" या "अहंकार" है सच्चिदानन्द स्वरूप पर-शिवात्मक हो जाता है। निष्कर्ष यह कि - अहं-मात्र एक शब्द नहीं एक महामन्त्र है ।

मन्त्र- (1) "हंसश्शिवस्सोहं, सोहं हंसश्शिव:, हंसश्शिवस्सोहं हंस: हस्ख्फ्रें हसक्षमलवर यूँ नम: ।"

(2) "आर्द्रं ज्वलति ज्योतिरहमस्मि ज्योतिर्ज्वलति ब्रह्माहमस्मि। योऽहमस्मि ब्रह्माहमस्मि अहमस्मि ब्रह्माहमस्मि अहमेवाहं मां जुहोमि स्वाहा ।"

ह्रीम् बीजमन्त्रः एक विवेचना

बीजों का उद्भव एकल तथा संयुक्त वर्णों की ध्वनि-तरंग के अनुसंधान क्रम में हुआ है। देवी प्रणव 'ह्रीम्' बीज के निर्माण में भाग लेने वाले प्रत्येक वर्ण (मातृकाक्षर) के स्वरूप, अलंकार, तत्व , प्रकाशकीय रँग तथा शक्ति-तत्व के साथ-साथ शरीर में उनके निवास स्थान तथा उसकी एकल ध्वनि-तरंग-जनित आध्यात्मिक शक्तियों का अनुसन्धान करने पर निम्नलिखित तथ्य उभर कर सामने आते हैं-

(क) 'ह्री' बीज के निर्माण में ह, र, ई तथा म् वर्ण का सहयोग है। अतः, सर्व प्रथम 'हकार' के रूपालंकार, तत्व, शक्ति-तत्व एवं इसकी जागतिक एवं आध्यात्मिक उपादेयता का विश्लेषण आवश्यक है। तन्त्र-शास्त्रों के अध्ययन-अनुशीलन के बाद 'हकार' के सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट होते हैं -

1. हकार आकाश-तत्वात्मक है।
2. हकार का प्रकाशकीय रँग आकाश जैसा है ।
3. हकार उत्तर आम्नायात्मक है और पश्चिम आम्नायात्मक भी ।
4. स्वरोदय के अनुसार 'हकार' बिन्दु के आकार का है।
5. यह निर्गुण शिव-तत्वात्मक है।

इसके स्वरूप एवं अलंकार का वर्णन करते हुए "तत्व -चिन्तामणि-तन्त्र" में कहा गया है कि-

"हकारः नील शून्याभं शब्द-रूपं परात्परम् ।
सूक्ष्मं निरंजनं नित्यं शब्दातीतं परात्परम् ।।
भिन्नेन्द्रनील संकाशं कालिन्दी-जल-सन्निभम् ।
ध्यातं च नाशयेत्येष विषं स्थावर जङ्गमम् ।।

उपरोक्त ध्यानानुसार हकार का वर्ण (रँग) नीले आकाश जैसा है। यह बैन्द्राकार है। यह शब्द-रूप परात्पर है। सूक्ष्म है, निरञ्जन है, नित्य तथा शब्दातीत है। हकार का ध्यान करने से समस्त स्थावर जगम का विष अर्थात् मल नष्ट हो जाता है। अर्थात् इसके ध्यान मात्र से आत्मा पर पड़े समस्त आणव नष्ट हो जाते हैं । यह पर-शिव-तत्वात्मक है ।

तन्त्रान्तर वचन के अनुसार -"श्वेत वर्ण का, तीन भुजाओं वाला, माथे पर चन्द्रमा धारण करने वाला 'हकार' का स्वरूप बतलाया गया है। "यथा-हार्ण : श्वेतस्त्रिबाहु स्यात् व्यापतः शीतांशु-शेखरः ।"

इसके स्त्री-रूप को आध्यापिनी विद्या कहा गया है, जिसके रूपालंकार का वर्णन करते हुए कहा गया है कि -

"आध्यापिनी हकाराख्या मत्त मातंग वाहना।
पाटलायां करैर्धत्ते चिदम्बुजं वराभयान् ।।"

अर्थात् हकारात्मक आध्यापिनी विद्या (देवी) उन्मत्त हाथी पर आरूढ़ है। तथा पाटल (लाल) रँग की हैं। हाथों में क्रमशः चिन्मुद्रा, कमल, वर-मुद्रा तथा अभय-मुद्रा धारण करती हैं । यह आध्यापिनी विद्या पर-शिवात्मिका हैं ।

हंकार को "हादि-विद्या" भी कहा जाता है। हादि-क्रम की विद्याओं का वर्णन करते हुए "यति दण्डैश्वर्य-विधान-पद्धति" में आदि शंकराचार्य का कथन निम्नलिखित है-

"आद्याकाली च महाद्याकाली चैव तथा भवेत् ।
श्यामा काली सिद्धिकाली दक्षिण कालिका ततः ।।
तारिण्येकजटा चोग्रतारा नील सरस्वती ।"

महानीला महोग्रा च शारदा चैव सम्मताः ।।
बालादि त्रिपुरा, बाला सुन्दरी बाला भैरवी ।
बाला पूर्वा या त्रिपुर भैरवी सैव सुन्दरी ।।''

अर्थात् कामराज कूटा हादि विद्यायें निम्नलिखित हैं - आद्याकाली, महा आद्या काली, श्यामा काली, सिद्धि काली, दक्षिणा काली, तारिणी, एक जटा, उग्र तारा, शारदा, बाला त्रिपुरा, बाला सुन्दरी, बाला भैरवी, बाला त्रिपुर भैरवी तथा त्रिपुर सुन्दरी (षोडशी) ।

हादि-विद्या के आम्नायों पर विचार करने पर ज्ञात होता है कि इसके दक्षिण , अधर तथा ऊर्ध्व तीन आम्नाय हैं । मानव-शरीर में इनका निवास-स्थल क्रमशः मूलाधार-चक्र, मणिपूर-चक्र तथा आज्ञा-चक्र है। हादि-विद्या की विशिष्टता की ओर संकेत करने वाले निम्नलिखित शास्त्र-वचन भी ध्यातव्य हैं -

(क) ''हादि विद्या स्थिति स्वरूपा,''
(ख) हादि चिद्ज्ञान-गोचरा,
(ग) हादि लोपा मुद्रेरिता ।

अर्थात्, हादि-विद्या स्थिति-स्वरूपा, चिद्-ज्ञान-गोचरा है तथा लोपामुद्रा द्वारा प्रतिपादित विद्या है। इस तरह यह विद्या महाबिन्दु से बिन्दु तक अर्थात् सहस्त्रार से मूलाधार तक परम गोप्य रूप में विराजमान है। तन्त्र-शास्त्रों एवं कोशादि के अध्ययन करने पर 'हकार' के सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्य भी उभर कर सामने आते हैं, जो हकार में गोपित शक्तियों की ओर संकेत करते हैं -

1. ''हरति निखिलं जगदिति हृ सर्व जगत् संहंत्री,''

(सम्पूर्ण जगत् का संहार करने वाला 'हकार' है अर्थात् सम्पूर्ण वैश्विक चेतना का विश्रान्ति स्थल है 'हकार' ।)

2. "हरति सर्व विषयी करोतीति हृ-" ('हकार' सभी विषय-वासनाओं का हरण कर शुद्धता प्रदान करने वाला है)

3. "हन्यते ताप त्रयमनेनेति हः "(हकार त्रितापों का नाश करने वाला है।)

4. हरतीति ह्री , संहंत्री-शक्ति (आज्ञानता का नाश करने के कारण ही 'हकार' संहारक-शक्ति है।)

5. हरति विहरति इति ह्री (अज्ञानता का नाश कर ज्ञान-विहार की क्षमता प्रदान करने वाला 'हकार' है ।)

वैयाकरण मत -- पाणिनी द्वारा रचित माहेश्वर सूत्र में व्यंञ्जन वर्णों का वर्णन "हयवरट" अर्थात् हकार से प्रारम्भ किया गया है तथा अन्तिम सूत्र में "हल्" से अर्थात् हकार से प्रारम्भ किया गया है। तात्पर्य यह कि हकार में सम्पूर्ण व्यंञ्जन वर्णों की समाप्ति दिखाई गई है। अत:, हकार उर-स्थानीय प्रथम वर्ण है।

हठ योग मत--हठ योग-शास्त्र में ह को सूर्य तथा ठ को चन्द्र का प्रतीक माना जाता है। ह अर्थात् पिंगला नाड़ी तथा ठ अर्थात् इडा नाड़ी है। नाड़ी-ज्ञान द्वारा प्राणायाम की प्रक्रिया के आधार पर चक्र-स्थित शक्तिरूपा कुण्डलिनी को उठाकर सहस्त्रार-स्थित शिव में मिला देना ही हठयोग का चरम लक्ष्य है। इस सम्बन्ध में इनका कथन है कि-

आधार छन्दमध्यस्थं त्रिकोणमति सुन्दरम् ।
ज्योतिषां निलयं दिव्यं प्राहु रागमवेदिनः ।।
तत्र विद्युत्लताकारा कुण्डली परदेवता ।
विभर्ति कुण्डली शक्तिरात्मानं हंसमाश्रितः ।
हंसः प्राणाश्रयो नित्यं प्राणोनाड़ी समाश्रयः ।।

प्राण-वायु को भीतर बाहर करने अर्थात् श्वाँसोच्छवास क्रिया के द्वारा अजपा मन्त्र "हंस:" का विलोम "सोऽहं" बन जाता है। "हं" पुरुष तथा "स: " प्रकृति है। "सोऽहम्" का अर्थ है- "मैं वहीं हूँ"। वेदों द्वारा प्रतिपादित "प्रज्ञातंब्रह्म:," अयमात्मा ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि तथा तत्वमसि इन चार महावाक्यों का तत्व-बिन्दु है। अजपा मन्त्र द्वारा प्रतिपादित सत्यका नाम है- सत्य । आगम के अनुसार भी 'हं' को पुरुष तथा 'स:' को प्रकृति का रूप माना गया है । यथा-

"पुम्प्रकृत्यात्मकौ प्रोक्तौ बिन्दु सर्गो मनीषिभि: ।
ताभ्यां क्रमात्समुद्भूतौ बिन्दु सर्गावसानकौ ।।
हंसौ तौ पुंनकृत्याख्यौ हं पुमान् प्रकृतिस्तु स: ।
अजपा कथिता ताभ्यां जीवोऽयमुपतिष्ठति ।।
यदातद्भावमाप्नोति तदा सोऽहमियं भवेत् ।।

इसी तरह सूर्य-सोमाग्नि ऐक्य रूप आत्मा-रूप में परिणत होने का वर्णन तन्त्र द्वारा किया गया है।

"आत्मानं रवि वह्नि चन्द्र वपुषं तारात्मकं सन्ततम् ।
नित्यानन्द गुणालयं सुकृतिन: पश्यन्ति रुद्रेन्द्रिया: ।।

इस तरह देवी-प्रणव "ह्रीं" बीज़ में "ह", "र" ई अर्द्धचन्द्र तथा बिन्दु का समष्टिगत-रूप-तत्व सन्निहित है । यह भी स्पष्ट होता है कि कण्ठ से निकलने वाले हकार स्वर का प्रथमत: प्रादुर्भाव उर: तल पर होता है। हकार को ही हठ योगियों द्वारा सूर्य का प्रतीक माना गया है। शैव मतावलम्बी इसे ही लकुलीश अर्थात् शिव का प्रतीक मानते हैं । "हं" की व्याख्या पुरुष-रूप में योग-शास्त्रों द्वारा की गई है। बिन्दु-नाद द्वारा ही सृष्टि की रचना होना माना गया है। वर्ण की

उत्पत्ति की स्पष्ट प्रक्रिया है। प्रतीक वाद के द्वारा प्राण तथा जीव का ऐकात्म्य प्रतिपादन करना योग कीं साधना है। देवी प्रणव का उद्धार निम्नलिखित श्लोक में पुटित है।-

''लकुलीशोग्निमारन्दीरूढां वामनेत्रार्द्ध चन्द्रवान् ।
बीजं तस्याः समाख्यातं सेवितं सिद्धि काङ्क्षणः।।

षोडशी के पंच-दशाक्षरी मन्त्र में तीन माया बीज का प्रयोग किया गया है। प्रथम माया बीज मणिपूर में, द्वितीय माया-बीज हृदय में तथा तृतीय माया बीज आज्ञा तथा सहस्त्रार में पाया जाता है ।

मणिपूर में अवस्थित 'ह्रीं' बीज मणिपूर की अधि नायिका दक्षिणा काली का बीजमन्त्र है। स्वाधिष्ठान एवं अनाहत में अवस्थित ''ह्रीं'' भुवनेश्वरी का बीज मन्त्र है तथा आज्ञा तथा सहस्त्रार में अवस्थित ''ह्रीं'' षोडशी का बीज मन्त्र है। यहाँ साधका

तुर्यातीतावस्था	महाबिन्दु उन्मनी समना व्यापिका शक्ति नादान्त
तुर्यावस्था	नाद रोधिनी अर्द्धचन्द्र
सुषप्ति-	बिन्दु ।

अर्थात् आज्ञा तथा सहस्त्रार में ''ह्रीं'' का स्वरूप निम्नलिखित है :-

(1) बिन्दु - ँ अर्द्धचन्द्र- ˘, रोधिनी- ँ

समना - १।।।, उन्मनी ठँ तथा महाबिन्दु ।

तात्पर्य यह है कि हकार परावाक् (कुण्डलिनी) रूप में मूलाधार-चक्र में स्थित रहता है ,जो श्वाँसोच्छवास से स्फुरित (स्पन्दित) होकर स्वाधिष्ठान में नाद-रूप में झंकृत होता है। फिर, मणिपूर में पश्यन्ती रूप में तथा अनाहत में मध्यमा (हकार) रूप में प्रकट होता है। विशुद्ध चक्र में वही हकार बैखरी रूप में प्रकट होता है और लम्बिका-चक्र में आकर मुख-विवर के भिन्न-भिन्न स्थलों के आघात (स्पर्श) से स्वर तथा व्यञ्जन वर्णों के रूप में अभिव्यक्त होता है।

रकार - रकार अग्नि का प्रतीक है। अग्नि को वेदों तथा आगम-ग्रन्थों में रुद्र का स्वरूप माना गया है।

तन्त्रों में 'रकार' के रूपालंकार का वर्णन करते हुए कहा गया है कि-

"रकारमग्निवर्णाभं रक्त कौशेय वाससम् ।
रक्त नेत्रं रक्त द्रंष्ट्रं रसना सप्त संयुतम् ।।
चतुर्भुजं चतुर्वक्त्रं त्रिनेत्रं वह्नि दैवतम् ।
मालां शक्तिं च सलपिं चाग्निकुण्डं करैर्धृतम् ।।
मेषारूढं महादीप्तं कालाग्नि रुद्र तेजसम् ।
प्रशामकं तद् दुष्टानां विषं सुप्त प्रबोधकम्।।"

(तत्वचिन्तामणि)

अर्थात् रकार अग्नि के रँग का है। लाल रेशमी वस्त्र धारण करता है। तीन लाल आँखें हैं । इसके दाँत भी लाल हैं । इसकी सात जिह्वायें हैं । इसके चार हाथ और चार मुख हैं । इसके हाथों में क्रमशः माला, शक्ति, सलपि तथा अग्नि-पात्र हैं । इसका वाहन मेष है। शिव के छठे मुख अर्थात् कालाग्नि नामक मुख के महत् तेज से इस का मुख-मण्डल देदीप्यमान है। इसका कार्य दुष्टों का नाश करना है तथा सुप्त विषों का प्रबोधक हैं अर्थात् उन्हें अपने तेज के आकर्षण

से विनष्ट करने वाला है।

अन्य ध्यान इस प्रकार है-

"त्रिकुणाम्बुज मेषस्थो रार्णो बाहु चतुष्टयम् ।"

(तन्त्रान्तर वचन)

रकार की शक्ति के रूपालंकार का वर्णन करते हुए कहा गया है कि

"रेफाख्या रोचिका श्यामा सिंहस्था लोहिताम्बरा ।
वक्त्रा पंचस्याष्ट-करैर्धत्ते दक्ष-वाम करेणा सा ।।
खड्ग खेटांकुश गदा पाश शूल वराभयान् ।"

अर्थात् - श्याम वर्ण वाली, रक्त-वस्त्र-धारण करने वाली, सिहारूढा, पाँच मुखों वाली तथा आठ भुजाओं वाली देवी रकार की शक्ति हैं । हाथों में दायें-बायें क्रम से खड्ग, खेटक, अँकुश, गदा, पाश, शूल, वर तथा अभय मुद्रा धारण करने वाली हैं । इनका नाम रोचिका है। (य०द०वि०प०)

ऊपर कहा जा चुका हैं कि 'र' अग्नि स्वरूप है। इसका रैखिक आकार वृत्तावेष्टित त्रिकोणाकार है। वृत्त के बाह्य भाग में दस दल (कर्णिकायें) हैं, जो अग्नि की दस कलाओं के प्रतीक है। अग्नि की दस कलायें निम्नलिखित हैं -

"धूम्रार्चिरूष्मा ज्वलिनी ज्वालिनी विस्फुलिङ्गनी।
सुश्री-सुरूपा कपिला हव्य-क्रव्य वहेऽपि ।
याद्यार्णयुक्ता वह्न्याद्या दशधर्म-प्रदा कला । "

अर्थात् धूम्रार्चिष्, ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिंगिनी, सुश्री, सुरूपा, कपिला, हव्यवहा तथा क्रव्यवहा आदि ।

इन दस कलाओं की दस शक्तियाँ भी हैं, जो निम्नलिखित हैं -

"सृष्टिः ऋद्धि स्मृतिर्मेधा कान्ति लक्ष्मी धृतिः स्थिर ।।
स्थितिः सिद्धिरकारोत्थाः कला दश मीरिताः ।।"

अर्थात्, रकारात्मक अग्नि की दस कला-शक्तियाँ हैं - सृष्टि, ऋद्धि, स्मृति, मेधा, कान्ति, लक्ष्मी, धृति, स्थिरा, स्थिति तथा सिद्धि आदि।

रकार-स्वरूप अग्नि का निवास मानव-शरीर-स्थित मणिपूर-चक्र में है । इसे चिकित्सा-विज्ञान में अनुकटिका के नाम से जाना जाता है। मणिपूर की अधिष्ठात्री देवी दक्षिणा काली हैं। यथा- "मणिपूरस्याधिष्ठात्री देवी दक्षिणा कालिका ।" साथ ही आग्नेय कोण की अधिष्ठात्री देवी महालक्ष्मी है, जो अधोमुख मणिपुर की अधिष्ठात्री देवी हैं । यथा-

"महालक्ष्मीर्महादेवी त्वाग्नि कोणस्य नायिका ।"

(य०द०वि०प०) ।

मणिूपर के अधिनायक रुद्र हैं । इनके साथ निम्नलिखित शिव-स्वरूप भैरव भी मणिपूर में सूक्ष्म रूप से निवास करते हैं।

"परावेश: परमस्तत्पर: पर एव च ।
स्वेच्छाचारो चिदानन्दो योगानन्द: कुलेश्वर :।।
योगेश्वर: उमानन्द: आनन्द: पिङ्गल:-स्मृत:।
अतीतश्च रसस्वादश्चालस्य शंकरस्तथा ।।
भूतेश्वर: सामरस: श्रीकण्ठश्च करालक: ।
अनन्त: सत्यगुरु: शान्त: सिद्ध गुरुस्तथा ।।
पाठेश्वर: शिवगुरुस्तथा कुलकेश्वर: ।
समय गुरु: सेन गुरुश्चक्रस्य शिव-शक्तय: ।।

(य०द०वि०प०) ।।

मणिपूर में इन भैरवों के साथ इनकी शक्तियाँ भी निवास करती हैं, जो निम्नलिखित है। -

"चक्षुष्मति गुह्यकाली सम्वर्त्ति रत्नडाकिनी ।
चण्डेश्वरी मूल कुब्जा कामा ज्वाला हि रेवती ।।
ललिता डाकिनी गंगा शब्दा स्पर्शा च पावनी ।
प्रचण्ड डाकिनी रात्री करणा कुलिका तथा ।।
शान्तातीता प्रतिष्ठा च शान्तिर्वै कुब्ज डाकिनी ।
चक्र डाकिनी नाम्नी च समया चण्ड कौशला ।।

शक्ति-स्वरूपं कथितं निवृत्ति पद्म डाकिनी ।
चक्रस्य मणिपूरस्य शास्त्रेषु च विशेषतः ।।
(य०द०वि०प०)

मणिपूर-चक्र के पद्म-दलों का तत्व निरूपण करते हुए कहा गया है कि -

"पूर्वपञ्चमहाभूताः क्रमस्तन्मात्र संज्ञकाः ।
ज्ञान कर्मेन्द्रिये चैव तन्मात्राश्च तपो स्मृताः ।।
(य०द०वि०प०)

मणिपूर-चक्रस्थ दलों का मनः चक्रों पर पड़ने वाले क्रिया-प्रभाव का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि -

नाभौ दश दल चक्रं मणिपूरक संज्ञकम् ।
विकृत प्रत्ययौ बिम्ब चैतन्य सूक्ष्म दर्शनम् ।।
उत्कण्ठोपाधि निर्बन्ध शिक्षा व्याजा दलानि च ।
सुषुप्तिरथ तृष्णा स्यादोर्ष्या पिशुनता तथा ।।
लज्जा भयं घृण्यः मोहः कषायोऽथ विषादिता ।
क्रमात् पूर्वादि पत्रेषु स्याद् भानुभव चत् ।।"
(य०द०वि०प०)

मणिपूर-स्थित नाड़ियों के सम्बन्ध में आदि शंकराचार्य का कथन है कि-

"तारका माधवी तारा मुक्ता काली विजौलिका ।
इल्ता शुक्रेल्तिकातीतास्तारा च तारका तथा ।।
विश्वोदरी शारदा च नाडयौ वै मणिपूरके ।
स्तनयोर्नाडिकास्तिस्त्रो निःसरन्ति विनिश्चितम् ।।"
(य०द०वि०प०)

पहले का जा चुका है कि मणिपूर-चक्र की अधिनायिका दक्षिणा काली तथा अधिनायक रुद्र है - यथा-

"आद्या श्यामा च दक्षिणाम्नाय वर्त्मनि ।
संवर्त्त शाभ्भवं दिव्यं मणिपूरे व्यवस्थितम् ।।

मणिपूर-चक्र की अधिष्ठात्री शक्ति लाकिनी तथा भैरव स्वयं रुद्र हैं-

मणिपूरं लाकिनी स्यात्छक्ति रुद्रोऽथ भैरवः । ''

(य०द०वि०प०)

प्राणादि वायुओं में 'समान' वायु का निवास मणिपूर में है । इसका प्रमुख कार्य पोषण-क्रिया का सम्पादन करना है । यथा-

''समानास्तु द्वयोर्मध्ये गोक्षीर दृश समप्रभम् ।
तथा पोषणादि शरीरस्य समान कुरुते सदा ।।''

मणिपूर -चक्र के जाग्रत होने पर , जिस प्रकार के फल साधक को प्राप्त होते हैं, उसका वर्णन करते हुए कहा गया है कि-

(1) मणिपूरे जपाद् भवेत् स्वर्गस्य भाजनम् ।
(2) मणिपूरे जपाद् ध्यानाद् मन्त्र प्राण भवेत् गर्ति ।
तथा ध्येयस्य मनसि सुरता जायते ध्रुवम् ।।

उपरोक्त तथ्यों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि रकार अग्नि-स्वरूप तथा रुद्र-स्वरूप है। इसकी ध्वनि -तरंग में लाकिनी शक्तियाँ अर्थात् दक्षिणा काली की अंगीभूता शक्तियाँ तथा रुद्र की शाम्भव शक्तियाँ अन्तर्निहित है। रकार को उद्भूत करने में समान वायु क्रिया-शील होती हैं। समान वायु साँस द्वारा ली गई प्राण वायु से गति-शील होती है। इसको उदीप्त करने में अग्नि की कलायें योगदान करती हैं। जब साधक मणिपूर चक्र, जो अनुकटिका सुषुम्ना नाड़ी से निकलने वाली नाड़ियों के सहयोग से निर्मित होता है तथा जिसका आकार दस पद्म-दल-युक्त वृत्तावेष्टित त्रिकोणाकार है, पर ध्यान स्थिर कर के जप करता है तब चक्र-स्थित नाड़ियों में साँस द्वारा ली गई प्राण-वायु तथा चक्र स्थित समान वायु के सम्मिलन से प्रकम्पन्न होता है । यहाँ उल्लेख्य है कि मणिपूर-चक्र के ऊर्ध्व और अधो दो मुख हैं। अधोमुख नाड़ियाँ स्वाधिष्ठान तथा मूलाधार चक्र से जुड़ी होती है। मूलाधार-चक्र-स्थित नाड़ियाँ, जिसमें बिन्दु-रूप से ब्रह्मात्मक-शक्ति छिपी रहती हैं, समान और अपान वायु के सम्मिलन से स्फुरित होती हैं। इसके स्फुरण से बिन्दु में विस्फोट होता है। और वह नाद-रूप में स्वाधिष्ठान में झंकृत होता है। फिर , वही नाद स

मान, अपान तथा प्राण-वायु के गति-शील होने पर पश्यन्ती रूप में मणिपूर-चक्र में उद्‌भूत होता है। तब उसका स्वरूप रकारात्मक अग्नि-स्वरूप होता है। इस तरह मणिपूर की नाड़ियाँ जाग्रत होकर सुषुम्ना को प्रभावित करती हैं। अतः, मणिपूर-चक्र-स्थित नाड़ियों के स्पन्दित होने के कारण इस चक्र की अधिनायिका दक्षिणा काली तथा उसकी अंगीभूता शक्तियाँ जाग्रित हो जाती हैं। अर्थात् उपरोक्त क्रियायें 'रकार' के अनवरत उच्चारण से सम्पन्न होती हैं ।

ईकार - तन्त्र में ईकार को शक्ति-रूपा माना गया है । ऋगवेदन ईकार को प्रणव का आधार मानता है । यह तेजस्-स्वरूप पूर्वाम्नायात्मिका है। इसका प्रकाशकीय रँग लाल है। इसका स्वाद तीता है। ''गौरी कञ्चुकी-तन्त्र'' के अनुसार ईकार की ध्वनि-तरँग स्त्री-रूपा है। ''स्वरोदय'' के अनुसार इसका रैखिक आकार त्रिकोणात्मक है। ईकार के स्वरूप का वर्णन करते हुए 'तत्व-चिन्तामणि-तन्त्र' में कहा गया है कि -

''ईकारमीश्वरं विद्याज्जटामुकुट धारिणम् ।
शशांक शेखरं देवं पञ्चवक्त्र त्रिलोचनम् ।।
कपालमालिनं देवं चतुर्दोर्दण्ड धारिणम् ।
त्रिशूलं डमरूदक्षे वामे रत्नं तथा घटम् ।।
वामोरुस्था च रक्ताभा वराभयाकरा शिवा ।
शिव-शक्तया सहैएकोयं त्रिदशैरपि दुर्लभम् ।।''

अर्थात् श्वेत वर्ण-युक्त, जटा-जूट तथा बालचन्द्र धारण करने वाला, पाँच मुखों वाला, त्रिनेत्रधारी, कपाल की माला धारण करने वाला चतुर्भुज, दाहिनी भुजाओं में त्रिशूल तथा डमरू और बायीं भुजाओं में रत्न तथा कलश धारण करने वाला साथ ही वाम भाग में लाल रँग वाली, भुजाओं में वर तथा अभय-मुद्रा धारण करने वाली शक्ति को बिठाये हुए शिव-शक्ति का एकात्मक स्वरुप स्पष्ट होता है, जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ है।

अन्य तन्त्रों में ईकार के रूपालंकार का वर्णन करते हुए

कहा गया है कि -

"दश योजन दीर्घा धानाहासौ हंस वाहना ।
ई स्यात् पुष्टिप्रदा श्वेता मौक्तिकाढ्या सितानना ।।

अर्थात् मोतियों जैसी शुभ्र आभा वाली, पुष्टि प्रदान करने वाली, दस योजन तक ध्वनि-तरंग-विस्तार करने वाली, हंसारूढ़ा हाथों में वर तथा अभय मुद्रा धारण करने वाली ईकार का स्वरूप स्पष्ट होता है। इतर तन्त्र ग्रन्थों में ईकार के रूपालंकार का वर्णन करते हुए कहा गया है कि -

"ईश्वरी स्वर्ण वर्णाभां वृषारूढा सितांशुका ।
शारिकां च वरं दक्षे वामे धत्ते शुकाभयौ ।।"

उपरोक्त ध्यान के अनुसार स्वर्णाभा वाली, वृषभ (बैल) पर सवार, चतुर्भुजा दायें क्रम से हाथों में सारिका, वरमुद्रा, शुक तथा अभय-मुद्रा धारण करने वाली ईकार-रूपिणी ईश्वरी शक्ति का स्वरूप स्पष्ट होता है। विभिन्न तन्त्र-ग्रन्थों, भाष्य-ग्रन्थों, कोशों तथा व्याकरण-ग्रन्थों के अनुशीलन के पश्चात् ईकार के सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्य उभर कर सामने आते है। यथा -

(क) ईयते प्रकाश्यते सर्व जगत् अनयति ई सृष्टि शक्तिः (अर्थात् सम्पूर्ण जगत् में सर्व व्यापक रूप से प्रकाशमान सृष्टि-शक्ति ही ईकार है।)

(ख) इद़न्ति सर्वेषां नियमन्तृत्वे वर्तते इति ई स्थिति-शक्तिः- (अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को नियन्त्रित करने वाली स्थिति -शक्ति ही ईकार है।)

(ग) ई प्रकाशः आत्मैक गमनम् (अर्थात् आत्मा को प्रकाश प्रदान कर ऊर्ध्वगामी बनाने वाली शक्ति ही ईकार है।)

(घ) ईकाराणान्तु तुरीय मिथुनमर्थः , (अर्थात् ईकार तुरीय अवस्था का शिव-शक्त्यात्मक स्वरूप है।)

(ड.) ई इत्यनेन हृत्पुण्डरीक दहराकाशस्य दीप शिखा-मध्ये स्थितो बोधात्मक प्रकाश स्वरूप परमात्मात्मैव विवक्षितः-----तस्या मध्ये

परमात्मा व्यवस्थितः - (अर्थात् हृदय कमल के दहराकाश स्थित दीप-शिखा के बीच प्रकाश का बोधात्मक स्वरूप ही ईकार है, जहाँ परमात्मा और आत्मा निवास करता है----इसी के बीच परमात्मा का वास है।

(च) ईष्यते अनन्ताभीष्टत्वेन विरञ्चयादि चेतन वर्गैरीति ई निरतिशयानन्द रूपा चितिः ।

(छ) ईयते प्रकाश्यते कीर्त्तिजालं दिगन्तेषु अनेनेति ई- दिग्दिगन्त में कीर्त्ति-जाल को प्रकाशित करने वाली ईकार-शक्ति ही है।)

पूर्वाम्नायात्मिका होने के कारण ईकार का निवास-स्थल स्वाधिष्ठान चक्र है। स्वाधिष्ठान की अधिनायिका भुवनेश्वरी, उन्मनी तथा पूर्णेश्वरी है तथा अधिनायक विष्णु हैं। स्वाधिष्ठान को ही सृष्टि-चक्र के नाम से जाना जाता है। सृष्टि-चक्र की निम्नलिखित शक्तियाँ हैं -

(1) आधा काली , 2. श्यामा काली, 3. दक्षिणा काली, 4. एक जटा महोग्रा (छिन्नमस्ता), 6. तारिणी, 7. बाला त्रिपुरा, बाला त्रिपुर सुन्दरी, 8. षडक्षरी हादि महा त्रिपुर सुन्दरी, 9. सिद्धि लक्ष्मी, 10. काम-कला काली , 11. उंन्मनी, 12. भुवनेश्वरी, 13. समया कुब्जिका, 14. वज्र कुब्जिका, 15. पंचाक्षरी कादि महा त्रिपुर सुन्दरी, 16. भद्र काली, 17. सरस्वती , 18. महासरस्वती, 19. चामुण्डा, 20. उग्रचण्डिका, 21. चर्तुर्भुजा सादि महा त्रिपुर सुन्दरी । अर्थात् उपरोक्त समस्त विद्यायें ईकार की ध्वनि-तरंग में सन्निहित हैं। स्वाधिष्ठान की समया जया दुर्गा हैं । इस तरह 'ई' स्वयं परम ब्रह्म-रूपिणी क्रियात्मिका शक्ति है।

मकार- अब प्रस्तुत है देवी प्रणव 'ह्रीं' में प्रयुक्त अन्तिम वर्ण मकार के रूपालंकार, तत्व, प्रकाशकीय रँग, शक्ति-तत्व के साथ-साथ शरीर में उसके निवास-स्थल तथा इसकी ध्वनि-तरंग-जनित आध्यात्मिक ऊर्जा का अनुसन्धान से प्राप्त तथ्य निम्नलिखित है।

आगम-ग्रन्थों में मकार को परम प्रकाशात्मक सूर्य का

प्रतीक माना गया है। यह आकाश तत्वात्मक है। यह उत्तर आम्नायात्मक है। 'स्वरोदय' के अनुसार इसका यान्त्रिक आकार बैन्द्वात्मक है। मकार का ध्यान 'तत्व-चिन्ता-मणि-तन्त्र' के अनुसार निम्नलिखित है-

(क) मकार वृषारूढं भस्मोद्धूलित धूसरम् ।
नील कण्ठञ्च जटिलं सर्व नीतिकरं शिवम् ।।
पञ्चवक्त्रं दश भुजं त्रिंशार्द्ध पिङ्गल लोचनम् ।
खड्गाङ्कुश त्रिशूलानि पाशं डमरूकं तथा ।।
कमण्डलु पद्मुष्ट्यभयं पात्रं दधते करैः ।"

नन्दी पर सवार, भस्मावेष्टित शरीर, नील कण्ठ और जटाजूटधारी, सभी नीतियों के निर्माता, पाँच मुखों वाला, दस भुजाओं वाला, पन्द्रह पीले नेत्रों वाला, तथा हाथों में खड्ग अँकुश त्रिशूल, पाश, डमरू, कमण्डल, पद्म उष्टी ,अभय मुद्रा तथा पात्र धारण करने वाला परम शिव-स्वरूप मकार का स्वरूप है।

(ख) सामवेदस्तथा द्यौश्चाहवनीयस्तथैव च ।
ईश्वरः परमो देव मकारः परिकीर्तितः।।
सूर्य मण्डलाभा भाति ह्यकारश्चन्द्र मध्यगतः।"

(ग) "मंडितो मुण्डलाभिः शशि-खण्डविराजिता ।।
व्याप्तः चतुर्भुजो धूम्रो मार्णः स्यात् मृग-संस्थितः ।।
(तन्त्रान्तर वचन)

मकार के स्त्री-रूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि -
"यो विद्या श्यामला देवी हयस्था स्फटिक प्रभा ।
वीणा-वादन-तत्वज्ञा वराभय करा शुभा ।"

अर्थात् अश्व पर आरूढ रहने वाली, स्फटिक- सदृश श्वेत रँग वाली, वीणा-वादन-कला में निपुण तथा हाथों में वर तथा अभय-मुद्रा धारण करने वाली श्यामला देवी मकार के स्त्री-रूप का स्वरूप है।

मकार के सम्बन्ध में शास्त्रानुशीलन के पश्चात् निम्नलिखित तथ्य उभर कर सामने आते हैं -

(क) मानव-शरीर में मकार का निवास-स्थल सहस्त्रार में है, जहाँ याकिनी शक्ति के साथ कामेश निवास करते है। यथा-

"मकारश्चाग्नि संकाशो विधूमो विद्युत्ता सम।
सहस्त्रारे याकिनी स्यात् कामेशश्चैव भैरवः ।।"

(य०द०पि०प०)

(ख) मकार में निम्नलिखित मातृ-शक्तियाँ अन्तर्निहित हैं । यथा-

प्रतीचीस्था तु मातंगी मोहिनी श्री सरस्वती ।
दक्षिणस्था तथा तारा भद्रकाली हि नैऋतेः ।।
बगला दक्षिणस्था महालक्ष्मी मता कमला ।
भवत्याग्नि कोणस्था महालक्ष्मीश्च सर्वथा ।।
पूर्वस्या सिद्धिलक्ष्मीश्च महाकाली तथोत्तरा ।
प्राच्याचेशान कोणस्था महा काली दशानना ।।
प्रतीच्याश्चण्ड मातंगी छिन्नमस्ता तथोत्तरा ।
वायव्ये च समाराध्या महा पूर्वा सरस्वती ।।
त्रिशक्ति-युक्त चामुण्डा सम्भूये मा भवन्ति वै ।"

अर्थात् महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वती अपनी अंगीभूत तेजसात्मकता के साथ एकीकृत होकर चामुण्डा-रूप में सहस्त्रार में निवास करती हैं। यह देवी का सर्वाम्नायात्मक रूप है, जो सगुण ब्रह्म का चरम स्वरूप है। यहाँ से निर्गुण, अलख, अनादि शाम्भव क्षेत्र प्रारम्भ होता है, जहाँ सदाशिव शुद्धात्मा, सत्यात्मा, परमानन्द के रूप में विराजमान रहते हैं। यही परमानन्द-स्वरूप सदाशिव मोक्ष के दाता हैं। उपरोक्त तथ्यों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि अनाहत-चक्र से सहस्त्रार तक जो भी चक्र है, उन चक्रों में स्थित समस्त पर शिव-तत्व तथा परा-शक्ति-तत्व मकार में अन्तर्निहित है। जब अनाहत -स्थित नाड़ियों में स्फुरण होता है तब जागतिक विद्याओं की सीमा समाप्त हो जाती है। साधक चैतन्य तथा शुद्ध रूप को प्राप्त कर लेता है और अपने मूल की ओर ऊर्ध्व-गमन करता है । इस यात्रा-क्रम में विशुद्ध-चक्र, लम्बिका-चक्र, तथा आज्ञा-चक्र के

पड़ावों पर स्थित शुद्ध विद्याओं का उसे साक्षात्कार होता है। उसके बाद वह परम गोपनीय रूप से मस्तिष्क-भाग में स्थित चक्रों का भेदन करता हुआ परम ब्रह्म में विलीन हो जाता है।

इस प्रकार देवी प्रणव 'ह्रीम्' बीज में मूलाधार से लेकर सहस्त्रार तक के चक्रों में निवास करने बाली शक्तियों का प्रकाश गर्भित है। 'ह्रीम्' बीज की ध्वनि-तरंग सर्व आम्नायात्मक, सर्व मन्त्रमय, सर्व यन्त्रमय, सर्व चेतना-स्वरूप, सृष्टि-स्थिति -सँहार-स्वरूप तथा परम-शिव -शिवात्मक-स्वरूप को उजागर करने वाली है। इसीलिए, तो तन्त्रों में कहा गया है कि - ''ह्रीम् इति सर्व शक्ति सर्वाधिष्ठान् ब्रह्म-बोधकम् ।''

तत्व-ज्ञान है साधना का सोपान

मानव-शरीर की रचना में 36 तत्वों का योगदान है। इस बात को समझे बिना साधक को सिद्धि-पथ पर अग्रसर होना अत्यन्त ही कठिन है। सामान्य तौर पर मनुष्य अपनी काया तथा आँखों से दिख पड़ने वाली प्रकृति-तत्व को शाश्वत मान बैठता है। इसीलिए, वह प्रकृति-जनित, माया-जनित सुखदायक-तत्वों को अपने अधीन करने के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक कर देता है। और आजीवन प्रेय-मार्ग पर चलने में ही सारी ताकत, सारी बुद्धि लगा देता है। जिसका परिणाम होता है कि कायान्तरण के समय (मृत्यु के समय) वह विल्कुल खाली हाथ रहता है। उसके पास पाश्चाताप के आँसू बहाने के अतिरिक्त कोई दूसरा चारा नहीं होता है।

यहाँ ध्यातव्य है कि जिस प्रकार मानव-शरीर की भौतिक संरचना में मज्जा, अस्थि, रक्त इत्यादि का योगदान होता है, ठीक उसी प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से इसकी संरचना में सन्निविष्ट मूल प्रकृति एवं उसके 24 तत्वों का योगदान होता है। ये 24 आत्म-तत्व निम्नलिखित हैं। यथा-

"प्रकृतिर्बुद्धियहंकारो मनो ज्ञानेन्द्रियाण्यथ।
कर्मेन्द्रियाणि तन्मात्राः पञ्चभूतानि देशिकाः।। "

अर्थात् (1) प्रंकृति (2) बुद्धि (3) अहंकार(4)मन तथा (5) पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ+पाँच कर्मेन्द्रियाँ + पाँच महाभूत =20-ये कुल 24 आत्म-तत्व हैं। इन्हें अशुद्ध तत्व भी कहा जाता है। इन्हें अशुद्ध इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह अचिद् चक्र से चिद्-संसार का अनुभव करता है।

माया- 24 आत्म-तत्वों के बाद 25 वाँ सोपान है माया का । माया छलनामयी है। वह जीव को ठगती है। भूतादि अहंकार से निकलने वाले आणव-मल द्वारा, जो अहंकार की शक्ति है, आवृत्त होकर जीव अपने सच्चे स्वरूप को नहीं समझ पाता है। वह यह भी नहीं समझ

पाता है कि वह शुद्ध आत्मा है । अर्थात् उसके प्रभाव से जीव यह समझता है कि प्रकृति-तत्व से उत्पन्न-तत्व वास्तविक ही है और वह भौतिक तथा सूक्ष्म शरीरों को संतुष्ट करने के प्रयासों में लीन हो जाता है। इसी भ्रामक शक्ति के कारण यह माया कहलाती है।

पुरुष-तत्व-भौतिक पाशों में आवद्ध कर मानव-को दिग्भ्रमित करने वाला 26 वाँ सोपान है-पुरुष-तत्व। आगे वर्णित पाँच विद्या-तत्वों से संयुक्त जीव ही रुचि, अरुचि वाला बनकर पुरुष-तत्व कहलाता है।

विद्या-तत्व- विद्या-तत्व 27 वाँ सोपान है। इसके द्वारा ही जीव में सांसारिक ज्ञान, सीमित ज्ञान उत्पन्न होता है। उसी के द्वारा जीव-ज्ञान-सम्पन्न बनता है। इसी विद्या-तत्व से राग-तत्व की उत्पत्ति होती है ।

राग-तत्व- राग-तत्व 28 वाँ सोपान है। यही राग-तत्व जीव में इच्छा उत्पन्न करता है। जीव वस्तुत: आत्मा (शुद्धत्मा) का ही प्रतिबिम्ब है, उससे अभिन्न है तथा इच्छा-ज्ञान-क्रिया से रहित है। उसका स्वरूप शुद्धात्मा के सदृश ही शुद्ध ज्ञानात्मक है। केवल उसी राग-तत्व के द्वारा व्यक्ति इच्छा-शक्ति-सम्पन्न बन जाता है।

कला-तत्व-29 वाँ सोपान है कला-तत्व । इसी कला-तत्व के द्वारा क्रिया-शक्ति उत्पन्न होती है। इसी कला-तत्व से विद्या-तत्व तथा मूल प्रकृति का उद्‌भव होता है।

नियति-तत्व-यह 30 वाँ सोपान है। इसी नियति-तत्व से व्यक्ति अपने द्वारा किये गये कर्मों का फल भोगता है।

काल-तत्व-काल-तत्व या समय-तत्व 31 वाँ सोपान है। इस तत्व के द्वारा व्यक्ति अपने कर्मों का फल एक साथ न भोग कर क्रमशः एक के बाद एक कर्म का फल समयानुसार भोग करता है। यह भोग काल वर्तमान जीवन में भी सम्भव हो सकता है या कायान्तरण (मृत्यु) के पश्चात् प्राप्त जीवन में भी ।

यहाँ उल्लेख्य है कि कला, नियति एवं काल ये तीनों अशुद्ध माया के परिणाम है। अशुद्ध माया से ही इनका उद्‌भव होता

पाता है कि वह शुद्ध आत्मा है । अर्थात् उसके प्रभाव से जीव यह समझता है कि प्रकृति-तत्व से उत्पन्न-तत्व वास्तविक ही है और वह भौतिक तथा सूक्ष्म शरीरों को संतुष्ट करने के प्रयासों में लीन हो जाता है। इसी भ्रामक शक्ति के कारण यह माया कहलाती है।

पुरुष-तत्व-भौतिक पाशों में आवद्ध कर मानव-को दिग्भ्रमित करने वाला 26 वाँ सोपान है-पुरुष-तत्व। आगे वर्णित पाँच विद्या-तत्वों से संयुक्त जीव ही रुचि, अरुचि वाला बनकर पुरुष-तत्व कहलाता है।

विद्या-तत्व- विद्या-तत्व 27 वाँ सोपान है। इसके द्वारा ही जीव में सांसारिक ज्ञान, सीमित ज्ञान उत्पन्न होता है। उसी के द्वारा जीव-ज्ञान-सम्पन्न बनता है। इसी विद्या-तत्व से राग-तत्व की उत्पत्ति होती है ।

राग-तत्व- राग-तत्व 28 वाँ सोपान है। यही राग-तत्व जीव में इच्छा उत्पन्न करता है। जीव वस्तुत: आत्मा (शुद्धत्मा) का ही प्रतिबिम्ब है, उससे अभिन्न है तथा इच्छा-ज्ञान-क्रिया से रहित है। उसका स्वरूप शुद्धात्मा के सदृश ही शुद्ध ज्ञानात्मक है। केवल उसी राग-तत्व के द्वारा व्यक्ति इच्छा-शक्ति-सम्पन्न बन जाता है।

कला-तत्व-29 वाँ सोपान है कला-तत्व । इसी कला-तत्व के द्वारा क्रिया-शक्ति उत्पन्न होती है। इसी कला-तत्व से विद्या-तत्व तथा मूल प्रकृति का उद्‌भव होता है।

नियति-तत्व-यह 30 वाँ सोपान है। इसी नियति-तत्व से व्यक्ति अपने द्वारा किये गये कर्मों का फल भोगता है।

काल-तत्व-काल-तत्व या समय-तत्व 31 वाँ सोपान है। इस तत्व के द्वारा व्यक्ति अपने कर्मों का फल एक साथ न भोग कर क्रमश: एक के बाद एक कर्म का फल समयानुसार भोग करता है। यह भोग काल वर्त्तमान जीवन में भी सम्भव हो सकता है या कायान्तरण (मृत्यु) के पश्चात् प्राप्त जीवन में भी ।

यहाँ उल्लेख्य है कि कला, नियति एवं काल ये तीनों अशुद्ध माया के परिणाम है। अशुद्ध माया से ही इनका उद्‌भव होता

है। इसीलिए, इसका शेषांश माया-तत्व को प्रकट करता है,जो पुरुष को मोहित करता है।

उपरोक्त सात तत्व, यथा- (1) काल-तत्व, (2) नियति-तत्व, (3) कला-तत्व, (4) विद्या-तत्व, (5) राग-तत्व, (6) पुरुष-तत्व, एवं (7) माया को 'विद्या-तत्व,' 'मिश्र-तत्व,' अशुद्ध माया-तत्व' तथा 'अन्त:करण' के नामों से जाना जाता है।

काल,नियति,कला,विद्या एवं राग ये पाँचों तत्व 'पंच कञ्चुकी' के नाम से जाने जाते हैं।

इसी तरह पंच-महाभूत,पंच तन्मात्रायें, पंच ज्ञानेन्द्रियाँ,पंच कर्मेन्द्रियाँ,अन्त:करण, मूल-प्रकृति, माया तथा पंच कञ्चुकी- ये आठ 'पुर्यष्टक,' 'परादेह' तथा 'सूक्ष्म देह' के नामों से जाने जाते हैं। पंचभूतों से बना स्थूल शरीर आँखों से देखा जा सकता है। उपर्युक्त सभी अशुद्ध माया है। और 'सकल श्रेणी' के जीवों का बोधक हैं। अशुद्ध माया ही उपर्युक्त 36 तत्वों का उत्स है। इन्हें 'अधो माया' 'माया' या मोहिनी भी कहा जाता है। -कबीर दास ने उसी माया के सम्बन्ध में कहा है कि

"माया महाठगिनी मैं जानी ।"

शुद्ध-तत्व या ईश्वर-तत्व--- 32 से 36 वाँ सोपान तक शुद्ध-तत्व है। ईश्वर, शिव, विष्णु आदि ललिता ब्रह्म के प्रतिबिम्ब ही हैं। उनका स्वरूप मात्र ज्ञान ही है और वे अभिन्न हैं। वे अपनी ज्ञान-शक्ति शुद्ध विद्या से प्राप्त करते हैं और उसी से सम्बद्ध होकर सर्वेश होते हैं। इस तत्व को **'स्थूल-ईश्वर'तत्व'**, **'स्थूल-अधिकार-तत्व,'** **'स्थूल-प्रकृति-तत्व'** और **'स्थूल-सकल-तत्व'** भी कहते हैं।

ईश्वर-तत्व---ईश्वर-तत्व 33 वाँ सोपान है। इसी ईश्वर-तत्व से सम्बद्ध होकर ब्रह्मा, विष्णु,तथा ईश्वर आदि, जो ललिता ब्रह्म के प्रतिबिम्ब हैं, अपनी क्रिया-शक्ति को प्राप्त कर सर्वज्ञ-सक्षम और समर्थ होते हैं। इस तत्व को **'सूक्ष्म अधिकार-तत्व'**,

सूक्ष्म-प्रकृति-तत्व', **तथा 'सूक्ष्म सकल-तत्व**' कहते हैं।

सदाशिव-तत्व-सदाशिव-तत्व से सम्बद्ध होकर ब्रह्मा, विष्णु,तथा ईश्वर इच्छा-शक्ति-सम्पन्न होते हैं। इसे **'उन्मुक्त-तत्व', 'योग-तत्व' तथा 'सकल-निष्कल-तत्व'** कहते हैं।

शक्ति-तत्व-उसी शक्ति-तत्व से सम्बद्ध होकर ब्रह्मा-विष्णु-ईश्वर आदि अनुग्रह-पूर्ण होकर सबके प्रति कृपालु होते हैं । इसे **'स्थूल-लय-तत्व', स्थूल-निष्कल-तत्व**' तथा **'बिन्दु-तत्व'** की संज्ञा दी जाती है। यह 35 वाँ सोपान है।

शिव-तत्व-शिव-तत्व से सम्बद्ध होकर ही ब्रह्मा, विष्णु-आदि ईश्वर आनन्दमय होते हैं। इसे **'सूक्ष्म-लय-तत्व' तथा 'सूक्ष्म-निष्कल-तत्व'** कहते हैं।

उपर्युक्त पाँच तत्व अर्थात् शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर तथा शुद्ध विद्या, शुद्ध माया से उत्पन्न होते हैं। इन्हें शुद्ध-तत्व,प्रेरक तत्व और शिव-तत्व के नाम से जाना जाता है। जिस शुद्ध माया से इनका उद्भव होता है, उसे 'महामाया' , 'कुडिला,' कुण्डलिनी तथा बिन्दु आदि नामों से जाना जाता है। जीव इन्हीं 36 तत्वों से बँधा होता है। जीवों को बन्धन से मुक्त कराने में पाँच शिव-तत्वों की असफलता के कारण ही उन्हें बन्धन कारक-तत्व कहा जाता है। भक्ति, श्रद्धा, विश्वास, गुरु तथा मन्त्र-जप की सहायता से जो इन 36 तत्वों का शोधन कर लेता है, वही इन तत्वों के बन्धन से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करता है ।
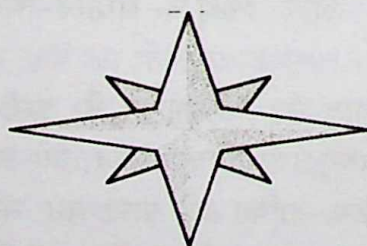
साधना-काल के आवश्यक निर्देश

मन्त्रानुष्ठान या पुरश्चरण काल में साधक को अपने कर्त्तव्यों के प्रति विशेष सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है। निष्ठा,भक्ति,श्रद्धा तथा अनुशासन के साथ कर्मों को सम्पादित करने से ही सिद्धि-लाभ हस्तगत होता है। साधना-काल में कुछ कर्मों को वर्जित-कर्म माना गया है तो कुछ को करणीय । यहाँ इस सम्बन्ध में आवश्यक निर्देश निम्नलिखित हैं -

1. विद्या से सम्बन्धित किसी भी मन्त्र के अनुष्ठान के लिए किसी विशेष ऋतु,मास-तिथि या दिन की अपेक्षा नहीं होती है। किसी भी मास में, किसी भी तिथि से मन्त्र का अनुष्ठान प्रारम्भ किया जा सकता है। फिर भी, भुवनेश्वरी का पुरश्चरण प्रारम्भ करने के लिए, दोनों पक्षों की अष्टमी तिथि ग्राह्य है। यदि उक्त तिथि को गुरु-पुष्य का योग हो अथवा सिद्ध-योग हो तो प्रारम्भ शुभद होता है।

2. शुद्ध सात्विक एवं एकान्त स्थान में साधना प्रारम्भ करना चाहिए। जैसे- नदी का तट, पर्वत की गुफा या चोटी, सिद्ध-पीठ, शिव-मन्दिर या अपने घर की एकान्त कोठरी।

3. देवी-पूजन या मन्त्र-जप का समय सुनिश्चित होना चाहिए। प्रातः काल में 4 बजे से 6.30 बजे तक अथवा रात्रि में 10.30 बजे से 2 बजे तक समय सिद्धि-लाभ के लिए सर्वोत्तम है।

4. एक आसन में, चाहे वह सिद्धासन, पद्मासन या फिर, सुखासन ही क्यों न हो ?

5. प्रात:काल में मन्त्रानुष्ठान करने वाले साधक को रात्रि-काल में भी पंचोपचार पूजन और पाँच माला इष्ट मन्त्र का जप करना चाहिए। इसी तरह रात्रि-काल में जपानुष्ठान करने वाले को प्रात:काल में भी इष्ट का पूजन तथा मन्त्र-जप करना चाहिए।

6. अनुष्ठान-काल में भोजन की शुचिता पर भी पर्याप्त ध्यान देना चाहिए और प्रयास करना चाहिये कि अनुष्ठान-काल में दूसरे का

दिया हुआ भोजन न करें ।

7. भोजन पहले इष्ट-देवता को भोग लगाकर ही प्रसाद-स्वरूप ग्रहण करें।

8. दोनों समय स्नानादि कर्मों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए । मल-त्याग के पश्चात् स्नानादि से शुद्ध होकर ही जप-अनुष्ठान प्रारम्भ करें। मूत्र-त्याग के बाद हाथ-पाँव धोकर मन्त्र-शुद्ध होकर जपानुष्ठान करें।

9. मौन-व्रत का पालन करें। आवश्यक कार्य-वश बोलना भी पड़े तो सत्यता और कम से कम वाक्यों से .ही काम चलावें।

10. सांसारिक कार्यों से पूर्णतया विरत रहें अथवा कार्यों के सम्पादन में झूठ-छल-प्रपंच आदि का सहारा न लें ।

11. अनुष्ठान की बात को पूर्णतया गोपनीय रखें।

12. मन्त्र-जप-काल में मौन धारण करना चाहिए तथा उठकर चलना-फिरना नहीं चाहिए।

13. मन्त्र-जप की संख्या प्रतिदिन सुनिश्चित होनी चाहिये ।

14. सम्भव हो तो प्रतिदिन हवन करना चाहिए अथवा अन्तिम दिन पूरे विधि-विधान के साथ हवन-तर्पण तथा मार्जन करना चाहिए।

15. इष्ट की ओर सिर करके भूमि पर शयन करना चाहिए।

16. पूर्णरूप से अर्थात् कायिक, वाचिक तथा मानसिक तौर पर ब्रह्मचर्य का पालन दृढ़ता के साथ करना चाहिए।

17. अनुष्ठान-काल में यदि मरण या जनन-शौच हो जाय तो भी अनुष्ठान-कार्य नहीं छोड़ना चाहिए।

18. उबटन, तेल,इत्र, पुष्प तथा चमड़े के जूत्ता आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

19. आसन या शय्या पर अन्य किसी को नहीं बैठने देना चाहिए।

20. किसी के भी स्पर्श से पूर्णतया बचना चाहिए।

21. एक वस्त्र या अनेक वस्त्र पहनकर जप नहीं करना चाहिए। अर्थात् बिना सिला हुआ वस्त्र पहन कर और एक वस्त्र से अपाद-मस्तक

ढँक कर जप करें । विल्कुल नग्नावस्था में जप करना सर्वश्रेष्ठ होता है।

22. जप समाप्त होने पर किया गया जप देवी के बायें हाथ में समर्पित कर देना चाहिए।

23. अनुष्ठान के लिए ज्येष्ठ एवं पौष मास वर्जित है।

24. गुरु-सेवा या ध्यान में दृढ़-निष्ठ होना चाहिए।

25. मन्त्र-का जप न तो जल्दी-जल्दी करना चाहिए और न धीमी गति से ही । मन्त्र के वर्णों की ह्रस्व, दीर्घ या अर्द्ध मात्रा आदि के अनुसार ही ध्वनि का उच्चारण करना चाहिए।

आसन-शुद्धि, दिग्बन्धन एवं भूत-शुद्धि

ॐ गं गुरवे नमः

ॐ गं गणपतये नमः

ह्रीं भुवनेश्वर्यै नमः

गुरु स्तोत्रं-

आब्रह्मलोकादाशेषादालोकालोकपर्वतात् ।
ये वसन्ति द्विजाः देवास्तेभ्यो नित्यं नमाम्यहम्
ॐ नमो ब्रह्मादिभ्यो ब्रह्म विद्या सम्प्रदाय कर्त्तृभ्यो
वंशऋषिर्भ्यो नमो गुरुभ्यो सर्वोपप्लव रहित
प्रज्ञानघन प्रत्यगर्थो ब्रह्माहमस्मि सोऽहमस्मि
ब्रह्माहमस्मि ।
ॐ गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरु र्साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः ।।
ॐ दिव्यौघेभ्यो नमः , ॐ सिद्धौघेभ्यो नमः ।
ॐ मानवौघेभ्यो नमः

तत्व आचमन

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं आत्म तत्वं शोधयामि,
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं विद्यात्त्वं शोधयामि,
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं शिवतत्वं शोधयामि,

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सर्वतत्वं शोधयामि ।

घंटा-पूजन

हे घण्टे सुस्वरे पीठे घण्टा ध्वनिविभूतिषते ।
वादयन्ति परानन्दे घण्टादेवं प्रपूजयेत् ।।
आगमनार्थं तु देवानां, गमनार्थं तु रक्षसाम् ।
कुर्यात् घण्टारवं तत्र देवताह्वानलाञ्छनम् ।।

आसन-शुद्धि---

स्नानादि कर्मों से निवृत्त होकर साधक को पूर्वाभिमुख होकर, जहाँ पर आसन बिछाकर बैठना हो, उस भूमि पर एक त्रिकोण सेन्दूर या रोली या रक्त-चन्दन से निर्माण करे और त्रिकोण के बाहर एक अष्ट दलो से युक्त वृत्त बनाकर त्रिकोण के मध्य में पूजन करें । यथा- हाथ में जल लेकर नीचे लिखे विनियोग-मन्त्र को पढ़े और बाद में हाथ का जल त्रिकोण के मध्य गिरा देवें।

मन्त्र- ॐ अस्य श्री आसन महा मन्त्रस्य मेरु-पृष्ठः ऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता आसने विनियोगः ।''-हाथ का जल त्रिकोण के मध्य में छोड़ दें । पुनः, हाथ में जल-अक्षत् लेकर निम्नलिखित मन्त्र पढ़ें -

ॐ पृथ्वीत्वया धृतालोका देवित्वं विष्णुनाधृता।
त्वं च धारय मान्नित्यं पवित्रं कुरु चासनम् ।।

-जल -अक्षत् त्रिकोण के बीच अर्पित करें । पुनः-पुष्पाक्षत लेकर क्रमशः नीचे लिखे मन्त्रों से आसान की पूजा करें-

ॐ पृथ्व्यै नमः,
ॐ योगासनाय नमः,
ॐ वीरासनाय नमः,
ॐ कमलासनाय नमः,
ॐ ह्रीं आधार शक्तयै नमः,
ॐ विमलासनाय नमः,
अब पूजित स्थल पर आसन बिछा दें ।

आसन-कुशासन, रेशमी वस्त्र, कम्बल या मृग-चर्म का होना चाहिए। उसके बाद अपने दाहिनी ओर शुद्ध जल अथवा गंगाजल पूरित पात्र में गन्ध-पुष्प-अक्षत् डालकर अँकुश मुद्रा द्वारा तीर्थों का आह्वान नीचे लिखे मन्त्र से करें-

ॐ गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वती ।
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ।।
सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि नदा ह्रदाः ।
आयान्तु देवी पूजार्थं दुरितक्षयकारिकाः ।।

सात बार 'वँ' बीज से अभिमन्त्रित करे तथा **ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं ह्वीं ह्वी ह्वू ह्वैं ह्वौं ह्वः** मन्त्र पढ़ते हुए जल में सूर्यादि देवताओं तथा तीर्थों का आह्वान करें ।

स्थापित पात्र में से हाथ में जल लेकर नीचे लिखे मन्त्र को पढ़कर साधक अपने शरीर पर छिड़क लें-

ॐ अपवित्रः पवित्रोवा सर्वावस्थाङ्गतोपिवा ।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षः सवाह्याभ्यन्तरःशुचिः ।।

शिखा-बन्धन- ॐ ह्रीं वज्रिणी शिखरिणी शिखा महाप्रतिसरे रक्ष-रक्ष हूम् फट् स्वाहा मन्त्र को पढ़कर शिखा-बन्धन करें।

विघ्नोत्सारण- बायें हाथ में पीला सरसो लेकर दाहिने हाथ से ढँककर नीचे लिखे मन्त्र को पढ़ें तथा दाहिने हाथ में थोड़ा-थोड़ा सरसों लेकर सभी दिशाओं में विखरा दें । पुनः, नाराच मुद्रा बनाकर सभी दिशाओं में क्रोध दृष्टि से देखते हुए नीचे लिखे मन्त्र को पढ़ें-

ह्रीं सर्वानिविघ्नानि उत्सारय उत्सारय
रक्ष-रक्ष हूम् फट् स्वाहा''।

दीप-स्थापन-साधक सामने में त्रिकोण बनाकर उस पर दीप को नीचे लिखे मन्त्र से स्थापित करें -

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं दीप देवि महादेवि शुभं भवतु मे सदा ।
यावत् पूजा समाप्तिः स्यात्तावत् सुस्थिरा ।।

भूत-शुद्धि

भूत-शुद्धि का तात्पर्य है-शरीर-स्थित पापों का शमन करना। व्यावहारिक स्तर पर कहा जा सकता है कि स्व-शरीर-स्थित पाप-पुरुष को जलाकर भस्म कर पंच-तत्वों से पुन: देव-मय शरीर-बनाने की चिन्तन-अनुचिन्तन-क्रिया ही भूत-शुद्धि की क्रिया कही जाती है। अत:, साधक को भूत-शुद्धि की क्रिया निम्नलिखित विधि द्वारा सम्पन्न करनी चाहिए। अर्थात् साधक को देव-स्वरूप होकर ही साधना-सम्पन्न करना चाहिए।

(1) श्वाँस की वायु को बायें नासिका-छिद्र अर्थात् पिंगला द्वारा खींचकर नीचे लिखे मन्त्र द्वारा मूलाधार-चक्र-स्थित जीवात्मा को सुषुम्ना-मार्ग-द्वारा ब्रह्म-रन्ध्र तक लाकर परम शिव के साथ एकीकृत करने की भावना करनी चाहिए तथा दाहिने-नासिका-छिद्र अर्थात् इडा के द्वारा वायु को छोड़ना चाहिए।

मन्त्र-''मूल श्रृँगाटकात् जीव-शिवं परम शिवे योजयामि स्वाहा।''

(2) 'यं' बीज को दाहिने नासिका-छिद्र से साँस लेते समय 16 बार कुम्भक में अर्थात् भीतर प्राण-वायु को रोक कर 64 बार बोल कर निम्नलिखित मन्त्र को पढ़ें तथा पुन: 'यं' बीज को 32 बार बोलते हुए बायें नासिका-छिद्र से प्राण-वायु को बाहर निकालें।

मन्त्र-''संकोच शरीरं शोषय-शोषय स्वाहा ।''

(3) 'रँ' बीज को बायें नासिका-छिद्र से साँस लेते हुए 16 बार तथा भीतर में प्राण-वायु को रोक कर 'रँ' बीज को 64 बार बोलकर नीचे लिखे मन्त्र को पढ़ें तथा पुन: 'रँ' बीज को 32 बार बोलते हुए प्राण-वायु को दाहिने नासिका-छिद्र द्वारा बाहर निकालें ।

मन्त्र-''संकोच शरीरं दह-दह पच-पच स्वाहा।''

(4) 'टं' बीज को 16 बार बोलते हुए बायें नासिका-छिद्र द्वारा साँस लें भीतर में रोककर 64 बार बोलें फिर 'टं' बीज को 32 बार उच्चारण करते हुए प्राण-वायु को दाहिने नासिका छिद्र द्वारा बाहर

निकालें ।

(5) फिर 'वँ' बीज का 16 बार उच्चारण करते हुए दाहिने नासिका छिद्र द्वारा साँस ग्रहण करें, भीतर में साँस को रोक कर 64 बार 'वँ' बीज को बोलते हुए नीचे लिखे मन्त्र को पढ़ें तथा फिर 'वँ' बीज को 32 बार बोलते हुए साँस को बायें नासिका छिद्र द्वारा बाहर निकालें।

मन्त्र-"परम शिवामृतं वर्षय स्वाहा।"

(6) अब दाहिने नासिका-छिद्र से साँस लेते हुए 'लँ' बीज का 16 बार जप करना चाहिए । भीतर में वायु को रोक कर 64 बार नीचे लिखे मन्त्र का जाप करते हुए नासिका छिद्र से साँस को छोड़ते हुए 32 बार जप करें ।

मन्त्र-शाम्भव शरीरं उत्पादयमुत्पादय स्वाहा।"

(7) पुनः, माया बीज अर्थात् 'ह्रीं' बीज से पूर्ववत् तीन बार प्राणायाम करना चाहिए। और कुम्भक अवस्था में अर्थात् वायु को भीतर रोककर नीचे लिखे मन्त्र का जप करना चाहिए।

मन्त्र- 'नित्य शुद्धं बुद्धं मुक्तं देवताराधना-योग्यं
शिव-शक्ति-मय शरीरं कुरु-कुरु स्वाहा॥

(8) 'हंसः सोऽहम्' बीज 16 बार जपते हुए दाहिने नासिका छिद्र से साँस लेकर साँस को भीतर रोक कर 64 बार जप करने के बाद नीचे लिखे मन्त्र का जप करना चाहिए तथा 32 बार जपते हुए बायें नासिका-छिद्र से साँस छोड़ना चाहिए।

मन्त्र- 'ॐ अवतर शिव पदाद् जीव सुषुम्ना-पथेन प्रविश मूल श्रृँगाटकमुल्लसोल्लस ज्वल-ज्वल प्रज्ज्वल हंसः सोऽहम् स्वाहा।'

आत्म-प्राण-प्रतिष्ठा

अपनी छाती पर दाहिने हाथ की हथेली रखकर नीचे लिखे-प्राण-प्रतिष्ठा-मन्त्र का 5 बार जप करें-

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं हौं हंसः मम प्राणाः इह प्राणाः।

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं हौं हंसः मम जीव इह स्थितः।
ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं हौं हंसः मम सर्वेन्द्रियाणि वाङ् मनः त्वक् चक्षुः श्रोत्र घ्राण-प्राण पादादि अंगानि इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।'' (पाँच बार पढ़ें)

(9) अब मूल मन्त्र अर्थात् 'ह्रीं' बीज से बायें नासिका-छिद्र द्वारा साँस लेते हुए, साँस भीतर में रोककर तथा छोड़ते हुए क्रमशः 16,64,32, बार 'ह्रीं' बीज का जप करते हुए तीन बार प्राणायाम करें।

अन्तर्मातृका-न्यास

पहले कहा जा चुका है कि प्रत्येक वर्ण मातृका अर्थात् देवी-स्वरूप है। अतः, शरीर के प्रत्येक अंग में मातृका का न्यास कर शरीर को देव-देवी मय बनाना ही लक्ष्य है।

प्राणायाम-अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः वर्णों का उच्चारण करते हुए दाहिने नासिका-छिद्र से पूरक की क्रिया करनी चाहिए। कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं जपते हुए कुम्भक तथा यं रं लं वं शं षं सं हं जपते हुए रेचक की क्रिया बायें नासिका छिद्र से करनी चाहिए। यह क्रिया तीन बार करनी चाहिए।

विनियोग-अब दायें हाथ में जल लेकर निम्नलिखित मन्त्र को पढ़ते हुए जल भूमि पर छोड़ें-

ॐ अस्य श्री अन्तर्मातृका-न्यास-मन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः गायत्री छन्दः, अन्तर्मातृका सरस्वती देवता, ह्लो बीजानि, स्वराः शक्तयः अव्यक्तं कीलकं ममाभीष्ट सिद्ध्यर्थे न्यासः विनियोगः ॥

ऋष्यादिन्यास-

ऐं ह्रीं श्रीं अं ब्रह्मणे नमः आं-शिरसि- (मस्तक का स्पर्श करे)
ऐं ह्रीं श्रीं इं गायत्री छन्दसे नमः ईं-मुखे -(मुख का स्पर्श करें)
ऐं ह्रीं श्रीं उं सरस्वती देवतायै नमः ऊं -हृदि -(हृदय का स्पर्श करें)

ऐं ह्रीं श्रीं एं हल्भ्यो बीजेभ्यो नमः ऐं गुह्ये -(गुह्य भाग का स्पर्श करें)
ऐं ह्रीं श्रीं ओं स्वरेभ्यो शक्तिभ्यो नमः औं पादयोः -(पाँवों का स्पर्श करें)
ऐं ह्रीं श्रीं अं अव्यक्त कीलकाय नमः अः अञ्जलौ -(अञ्जलि-स्पर्श)

कर-न्यास

ऐं ह्रीं श्रीं अं कं खं गं घं ङं आं अँगुष्ठाभ्यां नमः
,, इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां नमः
,, उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां नमः
,, एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां नमः
,, ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठिकाभ्यां नमः
,, अं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अः कर-तल कर-पृष्ठाभ्यां नमः ।

षडंग-न्यास

ऐं ह्रीं श्रीं अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः
,, इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसे स्वाहा
,, उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट्
,, एं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हूम् ।
,, ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रत्रयाय वौषट्
,, अं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अः अस्त्राय फट्

ध्यान-

आधारे लिङ्ग-नाभौ प्राकटित हृदये-तालु-मूले ललाटे, द्वे पत्रे षोडशारे द्विदश-दश दले द्वादशार्द्धे चतुष्के ।। वासान्ते वाल-मध्ये डफ-कठ-सहिते कण्ठ-देश स्वराणां, हक्षौ तत्वार्थ-चिन्त्यं सकल-दल-गतं वर्ण-रूपं नामामि ।।

चक्र-न्यास---अब प्रत्येक चक्र-दलों में स्थित, प्रत्येक वर्ण के अन्त में ": हंसः सोऽहम्" जोड़कर प्रत्येक पद्म-दल पर न्यास करें ।

यथा-

मूलाधार-चक्र के रक्त-वर्ण दलों पर -

ऐं ह्रीं श्रीं वं नमः हंसः सोऽहम् -(पूर्व दल में)
ऐं ह्रीं श्रीं शं नमः हंसः सोऽहम् -(दक्षिण दल में)
ऐं ह्रीं श्रीं षं नमः हंसः सोऽहम् -(प० दल में)
ऐं ह्रीं श्रीं सं नमः हंसः सोऽहम् -(उत्तर दल में)

स्वाधिष्ठान-चक्र के विद्युत्वर्ण वाले 6 दलो में पूर्व क्रम से

ऐं ह्रीं श्रीं बं नमः हंसः सोऽहम्
ऐं ह्रीं श्रीं भं नमः हंसः सोऽहम्
ऐं ह्रीं श्रीं मं नमः हंसः सोऽहम्
ऐं ह्रीं श्रीं यं नमः हंसः सोऽहम्
ऐं ह्रीं श्रीं रं नमः हंसः सोऽहम्
ऐं ह्रीं श्रीं लं नमः हंसः सोऽहम्

नाभिस्थ मणिपूरक-चक्र -के दस दलों में पूर्व क्रम से

ऐं ह्रीं श्रीं डं नमः हंसः सोऽहम्
ऐं ह्रीं श्रीं ढं नमः हंसः सोऽहम्
ऐं ह्रीं श्रीं णं नमः हंसः सोऽहम्
ऐं ह्रीं श्रीं पं नमः हंसः सोऽहम्
ऐं ह्रीं श्रीं फं नमः हंसः सोऽहम्

हृदस्थ अनाहत-चक्र के द्वादश दलों में पूर्व क्रम से

ऐं ह्रीं श्रीं कं नमः हंसः सोऽहम
ऐं ह्रीं श्रीं खं नमः हंसः सोऽहम्
ऐं ह्रीं श्रीं गं नमः हंसः सोऽहम्
ऐं ह्रीं श्रीं घं नमः हंसः सोऽहम्
ऐं ह्रीं श्रीं ङं नमः हंसः सोऽहम्
ऐं ह्रीं श्रीं चं नमः हंसः सोऽहम्
ऐं ह्रीं श्रीं छं नमः हंसः सोऽहम्
ऐं ह्रीं श्रीं जं नमः हंसः सोऽहम्
ऐं ह्रीं श्रीं झं नमः हंसः सोऽहम्
ऐं ह्रीं श्रीं ञं नमः हंसः सोऽहम्
ऐं ह्रीं श्रीं टं नमः हंसः सोऽहम्

ऐं ह्रीं श्रीं ठं नमः हंसः सोऽहम्

कण्ठस्थ विशुद्ध-चक्र के 16 दलों में पूर्व क्रम से

ऐं ह्रीं श्रीं अं नमः हंसः सोऽहम्

ऐं ह्रीं श्रीं आं नमः हंसः सोऽहम्

ऐं ह्रीं श्रीं इं नमः हंसः सोऽहम्

ऐं ह्रीं श्रीं ईं नमः हंसः सोऽहम्

ऐं ह्रीं श्रीं उं नमः हंसः सोऽहम्

ऐं ह्रीं श्रीं ऊं नमः हंसः सोऽहम्

ऐं ह्रीं श्रीं ऋं नमः हंसः सोऽहम्

ऐं ह्रीं श्रीं ॠं नमः हंसः सोऽहम्

ऐं ह्रीं श्रीं लृं नमः हंसः सोऽहम्

ऐं ह्रीं श्रीं लृं नमः हंसः सोऽहम्

ऐं ह्रीं श्रीं एं नमः हंसः सोऽहम्

ऐं ह्रीं श्रीं ऐं नमः हंसः सोऽहम्

ऐं ह्रीं श्रीं ओं नमः हंसः सोऽहम्

ऐं ह्रीं श्रीं औं नमः हंसः सोऽहम्

ऐं ह्रीं श्रीं अं नमः हंसः सोऽहम्

ऐं ह्रीं श्रीं अः नमः हंसः सोऽहम्

आज्ञा-चक्र के दोनों दलों में --

ऐं ह्रीं श्रीं हं नमः हंसः सोऽहम्

ऐं ह्रीं श्रीं क्षं नमः हंसः सोऽहम्

सहस्रार में अकार से क्षकार तक के वर्णों का उपरोक्त विधि से न्यास करें । पुनः, क्षकार से अकार तक के वर्णों का भी न्यास करें। ब्रह्म-रन्ध्र में गुरु- पादुका का ध्यान कर वाग्देवी का ध्यान करें-यथा

शारद-पूर्णेन्दु-शुभ्रां सकल-लिपि-मयीं लोल रक्त त्रिनेत्रां शुक्लालंकार भूषां शशि-मुकुट-जटा-भार,हार-प्रदीप्तांविद्या-स्रकपूर्ण-कुम्भाम् वरमपि दधतीं शुद्ध पट्टाभिरामां वाग्देवीं पद्म-वक्त्रां स्तन-भार भर नमितां

चिन्त्येत् साधकेन्द्रः ।

न्यास-क्रम -

1. अधोर्ध्व-क्रम-न्यास (भुक्ति-मुक्ति के लिए विशुद्ध से मूलाधार तथा मूलाधार से आज्ञा चक्र तक ।)

2. ऊर्ध्व-मुख न्यास-(मूलाधार से आज्ञा पर्यन्त मोक्ष के लिए)

बहिर्मातृका-न्यास

बहिर्मातृका-न्यास का तात्पर्य है शरीर के बाहरी अंगों में मातृका-वर्णों को बिठाकर बाह्य अंगों को शुद्ध देव-देवी-मय बनाना । अन्तर्मातृका या बहिर्मातृका-न्यास के सम्प्रदाय-भेद से तीन भेद होते हैं । जैसे-1. सृष्टि-न्यास 2. स्थिति-न्यास तथा 3. संहार या लय-न्यास।

1. सृष्टि-न्यास ब्रह्मचारियों को करना चाहिए।

2. स्थिति-न्यास गृहस्थों को करना चाहिए।

3. संहार या लय-न्यास यति तथा वान-प्रस्थों को करना चाहिए। जो गृहस्थ विरक्तावस्था में हैं, वे संहार-न्यास कर सकते हैं। सृष्टि-क्रम में विसर्गान्त वर्णों से न्यास करना चाहिये । यथा-कः नमः, खः नमः आदि । स्थिति-क्रम में बिन्दु-विसर्ग समन्वित मातृका वर्णों से न्यास करना चाहिए। यथा-कंः नमः, खंः नमः आदि । लय या संहार-क्रम में बिन्दु-युक्त मातृका-वर्णों से न्यास करना चाहिये। जैसे-कं नमः, खं नमः आदि ।

यहाँ संहार-क्रम से बहिर्मातृका-न्यास उल्लेखित किया जा रहा है।

विनियोग-दायें हाथ में जल लेकर निम्नलिखित मन्त्र को पढ़कर जल भूमि पर छोड़ें -

मन्त्र- ॐ अस्य श्री बहिर्मातृका-सरस्वती-न्यास-महा-मन्त्रस्य ब्रह्म ऋषिः, गायत्री छन्दः , बहिर्मातृका-सरस्वती देवता, हलो बीजानि स्वराः शक्तयः, बिन्दवः कीलकानि ममाभीष्ट सिद्ध्यर्थे विनियोगः।''

ऋष्यादि-न्यास- ऐं ह्रीं श्रीं अं ब्राह्मणे ऋषये नमः शिरसि-(सिर का स्पर्श करें)

ऐं ह्रीं श्रीं इं गायत्री छन्दसे नमः ईं मुखे- (मुख का स्पर्श करें)

ऐं ह्लीं श्रीं उं सरस्वती देवतायै नमः ऊं हृदये -(हृदय का स्पर्श करें)
ऐं ह्लीं श्रीं एं हल्भ्यो बीजेभ्यो नमः ऐं गुह्ये-(गुह्य भाग का स्पर्श करें)
ऐं ह्लीं श्रीं ओं स्वरेभ्यो शक्तिभ्यो नमः औं पादयो -(पाँवो का स्पर्श करें)
ऐं ह्लीं श्रीं अं अव्यक्त कीलकाय नमः अः अञ्जलौ -(अंजलि)

करन्यास-

ऐं ह्लीं श्रीं अं कं खं गं घं ङं आं अँगुष्ठाभ्यां नमः
ऐं ह्लीं श्रीं इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां नमः
ऐं ह्लीं श्रीं उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां नमः
ऐं ह्लीं श्रीं एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां नमः
ऐं ह्लीं श्रीं ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठिकाभ्यां नमः
ऐं ह्लीं श्रीं अं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अः कर-तल-कर-पृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादि न्यास-

ऐं ह्लीं श्रीं अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः
ऐं ह्लीं श्रीं इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसे स्वाहा
ऐं ह्लीं श्रीं उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट्
ऐं ह्लीं श्रीं एं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हूम्
ऐं ह्लीं श्रीं ओं पं फं बं भं मं औं नेत्र-त्रयाय वौषट्
ऐं ह्लीं श्रीं अं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अः अस्त्रायफट्

ध्यान-

पञ्चाशद् भेदैर्विहित-वदन-दो-पाद-युक्-कुक्षि-वक्षो देशां भास्वत् कपर्दाकलित-शशि-कलामिन्दु कुन्दावदाताम् । अक्ष-स्त्रक् -कुम्भ-चिंता-लिखित-वरा-करां तीक्ष्णाम्बुजं-संस्थामच्छाकल्पामतुच्छ-स्तन-जघन-भरां भारतीं तां नमामि ।

उपरोक्त स्वरूप का ध्यान कर मानस-पूजा करें । फिर मातृकाक्षरों का निम्नलिखित अँगुलियों से निम्नलिखित अंगों में न्यास करें -

ऐं ह्लीं श्रीं अं नमः शिरसि(मध्यमा+अनामिका से)
ऐं ह्लीं श्रीं आं नमः मुखे तर्जनी + मध्यमा+अनामिका से
ऐं ह्लीं श्रीं इं नमः दक्षेनेत्रे-अँगूठा+अनामिका से

ऐं ह्रीं श्रीं ई नमः वाम नेत्रे -अँगूठा + अनामिका से
ऐं ह्रीं श्रीं उं नमः दक्ष कर्णे-अँगूठा + अनामिका से
ऐं ह्रीं श्रीं ऊं नमः वाम कर्णे-अँगूठा + अनामिका से
ऐं ह्रीं श्रीं ऋं नमः दक्षनासापुटे-अँगूठा + कनिष्ठा से
ऐं ह्रीं श्रीं ॠं नमः वाम नासापुटे-अँगूठा + कनिष्ठा स
ऐं ह्रीं श्रीं लृं नमः दक्षकपोले-तर्जनी+मध्यमा+अनामा या केवल मध्यमा स
ऐं ह्रीं श्रीं लृं नमः वाम कपोले- " "
ऐं ह्रीं श्रीं एं नमः ऊर्ध्वोष्ठे मध्यमा से
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं नमः अधरोष्ठे मध्यमा स
ऐं ह्रीं श्रीं ओं नमः ऊर्ध्वदन्त अनामा से
ऐं ह्रीं श्रीं औं नमः अधोदन्त पंक्तौ अनामा से
ऐं ह्रीं श्रीं अं नमः जिह्वाग्रे अनामा से
ऐं ह्रीं श्रीं अः नमः लम्बिकायां अनामा व मध्यमा
ऐं ह्रीं श्रीं कं नमः दक्ष बाहु-मूले म०+अनामा+कनि०
ऐं ह्रीं श्रीं खं नमः दक्ष कूर्परे(कुहनी) " "
ऐं ह्रीं श्रीं गं नमः दक्ष-मणि बन्धे म०+अनामा+कनि०
ऐं ह्रीं श्रीं घं नमः दक्ष करांगुलिमूले म०+अनामा+कनि०
ऐं ह्रीं श्रीं ङं नमः दक्ष करांगुलिअग्रे म०+अनामा+कनि०
ऐं ह्रीं श्रीं चं नमः वाम बाहु-मूतिमे कनिष्ठा+अनामा+मध्यमा
ऐं ह्रीं श्रीं छं नमः वाम कर्पूर (कुहनी)कनिष्ठा+अनामा+मध्यमा
ऐं ह्रीं श्रीं जं नमः वाम मणि-बन्धे कनिष्ठा+अनामा+मध्यमा
ऐं ह्रीं श्रीं झं नमः वाम करांगुलिमूले कनिष्ठा+अनामा+मध्यमा
ऐं ह्रीं श्रीं ञं नमः वाम करागुल्याग्रे कनिष्ठा+अनामा+मध्यमा
ऐं ह्रीं श्रीं टं नमः वाम दक्षोरु(दाहिनाजंघा मू०) कनिष्ठा+अनामा+मध्यमा
ऐं ह्रीं श्रीं ठं नमः दक्ष जानुनि(घुटना) कनिष्ठा+अनामा+मध्यमा
ऐं ह्रीं श्रीं डं नमः दक्ष गुल्फे कनिष्ठा+अनामा+मध्यमा
ऐं ह्रीं श्रीं ढं नमः दक्ष पदांगुलिमूले कनिष्ठा+अनामा+मध्यमा
ऐं ह्रीं श्रीं णं नमः दक्ष पादांगुल्याग्रे कनिष्ठा+अनामा+मध्यमा

ऐं ह्रीं श्रीं तं नमः वामोरु मूले कनिष्ठा+अनामा+मध्यमा
ऐं ह्रीं श्रीं थं नमः वामोरु मूले कनिष्ठा+अनामा+मध्यमा
ऐं ह्रीं श्रीं दं नमः वाम जानुनि कनिष्ठा+अनामा+मध्यमा
ऐं ह्रीं श्रीं धं नमः वाम पादांगुलि मूले कनिष्ठा+अनामा+मध्यमा
ऐं ह्रीं श्रीं नं नमः वाम पादांगुल्याग्रे मूले कनिष्ठा+अनामा+मध्यमा
ऐं ह्रीं श्रीं पं नमः दक्ष पर्श्वे कनिष्ठा+अनामा+मध्यमा
ऐं ह्रीं श्रीं फं नमः वाम पर्श्वे कनिष्ठा+अनामा+मध्यमा
ऐं ह्रीं श्रीं बं नमः पृष्टे- अँगूठा+कनिष्ठा+अनामा+मध्यमा
ऐं ह्रीं श्रीं भं नमः नामौ-अँगूठा+जर्तनी+मध्यमा+अनमा+कनि०
ऐं ह्रीं श्रीं मं नमः जठरे-अँगूठा+जर्तनी+मध्यमा+अनमा+कनि०
ऐं ह्रीं श्रीं यं नमः त्वगात्मने नमः हृदि- '' ''
ऐं ह्रीं श्रीं रं नमः असृगात्मने नमः दक्षांशे '' ''
ऐं ह्रीं श्रीं लं नमः मांसात्मने नमः कुकुदि '' ''
ऐं ह्रीं श्रीं वं नमः मेदात्मने नमः वामांशे '' ''
ऐं ह्रीं श्रीं शं नमः अस्थ्यात्मने नमः हृदय दक्ष करांगुल्यन्क्ते ''
ऐं ह्रीं श्रीं षं नमः मज्जात्मने नमः हृदयादि वाम करांगुल्यत ''
ऐं ह्रीं श्रीं सं नमः शुक्रात्मने नमः नाभ्यादि दक्षपादान्तं ''
ऐं ह्रीं श्रीं हं नमः जीवात्मने नम : नाभ्यादि वाम पदान्तं ''
ऐं ह्रीं श्रीं लं नमः हृदयादि पादांगुल्यतं '' ''
ऐं ह्रीं श्रीं क्षं नमः ज्ञानात्मने नमः नाभ्यादि ब्रह्म-रूध्रातं ''

दिग्बन्धन- "ॐ भूर्भुवः स्वरोम्" मन्त्र को पढ़ते हुए छोटिका मुद्रा (अँगूठा+अनामिका) से अपने चारो ओर चुटकी बजाकर दिग्बन्धन करें।

मन्त्र-संस्कार

कोई भी विद्या गुरु-मुख से प्राप्त होने पर ही फलवती होती है। किन्तु, आजकल समाज में सुयोग्य गुरु का मिलना अत्यन्त ही कठिन है। कुछ सिद्ध-पुरुष हैं भी तो परम गोप्य रूप में रह रहे हैं। उनसे सम्पर्क साधना भी दुष्कर है। इसलिए, आस्था-सम्पन्न साधकों

के लिये यह मन्त्र-संस्कार-विधि दी जा रही है कि गुरु के अभाव में भी आस्था, विश्वास तथा लगन के बल पर मन्त्र को संस्कार-पूरित कर जब चाहें साधना कर सिद्धि-लाभ प्राप्त कर सकते हैं । जो साधक-चमत्कारी शक्ति की तलाश में हैं, उनसे आग्रह है कि स्वान्त: सुखाय ही साधना को सम्पन्न करना चाहिए। सिद्धि-लाभ के बाद तो चाहे अनचाहे स्वत: चमत्कार होते रहते हैं । अत:, पुन: आग्रह है कि स्वयं को अनुशासन में रख कर तथा दुर्भावना से मुक्त होकर ही साधना में लीन हों ।

द्वन्द्व-ग्रस्त किन्तु जिज्ञाशुओं, धैर्यवानों, श्रद्धालुओं, कर्म-शील तथा दृढ़-संकल्प रखने वाले साधकों को ध्यान में रखकर ही यह मन्त्र-संस्कार-विधि दी जा रही है।

आसन-शुद्धि, देह-शुद्धि, दिग्बन्ध आदि क्रियाओं को सम्पन्न कर भूत-शुद्धि की क्रिया सम्पन्न करें ।

ॐ गुं गुरवे नम:

ॐ महा गणपतये नम:

ॐ पराम्बायै नम:

संकल्प- ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णु: ॐ नमो परमात्मने श्री पुराण पुरुषोत्तमस्य श्री विष्णोराज्ञया प्रर्वतमानस्य श्री ब्रह्मणोह्नि द्वितीय परार्द्धे श्री श्वेत वाराह कल्पे वैवस्वत मन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलि-युगस्य प्रथम चरणे जम्बुद्वीपे भारत वर्षे भरत खण्डे आर्यावर्त्तैक देशान्तर्गते ब्रह्मावर्त्तैक देशे पुण्य क्षेत्रे बौद्धावतारे वर्त्तमाने अमुक सम्वत्सरे अमुकायने मासानां मासोत्तमे अमुक मासे अमुक पक्षे अमुक तिथौ अमुक वासरान्वितायां अमुक नक्षत्रे अमुक राशि-स्थिते सूर्ये अमुकामुक राशि-स्थितेषु-चन्द्र-भौम-बुध-गुरु-शुक्र-शनि-सत्सु शुभे योगे शुभे करणे अमुक गोत्रोत्पन्न: अमुक (नाम) शर्माहं श्री इष्ट देवता अनुष्टुभ् मन्त्रस्य छिन्नत्वादि् पञ्चाशद्-दोष-परिहारार्थं आराध्य-कर्मण: मध्ये विघ्न-विच्छेद-जनित-प्रत्यवाय परिहार द्वारा श्री इष्ट-देवता-प्रीत्यर्थं पुनश्च जननादि दश विध संस्कराणि करिष्ये ।

संकल्प के बाद प्रत्येक संस्कार के लिए निर्दिष्ट मन्त्र को ताम्र-पात्र में अष्ट-गन्ध से लिखकर उसका षोडशोपचार पूजन करें । फिर, उसका निर्दिष्ट संख्या में जप करें ।

1. शापोद्धार-स्वाहा-युक्त मूल मन्त्र को 'ह्स्त्रौं' मन्त्र से पुटित कर लिखें - **ह्स्त्रौं ह्रीं ह्स्त्रौं ह्स्त्रौं स्वा ह्स्त्रौं ह्स्त्रौं हा ह्स्त्रौं - (10,000 बार जप)**

2. उत्कीलन-पूर्ववत् 'स्वाहा' युक्त मूल मन्त्र को हस्क्लीं मन्त्र से पुटित कर लिखें -

ह्स्क्लीं ह्रीं ह्स्क्लीं स्वाहा - 108 बार जप

3. चेतनी- **ईं ऐं औं ह्रीं ईं ऐं औं स्वाहा - 108 बार जप**

4. आह्लादिनी- **ॐ क्लीं नमः ह्रीं स्वाहा ॐ क्लीं नमः -108 बार जप**

5. तेजोद्दीपनी- **वद वद वाग्वादिनी ह्रीं स्वाहा वद वद वाग्वादिनी-108. बार जप**

6. जनन- **अं आं इं ईं ---सं हं लं क्षं ह्रीं स्वाहा**

क्षं लं हं सं षं शं वं लं रं यं मं भं बं फं पं नं धं दं थं तं णं ढं डं ठं टं ञं झं जं छं जं ङं घं गं खं कं अः अं औं ओं ऐं एं लृं लृं ऋं ॠं ऊं उं ईं इं आं अं-108 बार जप

9. मन्त्र-प्रत्यक्ष-(संजीबन)-**श्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं स्वा श्रीं श्रीं हा श्रीं-10,000जप**

10. प्राण-स्थापन-**ऐं ह्रीं ऐं ऐं स्वा ऐं ऐं हा ऐं - 108 बार जप**

11. मन्त्र-स्पन्दन-वहिन- ॐ ह्रीं ॐ ह्रीं स्वाहा ॐ ह्रीं ॐ-108 बार

12. दीपन- भोज-पत्र पर अष्ट-गन्ध से अधोमुख त्रिकोण अकारादि से क्षकारान्त लिखें । अधोमुख शीर्ष अँ से बनाकर बाम भुजा अः तक लिखें। ऊर्ध्व-स्थित आधार को कं से प्रारम्भ कर थं तक लिखें। फिर, दाहिनी भुजा को 'दं' से प्रारम्भ कर 'हं लं क्षं' तक लिखकर पूरा करें । इस त्रिकोंण के मध्य में 'हंसः ह्रीं हंसः' लिखें ।-1000जप

13. ताड़न-ताड़-पत्र के ऊपर निम्न प्रकार अष्ट-गन्ध से मन्त्र

लिखकर ताम्र-पात्र में स्थापित करें और पूजन कर दर्भ-शाखा एक हजार जप करते हुए ताड़न करें।

मन्त्र-यं फट् ह्रीं स्वाहा यं फट् ।

14. निबोधन-करवीर-पत्र (कनेर-का पत्ता) के ऊपर **"हूं ह्रीं हूं हूं स्वा हूं हूं हा हूं "** लिखें । फिर, पूर्ववत् उसे ताम्र-पात्र में स्थापित कर पूजन करें। फिर 5000 बार जप करें ।

15. अभिषेचन-ताड़ या अश्वत्थ-पत्र पर निम्न प्रकार से मन्त्र को लिखें- **"ह्री स्वाहा अभिषिञ्चयामि ।"** फिर, पूर्ववत् ताम्र-पात्र में स्थापित कर पूजन करें । उस पर जल की धारा छोड़ते हुए 1000 बार जप कर अभिषेक करें ।

16. दहन- ब्रह्म-वृक्ष के तैल या अष्ट-गन्ध से ताम्र-पात्र में निम्न प्रकार मन्त्र को लिखें ।

श्री श्री श्री श्री श्री

रँ रँ रँ

रँ ह्रीं रँ ॥ रँ स्वा रँ ॥ रँ हा रँ ॥

रँ रँ रँ

फिर, पूर्ववत् पूजन कर 108 बार जप करें ।

17. विमलीकरण- ताम्र-पात्र में पूर्ववत् निम्न मन्त्र को लिख कर पूजन करें तथा 1000 बार जप करें ।

"ॐ ह्रौं वषट् ह्रीं स्वाहा ॐ ह्रौं वषट्"

18. पुनर्जीवन- पूवर्वत् ताम्र-पात्र में मन्त्र लिखकर, पूजन कर 1000 बार जप करें - **"वषट् ह्रीं स्वाहा वषट् ।"**

19. प्रोक्षण- भोज-पत्र पर अष्ट-गन्ध से निम्न प्रकार मन्त्र लिखकर

दण्डवत् कर पूर्ववत् पूजन कर कुश-शाखा द्वारा जल से मन्त्र जपते हुए 108 बार प्रोक्षण करें।

''ॐ क्रौं ह्रीं स्वाहा ॐ क्रौं ।''

20. आप्यायन- 'ह्सौं' से मूल मन्त्र को सम्पुटित करते हुए ताम्र-पात्र में लिखकर पूजन करें -

''ह्सौं ह्रीं ह्सौं ह्सौं स्वा ह्सौं ह्सौं हा ह्सौं ।''
1000 बार जप

21. तर्पण- ताम्र-पात्र में अष्ट-गन्ध से नीचे लिखे मन्त्र को लिखकर -गो-दुग्ध, गो-घृत तथा जल से पूर्ण कर यथा विधि पूजन कर मन्त्र का 1000 बार जप करें ।

स्वधा श्रीं ह्रीं श्रीं भुवनाग्रे धीमहि भुवनेश्वरी विद्मेह ॐ ह्रीं प्रचोद्यात् ॐ क्लीं स्वाहा''

22. पूनर्दीपन- निम्नलिखित मन्त्र को ताम्र-पात्र में पूर्ववत् लिखकर पूजन करें तथा 1000 बार जप करें -

''ॐ क्रीं श्रीं ह्रीं स्वाहा ॐ क्रीं श्रीं ।''

23. गोपन- नीचे लिखे मन्त्र को ताम्र-पात्र में लिखकर पूजन-पूर्वक 1000 बार जप करें -

''क्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं स्वा क्रीं क्रीं हा क्रीं ।''

अन्त में मूल मन्त्र का एक हजार बार जप करें ।

यदि इस विधि का पुरश्चरण (अनुष्ठान्) के आदि मध्य तथा अन्त में नियम पूर्वक पालन किया जाय तो प्रत्यक्ष-सिद्धि प्राप्त होती है।

देह रक्षा

श्रीं ह्रीं श्रीं श्री भुवनेश्वरी आत्मानं रक्ष-रक्ष- 3 बार
श्रीं ह्रीं श्रीं गुं गुरुभ्यो नमः (दायी भुजा)
श्रीं ह्रीं श्रीं गं गणपतये नमः (बायीं भुजा)
श्रीं ह्रीं श्रीं दुं दुर्गायै नमः (दाहिना ऊरु)
श्रीं ह्रीं श्रीं वं वटुकाय नमः (वाम ऊरु)

श्रीं ह्रीं श्रीं यॉं योगिनीभ्यों नमः (पाँव)

श्रीं ह्रीं श्रीं क्षं क्षेत्रपालाय नमः (पाँव)

श्रीं ह्रीं श्रीं पं परमात्मने नमः (हृदय)

ॐ नमो भवगवति तिरस्करिणी महामाये महानिद्रे सकल पशुजन मनः त्वक् चक्षुः श्रोत्र तिरस्करणं कुरु कुरु स्वाहा ।

भूर्भुवः स्वरोम् (दिग्बन्धन)

वर्धनी कलश स्थापन-

अपने आगे बायें भाग में त्रिकोण, वृत्त तथा भूपुर बनाकर मत्स्य मुद्रा दिखावें । फिर मूल मन्त्र से पूजन कर कर्पूर-अष्टगन्ध -पुष्प-अक्षत से अलंकृत कलश को स्थापित करे ।
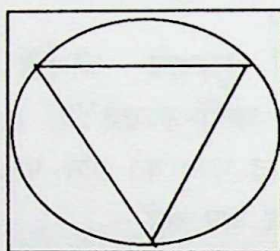
ॐ कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः ।
मूले तत्र स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः ।।
कुक्षौ तु सागराः सर्वे सप्तद्वीपा वसुन्धरा ।
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदोऽप्यथर्वणाः ।।
अङ्गाश्च सहिताः सर्वे कलशाम्बुसमाश्रिताः ।
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ।
सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि च नदा ह्रदाः ।।
आयान्तु देवीपूजार्थं दुरितक्षयकारकाः ।

इस प्रकार अवाहन कर मूल मन्त्र से आठ बार अभिमन्त्रित करें तथा धेनु मुद्रा दिखावें ।

सामान्यार्घ्य-पात्र-स्थापन

वर्धनी कलश के जल से वर्धनी कलश के दक्षिण भाग में निम्न प्रकार से यन्त्र का निर्माण कर मत्स्य मुद्रा प्रदर्शित करें ।
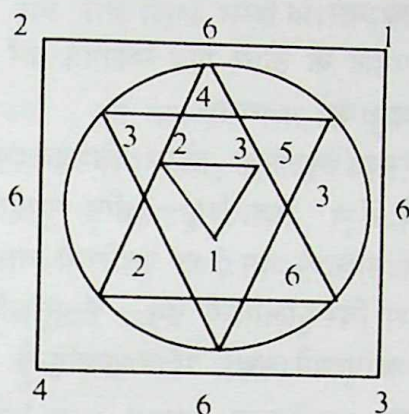
ऐं ह्रीं श्रीं ह्राँ ह्रदयाय नमः ह्रदय शक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः
ऐं ह्रीं श्रीं ह्रीं शिरसे स्वाहा शिर:शक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः
ऐं ह्रीं श्रीं ह्रूँ शिखायै वषट् शिखा शक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः
ऐं ह्रीं श्रीं ह्रैं कवचाय हूम् कवच शक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः
ऐं ह्रीं श्रीं ह्रौं नेत्र त्रयाय वौषट् नेत्र शक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः
ऐं ह्रीं श्रीं ह्रः अस्त्राय फट् अस्त्र शक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः

षट्कोण में निम्नलिखित मन्त्रों से पूजन करें ।

ऐं ह्रीं श्रीं ह्रीं ह्रदयायनम-ह्रदय-शक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः
ऐं ह्रीं श्रीं श्रीं शिरसे स्वाहा-शिरः श्री पादुकां पूजयामि नमः
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं शिखायै वषट्-शिखा श्री पादुकां पूजयामि नमः
ऐं ह्रीं श्रीं ह्रीं कवचाय हूम्-कवच श्री पादुकां पूजयामि नमः
ऐं ह्रीं श्रीं श्रीं नेत्रत्रयाय वौषट् -नेत्र-शक्तिश्री पादुकां पूजयामि नमः
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं - अस्त्रायफट् -अस्त्र- श्री पादुकां पूजयामि नमः

मध्य त्रिकोण में

ऐं नमः

ह्रीं नमः

श्रीं नमः
ह्रीं नमः
ऐं ह्रीं श्रीं ॐ अग्नि मण्डलाय धर्मप्रद पद कलात्मने महा भुवनेर्श्वाः सामान्यार्ध्य पात्राधाराय नमः ।

अब मण्डल के ऊपर पात्र स्थापित करें तथा अग्नि की दश कलाओं का पूजन करें - यथा-

ऐं ह्रीं श्रीं ॐ अग्निंदूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसं अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम/ रां रीं रूं रैं रौं रः रमलवरयूं अग्नि मण्डलाय नमः
यं धूम्रार्चिषे नमः, रं ऊष्मायै नमः, लं ज्वलिन्यै नमः
वं ज्वालिन्यैनमः , शं विस्फुलिंगिन्यै नमः, षं सुश्रियै नमः,
सं सुरूपायैनमः, हं कपिलायै नमः, मं हव्यवाहिन्यै नमः,
क्षं कव्य वाहिन्यै नमः

अस्त्रायफट् मन्त्र से शंख को धोकर नीचे लिखें मन्त्र पढ़कर स्थापित करें ।

ऐं ह्रीं श्रीं ऊं सूर्य मण्डलायार्थ प्रद द्वादश कलात्मने श्री महाभुवनेश्वर्याः सामान्य अर्ध्य पात्राय नमः

नीचे लिखें मन्त्रों से पूजन करें -

कं भं तपिन्यै नमः, खं बं तापिन्यै नमः, गं फं धूम्रायै नमः,
धं पं मरीच्यै नमः, ङं नं जवालिन्यै नमः, चं धं रुच्चै नमः,
छं दं सुषुम्नायै नमः, जं थं भोगदायै नमः, झं तं विश्वायै नमः,
ञं णं बोधिन्यै नमः, टं ढं धारिण्यै नमः, ठं डं क्षमायै नमः
मं सोम मण्डलाय कामप्रद षोडश कलात्मने श्री महाभुवनेश्वर्याः सामान्यर्घ्यामृताय नमः (वर्धनी कलश-जल से पात्र आपूरित कर दूध

डालें ।)

ॐ आप्यास्व सुमेतु ते विश्वतः सोम वृष्णियम् भवावाजस्य संगथे। सां सीं सूं सैं सौं सः समलवरयूं सोम मण्डलाय नमः

अब नीचे लिखे मन्त्रों से चन्द्रमा की बारह कलाओं की पूजा करें ।

अं अमृतायै नमः , आं मानदायै नमः, इं पूषायै नमः, ईं तुष्ट्यै नमः, उं पुष्ट्यै नमः, ऊं रत्यै नमः, ॠं धृत्यै नमः

ॠं शशिन्यै नमः, लृं चन्द्रिकायै नमः, लृं कान्त्यै नमः, एं ज्योत्स्नायै नमः, ऐं श्रियै नमः, ओं प्रीत्यै नमः, औं अंगदायै नमः, अं पूर्णायै नमः, अः पूर्णामृतायै नमः।

पुनः शंख को 'अस्त्राय फट्' मन्त्र पढ़कर संरक्षित करें। 'कवचाय हूम्' मन्त्र पढ़कर अवगुण्ठित करें, धेनुमुद्रा, योनि-मुद्रा प्रदर्शित कर मूल मन्त्र से सात बार अभिमंत्रित करें तथा शंख के जल से सभी पूजोपकरणों तथा, स्वयं का भी प्रोक्षण करें ।

आचार-भेद

शक्ति पूजा करने से पहले साधक को सम्प्रदाय और आचार के बारे में ज्ञान होना परमावश्यक है । वस्तुतः आचार का ज्ञान गुरु-मुखी है फिर भी सामान्य तौर पर सम्प्रदायगत आचार की विवेचना की जा रही है , जिससे अदीक्षित साधक भी आचार के बारे में आवश्यक ज्ञान प्राप्त कर साधना की ओर उन्मुख हो सकेंगे ।

यहाँ सविशेष उल्लेख्य है कि देवी की पूजा-के तीन भेद हैं (1) समयाचार, (2) मिश्राचार(3) कौलाचार ।

(1)समयाचार-सनक-सनन्दन-सनत कुमार, वशिष्ठ-व्यास-शुक अदि द्वारा बतायें गये पंच शुभागम वैदिक मार्गानुसार जो आचार है, वह समयाचार कहलाता है। इस आचार में साधक अपने हृदय -कमल में देवी को स्थापित कर मानसिक पूजन-यापन तथा जप करता है। समयाचार में सृष्टि-क्रम मान्य है। अर्थात् यन्त्र के मध्य बिन्दु में इष्ट देवता की पूजा करने के बाद क्रमशः षट्कोण, अष्ट दल, वृत्त,

षोडश-दल तथा भूपुरों में उत्तरोत्तर विकास क्रम से पू जन किया जाता है। समयाचार में शिव के त्रिकोण अधो मुख होते है। और शक्ति में उर्ध्व मुख ।

(2) कौलाचार-इस मत के अनुसार मध्यस्थ बिन्दु में, कोणों में पराशक्ति का पूजन किया जाता है तथा फिर, भूपुर से आरम्भ कर बिन्दु पर्यन्त नौ आवरणों का पूजन किया जाता है। इसे संहार क्रम कहा जाता है। कौलाचार में शिव के त्रिकोण ऊर्ध्व मुख तथा शक्ति के अधो मुख त्रिकोण होते हैं । इसके भी दो भेद होते हैं (1) पूर्व कौलाचार और (2) उत्तर कौलाचार ।

(3) मिश्राचार- इस आचार के अन्तर्गत बाह्य और आन्तरिक आधार-चक्रों में स्थित कुल-कुण्डलिनी का ध्यान किया जाता है। यह मत चन्द्र-कुलादि अष्ट तन्त्रों द्वारा प्रतिपादित है। ये समयाचार और कुलाचार दोनों का अनुसरण करते हैं । इस मत के अनुसार अन्तर्योग और बहिर्योग दोनों किया जाता है।

विशेषार्घ्य-विधि

सामान्य अर्घ्य-पात्र के जल से सामान्य अर्घ्य-पात्र के दक्षिण भाग में बिन्दु, त्रिकोण, षट्कोण,वृत्त तथा भूपूर का निर्माण करें । मध्य में तुरीय स्वर "ई" लिखें । मत्स्य-मुद्रा प्रदर्शित करें । आग्नेय कोणादि क्रम से षडंग-पूजा करें । यथा-

ह्रां हृदयाय नमः हृदय शक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः
ह्रीं शिरसे स्वाहा-शिरः शक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः
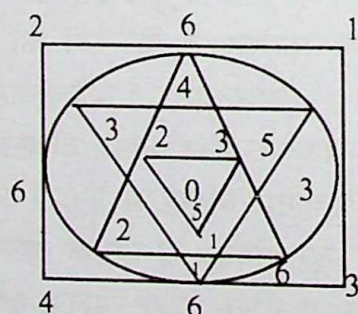
ह्रूं शिखायै वषट् -शिखा-शक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः
ह्रैं कवचाय हूम्- कवच-शक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः
ह्रौं नेत्र त्रयाय वौषट्-नेत्र-शक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः
ह्रः अस्त्राय फट्-अस्त्र-शक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः

षट्कोण में दक्षिण क्रम से षडंग-पूजन करें । यथा-

ह्रां हृदयाय नमः हृदय शक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः
ह्रीं शिरसे स्वाहा-शिरः शक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः
ह्रूं शिखायै वषट् -शिखा-शक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः
ह्रैं कवचाय हूम्- कवच-शक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः
ह्रौं नेत्र त्रयाय वौषट्-नेत्र-शक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः
ह्रः अस्त्राय फट्-अस्त्र-शक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः

त्रिकोण में अपने आगे दक्षिण क्रम से नीचे लिखें मन्त्रों से पूजन करें-

श्रीं नमः , ह्रीं नमः, श्रीं नमः, ह्रीं नमः

अस्त्राय फट् मन्त्र से आधार-भूमि का प्रक्षालन करें ।
ऐं ह्रीं श्रीं अं अग्नि मण्डलाय धर्म प्रद दश कलात्मने श्री भुवनेश्वर्याः विशेषार्ध्य-पात्राधाराय नमः -
मन्त्र से आधार की स्थापना करें ।
ऐं ह्रीं श्रीं अग्नि दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसं अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् । रां रीं रूं रैं रौं रः रमलवर यूं अग्नि मण्डलाय नमः -

अग्नि की दस कलाओं का पूजन करें -

यं धूम्रार्चिषे नमः, रं ऊष्मायै नमः, लं ज्वलिन्यै नमः, वं ज्वालिन्यै नमः, शं विस्फुलिंगिन्यै नमः, षं सुश्रियै नमः, सं सुरूपायै नमः, ह कपिलायै नमः, लं हव्यवाहिन्यै नमः, क्षं कव्य वाहिन्यै नमः ।

अब नीचे लिखे मन्त्र से विशेषार्ध्य-पात्र का प्रक्षालन करें - "अस्त्राय फट् ।"

आधार के ऊपर पात्र को नीचे लिखे मन्त्र पढ़कर स्थापित करें-

ह्रीं उं सूर्य-मण्डलाय अर्थ प्रद द्वादश कलात्मने श्री भुवनेश्वर्याः

विशेषार्ध्य पात्राय नमः । फिर, नीचे लिखे मन्त्र को पढ़कर पात्र के ऊपर पुष्प चढ़ावें -

ह्रीं ऐं महालक्ष्मीश्वरि परम स्वामिनि ऊर्ध्व शून्य प्रवाहिनी सोम-सूर्याग्नि भक्षिणि परमाकाश भासुरे आगच्छागच्छ विश विश पात्रं प्रति ग्रह्ण प्रति गृह्ण हूं फट् स्वाहा । पात्र में सूर्य-मण्डल की भावना कर नीचे लिखे मन्त्र को पढ़ें -

ॐ आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नामृतं मर्त्यं च हिरण्य येन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् । हां ह्रीं हं हैं हौं हः हमलवर यूं सूर्यमण्डलाय नमः ।

अब सूर्य की द्वादश कला-शक्तियों की पूजा करें यथा-

कं भं तापिन्यै नमः

खं बं तापिन्यै नमः

गं फं धूम्रायै नमः

घं पं मरीच्यै नमः

ङं नं ज्वालिन्यै नमः

चं धं रुच्यै नमः

छं दं सुषुम्नायै नमः

जं थं भोगदायै नमः

झं तं विश्वायै नमः

ञं णं बोधिन्यै नमः

टं ढं धारिण्यै नमः

ठं डं क्षमायै नमः

नीचे लिखें मन्त्र को पढ़ते हुए विशेषार्घ्य-पात्र में गो-क्षीर (दुग्ध), कस्तुरी, अष्ट-गन्ध, पुष्प, नागर-खण्ड आदि डालें -

श्रीं ह्रीं श्रीं मं सोम-मण्डलाय काम प्रद षोडश कलात्मने श्री भुवनेश्वर्याः विशेषार्घ्यामृताय नमः । अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः, कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं ह्रीं क्षं लं हं सं षं शं वं लं रं यं मं भं बं फं पं नं धं दं थं तं णं ढं डं ठं टं ञं झं जं छं चं ङं घं गं खं कं अः अं औं ओं ऐं एं ॡं लृं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं ॥

अब पात्र में सोम-मण्डल की भावना करते हुए नीचे लिखे मन्त्र को पढ़ें -

ॐ आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्णियम् भवा वाजस्य सङ्गथे ॥ सां सीं सूं सौं सः समलवर यूं सोम-मण्डलाय नमः ॥

अब पात्र में चन्द्रमा की सोलह कला-शक्तियों का निम्नलिखित मन्त्रों द्वारा पूजन करें -

अं अमृतायै नमः आं मानदायै नमः, इं पूषायै नमः, ईं तुष्ट्यै नमः, उं पुष्ट्यै नमः, ऊं रत्यै नमः, ऋं धृत्यै नमः, ॠं शशिन्यै नमः, लृं चन्द्रिकायै नमः, ॡं कान्त्यै नमः, एं ज्योत्स्नायै नमः, ऐं श्रियै नमः, ओं प्रीत्यै नमः, औं अंगदायै नमः, अं पूर्णायै नमः, अः पूर्णामृतायै नमः ॥

इस पात्र को "ॐ जूँ सः स्वाहा" मन्त्र आठ बार पढ़कर अभिमन्त्रित करें ।

अपने सामने विशेषार्ध्यामृत में दक्षिण क्रम से अकथदि षोडश वर्णात्मक तीन रेखायें अर्थात् त्रिकोण बनावें । उसके भीतर वाम क्रम से ह ल क्ष, बाह्य भाग में दक्षिण क्रम से ''श्रीं, ह्रीं, श्रीं, मध्य भाग में ''ईं'' तथा वाम-दक्षिण क्रम से हं, सः लिखें और नीचे लिखें मन्त्र से अर्चना करें - हंसः नमः ।
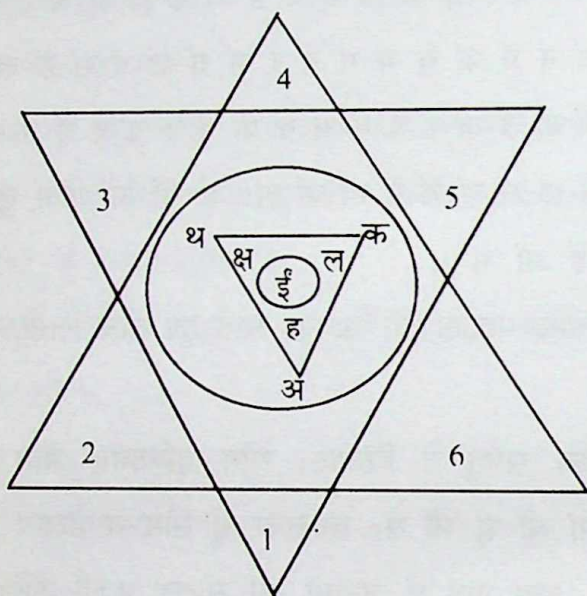
ऊपर अंकित यन्त्र में षडंग मन्त्रों से अर्चना करें । यथा-
ह्रां हृदयाय नमः हृदय शक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः
ह्रीं शिरसे स्वाहा-शिरः शक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः
ह्रूं शिखायै वषट् -शिखा-शक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः
ह्रैं कवचाय हूम्- कवच-शक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः
ह्रौं नेत्र त्रयाय वौषट्-नेत्र-शक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः
ह्रः अस्त्राय फट्-अस्त्र-शक्ति श्री पादुकां पूजयामि नमः
फिर, नीचे लिखे मन्त्र से भगवती भुवनेश्वरी की अर्चना करें -
ह्रीं तां चिन्मयीं आनन्द लक्षणां अमृत कलशपिशित हस्ता द्वयां प्रसन्नां देवीं पूजयामि नमः स्वाहा ।

विशेषार्ध्य-पात्र स्थित सुधा-देवी को 'वषट्' मन्त्र द्वारा निकालें 'हूं' मन्त्र द्वारा अवगुण्ठित करें । मूल मन्त्र पढ़ते हुए गालिनी मुद्रा द्वारा निरीक्षण करें । 'फट्' मन्त्र द्वारा संरक्षित करें । 'स्वाहा'- मन्त्र द्वारा पात्र में छोड़ें, 'वौषट् मन्त्र द्वारा धेनुमुद्रा प्रदर्शित करें तथा 'नमः' मन्त्र द्वारा पुष्पार्पित करें । पुनः मूल मन्त्र से गालिनी मुद्रा दिखाकर ''ऐं''-मन्त्र पढ़ते हुए योनिमुद्रा से प्रणाम करें । फिर मूल मन्त्र से सात बार पढ़कर सुधा देवी को अभिमन्त्रित कर -यथोपचार पूजन करें ।

शुद्धि-संस्कार

विशेषार्ध्य-पात्र के दक्षिण भाग में सामान्यर्ध्य-पात्र से जल लेकर त्रिकोण, वृत्त चतुरस्त्रात्मक बनाकर मत्स्य मुद्रा प्रदर्शित करें ।
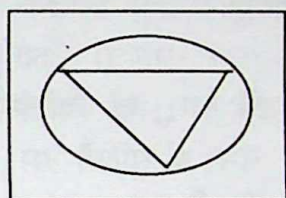
नीचे लिखे मन्त्र द्वारा मण्डल की पूजा कर उसके ऊपर शुद्धि-पात्र को स्थापित करें ।

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं ''ॐ'' श्लीं पशुं हूम् फट्- इस मन्त्र को आठ बार पढ़कर शुद्धि पात्र को अभिमन्त्रित करें ।

पुनः, नीचे लिखे मन्त्रों को पढ़ते हुए अभ्यर्चन करें -

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं सद्यो जातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः ।
भवे भवे नाति भवे भवस्व मां भवोद्भवाय रुद्राय नमः कलाय नमः कल विकरणाय नमो बल विकरणाय नमो बलाय नमो बल प्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः''

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं अधोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोर घोतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ।।

''तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोद्यात्''

"ईशानस्सर्व विद्यानामीश्वरस्सर्व भूतानां ब्रह्माधिपत्ति ब्रह्मणोऽअधि पतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम् - अर्चन करें ।
उसके बाद दो अधोमुख त्रिकोण लिखकर वृत्तावेष्टित करें तथा उसके बाहर में भूपुर मय मंडल बनावें । तथा एक मण्डल में नीचे लिखें मन्त्र द्वारा गुरु-पात्र स्थापित करें-
ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं हंस:, शिव: सोऽहम् सोऽहम्
हंस: शिव:, हंस: शिव: सोऽहं हंस:
ह्स्ख्फ्रें हसक्षमलवरयूं नम: ॥
द्वितीय मण्डल में नीचे लिखे मन्त्र को पढ़कर आत्म-पात्र-स्थापित करें - श्रीं ह्रीं श्रीं हंस नम: ।

पुन: विशेषार्घ्य पात्र का स्पर्श करते हुए नीचे लिखें मन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रित करें -
(1) अग्निकला-
यं धूम्रार्चिषे नम:, रं ऊष्मायै नम:, लं ज्वलिन्यै नम: वं ज्वालिन्यै नम:, शं विस्फुलिंगिन्यै नम:,षं सुश्रियै नम:, सं सुरूपायै नम:, हं कपिलायै नम:,लं हव्य वाहिन्यै नम:, क्षं कव्य वाहिन्यै नम: ।
(2) सूर्य कला-कंभं तपिन्यै नम:, खं बं तापिन्यै नम:,गं फं धूम्रायै नम:, घं पं मरीच्यै नम:, ङं नं ज्वालिन्यै नम:,चं धं रुच्यै नम:, छं दं सुषुम्नायै नम:,जं थं भोगादायै नम:, झं तं विश्वायै नम:, ञं णं बोधिन्यै नम:,टं ढं धारिण्यै नम:, ठं डं क्षमायै नम: ।
(3) सोम-कला-अं अमृतायै नम:, आं मानदायै नम:, इं पूषायै नम:, ईं तुष्ट्यै नम:, उं पुष्ट्यै नम:, ऊं रत्यै नम:,ऋं धृत्यै नम:, ॠं शशिन्यै नम:, ऌं चन्द्रिकायै नम:, ॡं कान्त्यै नम:, एं ज्योत्स्नायै नम:, ऐं श्रियै नम:, ओं प्रीत्यै नम:, औं अंगदायै नम:, अं पूर्णायै अ: पूर्णामृतायै नम: ।
(4) ब्रह्म-कला- कं सृष्ट्यै नम:, खं ऋद्ध्यै नम:, गं स्मृत्यै नम:, घं मेधायै नम:, ङं कान्त्यै नम:, चं लक्ष्म्यै नम:, छं द्युत्यै नम:, जं स्थिरायै नम:, झं स्थित्यै नम:, ञं सिद्ध्यै नम: ।

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं हंसस्शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसदव्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ।।
नम :।।

(5) विष्णु-कला- टं जरायै नमः, ठं पालिन्यै नमः, डं शान्त्यै नमः, ठं ईश्वर्यै नमः, णं रत्यै नमः तं कामिकायै नमः, थं वरदायै नमः, दं ह्लादिन्यै नमः, धं प्रीत्यै नमः, नं दीर्घायै नमः ।

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं प्रतद्विष्णुस्तवते वीर्याय मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ।। नमः ।।

(6) रुद्र-कला- पं तीक्ष्णायै नमः, फं रौद्रयै नमः, बं भयायै नमः, भं निद्रायै नमः, मं तन्द्र्यै नमः, यं क्षुधायै नमः, रं क्रोधिन्यै नमः, लं क्रियायै नमः, वं उद्गार्यै नमः, शं मृत्यवे नमः ।

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि वर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।। नमः ।।

(7) ईश्वर-कला- षं पीतायै नमः, सं श्वेतायै नमः , हं अरुणायै नमः, क्षं असितायै नमः ।

श्रीं ह्रीं श्रीं तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् । तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवाँसः समिन्धते विष्णोर्यत्परमं पदम् ।। नमः ।।

(8) सदाशिव कला- अं निवृत्यै नमः, आं प्रतिष्ठायै नमः, इं विद्यायै नमः, ईं शान्त्यै नमः, उं इन्धिकायै नमः, ऊं दीपिकायै नमः, ऋं रेचिकायै नमः, ॠं मोचिकायै नमः, लृं परायै नमः, ॡं सूक्ष्मायै नमः, एं सूक्ष्मामृतायै नमः, ऐं ज्ञानायै नमः, ओं ज्ञानामृतायै नमः, औं आप्यायिन्यै नमः, अं व्यापिन्यै नमः, अः व्योम रूपायै नमः ।

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं विष्णुर्योनि कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ।।
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्त्रजा ।। नमः
।। "ह्रीं नमः ।।

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं अखण्डैक रसानन्द करे पर सुधात्मनि ।
स्वच्छन्द स्फुरणामत्र निधेहि कुलनायिके ।। नमः ।।
ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं अकुलस्थामृताकारे शुद्ध ज्ञान करे परे ।
अमृतत्वं निधेह्यास्मिन् वस्तुनि क्लिन्न रूपिणि ।। नमः ।।
''तद्रूपिण्यैकरस्यत्वं कृत्वा ह्येतत्स्वरूपिणि ।
भूत्वा परामृताकारा मयि चित्स्फुरणं कुरु ।। नमः ।।
''ऐं वद वद वाग्वादिनि ऐं क्लीं क्लिन्नें क्लेदिनि क्लेदय क्लेदय महा क्षोमं कुरु कुरु क्लीं सौः मोक्षं कुरु कुरु ह्सौः स्हौः ।। नमः ।।

इस तरह अभिमन्त्रित किये गये विशेषार्ध्य-पात्र से थोड़ा अमृत लेकर-गुरु-पात्र में डालें तथा गुरु-त्रय की पूजा करें -

(क) ऐं ह्रीं श्रीं ह्स्ख्फ्रें हसक्षमलवरयूं सहक्षमलवरयीं ह्सौः स्हौः स्वरूप निरूपण हेतवे अमुकाम्बा सहित श्री गुरु पादुकां पूजयामि नमः

(ख) ऐं ह्रीं श्रीं हसक्षमलवरयूं सहक्षमलवरयीं ह्सौः स्हौः-स्वच्छ प्रकाश विमर्श हेतवे अमुकाम्बा सहित श्री गुरु पादुकां पूजयामि।

(ग) ऐं ह्रीं श्रीं ह्स्ख्फ्रें हसक्षमलवरयूं सहक्षा मलवरयीं ह्सौं स्हौः स्वात्माराम पञ्जर विलीन तेजसे कामुकाम्बा सहित अमुकानन्द नाथ श्री गुरु पादुकां पूजयामि ।

विशेषार्ध्यपात्र से थोड़ा अमृत लेकर आत्म पात्र में डालें तथा मूलाध ार में कुल-कुण्डलिनी का ध्यान करते हुए नीचे लिखें मन्त्रों को पढ़ें -

ऐं ह्रीं श्रीं कुण्डलिन्याधिष्ठितचिदग्नि-मण्डलाय नमः
ऐं ह्रीं श्रीं मूलं पुण्यं जुहोमि स्वाहा,
ऐं ह्रीं श्रीं मूलं पापं जुहोमि स्वाहा
ऐं ह्रीं श्रीं मूलं कृत्यं जुहोमि स्वाहा
ऐं ह्रीं श्रीं मूलं अकृत्यं जुहोमि स्वाहा
ऐं ह्रीं श्रीं मूलं संकल्पं जुहोमि स्वाहा
ऐं ह्रीं श्रीं मूलं विकल्पं जुहोमि स्वाहा

ऐं ह्रीं श्रीं मूलं धर्मं जुहोमि स्वाहा
ऐं ह्रीं श्रीं मूलं अधर्मं जुहोमि स्वाहा
ऐं ह्रीं श्रीं मूलं मन्त्र-अधर्मं जुहोमि स्वाहा वौषट्
ऐं ह्रीं श्रीं पूर्व प्राण बुद्धि देंह धर्माधिकारत: जाग्रत स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पदभ्यामुदरेण शिश्ना यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा ।
श्रीं ह्रीं श्रीं आर्द्रं ज्वलति ज्योतिरहमस्मि ज्योतिर्ज्वलति ब्रह्माहस्मि योऽ हमस्मि ब्रह्माहमस्मि अहमस्मि ब्रह्माहमस्मि अहमेवाहं मां जुहोमि स्वाहा ।

उपरोक्त मन्त्रों के द्वारा स्वयं को सत्यात्मा शिव-शक्ति के रूप में प्रतिष्ठत होने की भावना करें । विशेषार्ध्य पात्र से क्षीर लेकर अपनी जिह्वा पर रखें और भावना करें कि अमृत से चिदग्नि-रूपी कुण्डलिनी शक्ति संतृप्त हो रही है । विसर्जन काल तक शंख और विशेषार्घ्यपात्र का न उठावें ।

भुवनेश्वरी पूजा

भुवनेश्वरी-रहस्य-विवेचना -
मकार रूपी तेजसात्मक अग्नि के अष्टमांश में आकाश तत्वात्मक "हं" बीज के प्रभावानुगत होने से माया बीज (ह्रीम्) की उत्पत्ति हुई है। इस बीज में विद्या के प्रभाव से पूर्वाम्नायात्मक उन्मनी, पूर्णेश्वरी तथा भुवनेश्वरी के अनेकानेक मन्त्रों का अँकुरण हुआ है। इनमें भुवन सुन्दरी भुवनेश्वरी का पंचाक्षरी मन्त्र सर्व प्रमुख है। यथा- "ह्रीं सिद्धयै नम:" भुवनेश्वरी का तन्त्र- ग्रन्थों में निम्नलिखित ध्यान उल्लेखित है-

(क) "भजे भुवन सुन्दरीमरुण नील शुभ्रानना ।
त्वयां त्रिनयनांबुजां धृतवरत्रिशूलांकुशम् ।।
सुपाशं डमरू करामपदां सरोज स्थिताम् ।
(ख) उद्यद्दि नद्युतिमिन्दु किरीटां तुङ्कुचान्नयनत्रय युक्ताम् ।

स्मेर मुखीं वरदाङ्कश पाशा भीतिकराम्प्रभजे भुवनेशीम् ।।

भैरवाज्ञा

ॐ श्री गुरो दक्षिणामूर्ते भक्तानुग्रह कारक ।
अनुज्ञां दहि मे भगवन श्री भुवनार्चनाय मे ।।
अतिक्रूर महाकाय कल्पान्तदहनोपम ।
भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि ।।

देवी -आज्ञा

श्रीं ह्रीं श्रीं सविन्मये परे देवि परामृत रुचिप्रिये ।
अनुज्ञां भुवने देहि परिवारार्चनाय मे ।।

यन्त्र-निर्माणादि

स्वर्ण-पत्र, रजत-पत्र या ताम्र-पत्र पर केसर, जावित्री, कपूर तथा लाल चन्दन की स्याही बनाकर अनार की कलम से निम्नलिखित यन्त्र का निर्माण करें ।
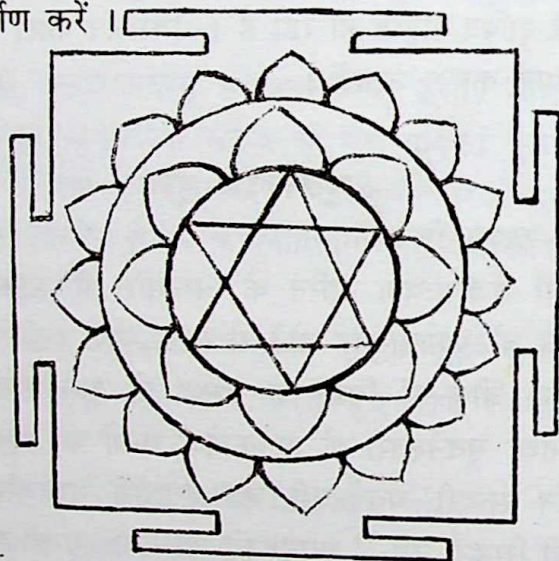
यन्त्र के निर्माण के पश्चात् निम्नलिखित मन्त्र से यन्त्र में भगवती भुवनेश्वरी देवता की प्राण-प्रतिष्ठा करें ।

प्राण-प्रतिष्ठा

शुद्धासन पर पूर्वाभिमुख बैठकर हाथ में जल लेकर नीचे लिखे विनियोग को पढ़ें तथा जल को भूमि पर छोड़ दें ।

यन्त्र निर्माण करते समय ह्रीं मन्त्र का उच्चारण करते रहें ।

विनियोग

ॐ अस्य श्री प्राण-प्रतिष्ठा-मन्त्रस्य ब्रह्म-विष्णु-रुद्र-ऋषयः , ऋक्यजुर्सामानि छन्दासि, प्राण-शक्तिर्देवता आं बीजं ह्रीं शक्तिः क्रों कीलकं प्राण-स्थापने विनियोगः ।

ऋष्यादि न्यास-

ॐ ब्रह्म-विष्णु-रुद्र ऋषिभ्यो नमः शिरसि,

ॐ ऋक् यजुर्सामानि छन्देभ्यो नमः मुखे

ॐ प्राण-शक्तिर्देवतायै नमः हृदि,

ॐ आं बीजाय नमः गुह्ये

ॐ ह्रीं शक्तये नमः पादयोः

ॐ क्रों कीलकाय नमः नाभौ

ॐ प्राण-स्थापने विनियोगाय नमः स्वांगे ।

सामने चौकी या पाटी पर लाल वस्त्र बिछाकर पुष्पों का आसन दें उसके ऊपर यन्त्र को स्थापित करें ।

अब बायाँ हाथ अपनी छाती पर रख कर दाहिना हाथ यन्त्र के मध्य भाग में रखकर निम्नलिखित मन्त्र को 5 बार या सात बार पढ़े ।

मन्त्र-ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं ॐ हंसः यन्त्राधिष्ठात्री श्री भुवनेश्वरी देवतायाः प्राणाः इह प्राणाःॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं ॐ हंसः यंत्राधिष्ठात्री श्री भुवनेश्वरी देवतायाः जीव इह स्थितः, ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं ॐ हंसः यन्त्राधिष्ठात्री श्री भुवनेश्वरी देवतायाः सर्वेन्द्रियाणि वाङ् मनः त्वक् चक्षुः श्रोत्र घ्राण-प्राण पाद उपस्थादि अंगानि इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ।''

(सात बार पढ़ें)

''ॐ असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राण मिह धेहि भोगम् । ज्योक्पश्येम सुर्यमुच्चरन्तमनुमते मृडया नस्स्वास्ति ।।''

(सात बार पढ़ें)

भुवनेश्वरी-पूजा-विधि

सर्व प्रथम साधक को दहरा आकाश अर्थात् हृदय-कमल में भगवती भुवनेश्वरी का मानसिक पूजन करना चाहिये । यथा-

पूर्वादि केसरों में दक्षिण-क्रम से

ॐ जयायै नमः, ॐ विजयायै नमः,

ॐ आजितायै नमः, ॐ अपराजितायै नमः,

ॐ नित्यायै नमः, ॐ विलासिन्यै नमः,

ॐ दोग्ध्र्यै नमः, ॐ अघोरायै नमः,

ॐ मंगलायै नमः, ॐ ह्रीं सर्वशक्ति कमलासनाय नमः

(मध्य में)

विनियोग- हाथ में जल लेकर नीचे लिखे विनियोग को पढ़ें तथा जल को भूमि पर छोड़ दें ।

"ॐ अस्य श्री भुवनेश्वरी मन्त्रस्य शक्ति ऋषिः गायत्री छन्दः श्री भुवनेश्वरी देवता हकारो बीजं ईकारः शक्तिः रेफः कीलकम् सर्वाभीष्ट सिद्धयर्थें विनियोगः ।

ऋष्यादि न्यास- ॐ शक्ति-ऋषये नमः शिरसि,

ॐ गायत्री छन्दसे नमः मुखे,

ॐ श्री भुवनेश्वरी देवतायै नमः हृदि,

ॐ हः कराय बीजाय नमः गुह्ये,

ॐ ईकाराय शक्त्यै नमः पाद्यो,

ॐ रकराय कीलकाय नमः सर्वांगे ।

पूर्व से पश्चिम की ओर न्यास करें ।

मन्त्र-न्यास- ॐ हल्लेखायै नमः शिरसि

ऐं गगनायै नमः वदने

ऊं रक्तायै नमः हृदि

ईं करालिकायै नमः गुह्ये

अं महोष्छुष्मायै नमः पादयोः

करन्यास-

ह्राँ अँगुष्ठाभ्यानम:

ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा

ह्रूं मध्यमाभ्यां वषट्

ह्रैं अनामिकाभ्यां हूम्

ह्रौं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्

ह्र: कस्तल कर-पृष्ठाभ्यां अस्त्रायफट्

हृदयादि-न्यास-

ह्राँ हृदयाय नम:

ह्रीं शिरसे स्वाहा

ह्रूं शिखायै वषट्

ह्रैं कवचाय हूम्

ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्

ह्र: अस्त्राय फट् ।

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं गायत्री सहित ब्रह्मणे नम: ललाट

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं माहेश्वरी सहित विष्णवे नम: दायाँ कपोल

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं वागीश्वरी सहित महेश्वराय नम: बायाँ कपोल

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं श्री सहित धनपतये नम: बायाँ कान

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं रति सहित स्मराय नम: मुख-मण्डल

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं पुष्टि सहित गणपतये नम: दाहिना कान

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं शंख निधये नम: दक्षिण गला से कान तक

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं पद्म निधये नम: बायें गला से कान तक

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं भुवनेश्वरी देवतायै नम: दक्षिण-वाम स्तन से दक्षिण वाम भाग , नाभि पर्यन्त ।

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं ब्राह्मयै नम: - ललाट

ॐ ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं माहेश्वर्यै नम:- बायाँ कन्धा

ॐ ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कौमार्यै नम:- बायाँ पार्श्व

ॐ ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं वैष्णव्यै नम: - जठर में

ॐ ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं वाराह्यै नम: - दायाँ पार्श्व

ॐ ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं इन्द्राण्यै नमः - दायाँ कन्धा

ॐ ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं चामुण्डायै नमः - दायाँ गला

ॐ ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्म्यै नमः - हृदय

पुनः "ह्रीं" मन्त्र से व्यापक न्यास करें ।

ध्यान - उद्यद्दि नद्युतिमिन्दु किरीटां तुङ्कुचान्नयनत्रय युक्ताम् ।
स्मेर मुखीं वरदाङ्कश पाशा भीतिकराम्प्रभजे भुवनेशीम् ।।

भैरवाज्ञा

ॐ श्री गुरो दक्षिणामूर्ते भक्तानुग्रह कारक ।
अनुज्ञां दहि मे भगवन श्री भुवनार्चनाय मे ।।
अतिक्रूर महाकाय कल्पान्तदहनोपम ।
भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि ।।

देवी -आज्ञा

श्रीं ह्रीं श्रीं सविन्मये परे देवि परामृत रुचिप्रिये ।
अनुज्ञां भुवने देहि परिवारार्चनाय मे ।।

आवाहन

आवाहन मुद्रा द्वारा श्री भुवनेश्वरी देवी का आवाहन करें -

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं श्री भुवनेश्वरी देव्यम्बामावाहयामि नमः ।

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं श्री भुवनेश्वरी देव्यम्बा ह्रीं संस्थापिता भव,
(संस्थापनी मुद्रा दिखावें ।)

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं श्री भुवनेश्वरी देव्यम्बा ह्रीं सन्निधापिता भव,
(सन्निधापिनी मुद्रा दिखावें ।)

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं श्री भुवनेश्वरी देव्यम्बा ह्रीं सनिरुद्धाभव ।
(सनिरुद्धनी मुद्रा दिखावें ।)

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं श्री भुवनेश्वरी देव्यम्बा ह्रीं सम्मुखी भव,
(सम्मुखी मुद्रा दिखावें ।)

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं श्री भुवनेश्वरी ह्रीं अवगुण्ठिता भव,
(अवगुण्ठन मुद्रा दिखावें ।)

अब नमस्कार मुद्रा, धेनुमुद्रा, योनि मुद्रा दिखावें तथा इष्ट-देवता

का यथोपचार (पंचोपचार, षोडशोपचार अथवा चतुष्ठ्युपचार) पूजन करें । यथा-

पंचोपचार-पूजन

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं श्री भुवनेश्वरी देव्यम्बा पाद्यं समर्पयामि नमः

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं श्री भुवनेश्वरी देव्यम्बा अर्घ्य समर्पयामि नमः

(गन्धादिमिश्रित जल)

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं श्री भुवनेश्वरी देव्यम्बा आचमनीयं समर्पयामि नमः

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं श्री भुवनेश्वरी देव्यम्बा स्नानीयं समर्पयामि नमः

(जल)

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं श्री भुवनेश्वरी देव्यम्बा सकुचोत्तरीय अरुण वस्त्रं समर्पयामि नमः (वस्त्रादि)

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं श्री भुवनेश्वरी देव्यम्बा सिन्दूराभूषणं समर्पयामि नमः

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं श्री भुवनेश्वरी देव्यम्बा कुसुम-माला: समर्पयामि नमः (पुष्प माला)

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं श्री भुवनेश्वरी देव्यम्बा धूपं आघ्रापयामि नमः (धूप)

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं श्री भुवनेश्वरी देव्यम्बा दीपं दर्शयामि नमः

एक पात्र में दीपों को सजाकर ह्रीं मन्त्र से जलावें तथा नीचे लिखे मन्त्र से अभिमन्त्रित कर चक्र मुद्रा दिखावें । यथा-

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं ह्रीं ग्लूं स्लूं म्लूं प्लूं न्लूं ह्रीं श्रीं

घण्टा-पूजन-

गन्ध-पुष्पाक्षत लेकर नीचे लिखे मन्त्र से घण्टा का पूजन करें-

ॐ ह्रीं श्रीं जगदध्वनि-मन्त्र मातः स्वाहा । अब आरती पात्र उठाकर घण्टा बजाते हुए आरती दिखावें -

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं भुवनेश्वर्यै मङ्गलारार्तिकं कल्पयामि नमः

समस्त चक्रेशीयुते देवी नवात्मिके ।
आरर्तिकमिदं तुभ्यं गृहाण मम सिद्धये ।।

अब देवी के आगे अपने दक्षिण भाग में ○ मण्डल बनाकर, उस आधार पर नैवेद्य-पात्र स्थापित करें, मूल मन्त्र से प्रोक्षण कर धेनुमुद्रा

दिखावें । पुनः मूल मन्त्र से तीन बार अभिमन्त्रित कर आपोशन दें-
ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं श्री भुवनेश्वरी देव्यम्बा नैवेद्यं समर्पयामि नमः
अब आचमनार्थ जल दें -
ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं श्री भुवनेश्वरी देव्यम्बा एतानि आचमनियानि समर्पयामि नमः (तीन बार आचमन करावें)
पुनः मुख-शुद्धि हेतु नीचे लिखे मन्त्र को पढ़कर इलायची लवंग, कपूर, सुपारी-युक्त पान का पत्ता अर्पित करें -
ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं श्री भुवनेश्वरी देव्यम्बा सलवंगेला कर्पूर -पुगी फल ताम्बुलं समर्पयामि नमः ।
अब योनि मुद्रा प्रदशित कर नमस्कार करें ।
अब- नीचे लिखे मन्त्रों से षट्कोण-स्थित बिन्दु के ऊपर-गुरु-मण्डल का पूजन अर्चन करें । यथा-
ॐ परौघेभ्यो नमः - (पुष्पांजलि अर्पित करें)
ऐं ह्रीं श्रीं ह्स्ख्फ्रें हसक्षमलवर यूं ह्सौः सहक्षमलवरयीं
स्हौः श्रीविद्यानन्द नाथात्मक चर्यानन्दनाथ श्री महापादुकां पू० तर्पयामि नमः
वाम कोण से आरम्भ करें ।
ॐ उड्डीशानन्द श्री पादुकां पू० तर्पयामि नमः
ॐ प्रकाशानन्द नाथ श्री पादुकां पू० तर्पयामि नमः
ॐ विमर्शानन्द नाथ श्री पादुकां पू० तर्पयामि नमः
ॐ आनन्दानन्द नाथ श्री पादुकां पू० तर्पयामि नमः
ॐ पूर्णानन्द नाथ श्री पादुकां पू० तर्पयामि नमः
ॐ मित्रेशानन्द नाथ श्री पादुकां पू० तर्पयामि नमः
ॐ षष्ठीशानन्द नाथ श्री पादुकां पू० तर्पयामि नमः
ॐ ज्ञानानन्द नाथ श्री पादुकां पू० तर्पयामि नमः
ॐ स्वाभावानन्द नाथ श्री पादुकां पू० तर्पयामि नमः
ॐ सुभगानन्द नाथ श्री पादुकां पू० तर्पयामि नमः
श्रीं ह्रीं श्री दिव्यौघ सिद्धौघ मानवौघेभ्यो नमः (पूष्पार्पित करें)

ॐ परप्रकाशानन्द नाथ श्री पादुकां पू० तर्पयामि नमः
ॐ गगनानन्द नाथ श्री पादुकां पू० तर्पयामि नमः
ॐ परशिवानन्द नाथ श्री पादुकां पू० तर्पयामि नमः
ॐ कौलेश्वरानन्द नाथ श्री पादुकां पू० तर्पयामि नमः
ॐ शुक्लदेव्यम्बा श्री पादुकां पू० तर्पयामि नमः
ॐ कुलेश्वरानन्द नाथ श्री पादुकां पू० तर्पयामि नमः
ॐ विश्वानन्द नाथ श्री पादुकां पू० तर्पयामि नमः
ॐ विमलानन्द नाथ श्री पादुकां पू० तर्पयामि नमः
ॐ मदनानन्द नाथ श्री पादुकां पू० तर्पयामि नमः
ॐ भुवनानन्द नाथ श्री पादुकां पू० तर्पयामि नमः
ॐ लीलाम्बा श्री पादुकां पू० तर्पयामि नमः
ॐ स्वात्मानन्द नाथ श्री पादुकां पू० तर्पयामि नमः
ॐ प्रियानन्द नाथ श्री पादुकां पू० तर्पयामि नमः

सिद्धोघगुरु –

ॐ भोगानन्द नाथ श्री पादुकां पू० तर्पयामि नमः
ॐ क्लिन्नानन्द नाथ श्री पादुकां पू० तर्पयामि नमः
ॐ समयानन्द नाथ श्री पादुकां पू० तर्पयामि नमः
ॐ सहजानन्द नाथ श्री पादुकां पू० तर्पयामि नमः

पुनः स्वगुरु, परम गुरु तथा परमेष्ठि गुरु की पूजा करें ।

प्रथमावरण-पूजा

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं सविन्मये परे देवि परामृत रुचिप्रिये ।
अनुज्ञां भुवने देहि परिवारार्चनाय मे ।।

(योनिमुद्रा से प्रणाम करें)

श्रीं ह्रीं श्रीं अं अणिमासिद्धयै नमः- श्री पादुकां पू०त०नमः
श्रीं ह्रीं श्रीं लं लधिमासिद्धयै नमः -श्री पादुकां पू०त०नमः
श्रीं ह्रीं श्रीं मं महिमा सिद्धयै नमः -श्री पादुकां पू०त०नमः
श्रीं ह्रीं श्रीं ईं ईशित्व सिद्धयै नमः - श्री पादुकां पू०त०नमः
श्रीं ह्रीं श्रीं वं वशित्व सिद्धयै नमः- श्री पादुकां पू०त०नमः

श्रीं ह्लीं श्रीं पं प्राकाम्य सिद्ध्यै नमः- श्री पादुकां पू०त०नमः
श्रीं ह्लीं श्रीं भुं भुक्ति सिद्ध्यै नमः- श्री पादुकां पू०त०नमः
श्रीं ह्लीं श्रीं ई इच्छा सिद्ध्यै नमः- श्री पादुकां पू०त०नमः
श्रीं ह्लीं श्रीं पं प्राप्ति सिद्ध्यै नमः- श्री पादुकां पू०त०नमः
श्रीं ह्लीं श्रीं सं सर्वकामना सिद्ध्यै नमः- श्री पादुकां पू०त०नमः
श्रीं ह्लीं श्रीं अभीष्ट सिद्धि मे देहि शरणागत वत्सले ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम् ।।
(योनि मुद्रा से प्रणाम करें)

श्रीं ह्लीं श्रीं सविन्मये परे देवि परामृत रुचिप्रिये ।
अनुज्ञां भुवने देहि द्वितीयावरणार्चनाय मे ।।

पूजा- पूर्वादि केसरों पर क्रमशः निम्नलिखित देवियों का पूजन-अर्चना करें -

ॐ जं जयायै नमः पादुकाम पू०त०नमः (पूर्व में)
ॐ विं विजयायै नमः पादुकाम पू०त०नमः(अग्निकोण में)
ॐ अं अजितायै नमः पादुकाम पू०त०नमः (दक्षिण में)
ॐ अं अपराजितायै नमः पादुकाम पू०त०नमः (नैऋत्य में)
ॐ निं नित्यायै नमः पादुकाम पू०त०नमः(पश्चिम में)
ॐ विं विलासिन्यै नमः पादुकाम पू०त०नमः (वायव्य में)
ॐ दों दोग्ध्र्यै नमः पादुकाम पू०त०नमः (उत्तर में)
ॐ अं अघोरायै नमः पादुकाम पू०त०नमः(ईशान में)
ॐ मं मंगलायै नमः पादुकाम पू०त०नमः (मध्य में)

श्रीं ह्लीं श्रीं अभीष्ट सिद्धि मे देहि शरणागत वत्सले ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं द्वितीयावरणार्चनम् ।।
(योनि मुद्रा से प्रणाम करें)

श्रीं ह्लीं श्रीं सविन्मये परे देवि परामृत रुचिप्रिये ।
अनुज्ञां भुवने देहि तृतीयावरणार्चनाय मे ।।
(योनि मुद्रा से प्रणाम करें)

कर्णिकाओं में निम्नलिखित मन्त्रों से पूजन करें-

ह्राँ हृदयाय नमः -हृदय शक्ति श्री पादुकाम पूजयामि-तर्पयामि
ह्रीं शिरसे स्वाहा-शिरःशक्ति श्री पादुकाम पूजयामि-तर्पयामि
ह्रूं शिखायै वषट्-शिखा-शक्ति श्री पादुकाम पूजयामि-तर्थयापि
ह्रैं कवचाय हूम् -कवच-शक्ति श्री पादुकाम पूजयामि-तर्पयामि
ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्-नेत्र-शक्ति श्री पादुकाम पूजयामि तर्यदामि
ह्रः अस्त्राय फट्-अस्त्र-शक्ति श्री पादुकाम पूजयामि तर्पयामि

पुनश्च

ॐ ह्रीं हृल्लेखायै नमः श्री पादुकाम पू०त० नमःमध्य में
एं गगनायै नमः श्री पादुकाम पू०त० नमः पूर्व में
ऊं रक्तायै नमः श्री पादुकाम पू०त० नमः दक्षिण में
ईं करालिकायै नमः श्री पादुकाम पू०त० नमः उत्तर में
अं महोष्छुष्मायै नमः श्री पादुकाम पू०त० नमः पश्चिम में

श्रीं ह्रीं श्रीं अभीष्ट सिद्धि मे देहि शरणागत वत्सले ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं तृतीयावरणार्चनम् ।।

(योनि मुद्रा से प्रणाम करें)

श्रीं ह्रीं श्रीं सविन्मये परे देवि परामृत रुचिप्रिये ।
अनुज्ञां भुवने देहि तुरीयावरणार्चना मे ।।

(योनि मुद्रा से प्रणाम करें)

पुनः षट्कोण में पूर्वादि क्रम से निम्नलिखित देवताओं की पूजा अर्चना करें -

ॐ गायत्र्यै नमः ॐ ब्रह्मणे नमः,
ॐ सावित्र्यै नमः ॐ विष्णवे नमः ।
ॐ ॐ सरस्वत्यै नमः ॐ रुद्राय नमः ।

वाह्य कोणों में ॐ श्रियै नमः ॐ धनपतये नमः
ॐ रत्यै नमः ॐ स्मराय नमः (पश्चिम में)
ॐ पुष्ट्यै नमः ॐ गणपतये नमः (ईशान में)

षट्कोण के दोनों पार्श्व में -

ॐ शंख निधये नमः ॐ पद्म निधये नमः,

श्रीं ह्रीं श्रीं अभीष्ट सिद्धि मे देहि शरणागत वत्सले ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं तुरीयावरणार्चनम् ।।
(योनि मुद्रा से प्रणाम करें)

श्रीं ह्रीं श्रीं सविन्मये परे देवि परामृत रुचिप्रिये ।
अनुज्ञां भुवने देहि पंचमावरणार्चनाय मे ।।
(योनि मुद्रा से प्रणाम करें)

पुनः षडंगों का पूजन करें -

यथा - ह्रां हृदयाय नमः हृदय-शक्ति श्री पादुकां पू०त०नमः
ह्रीं शिरसे स्वाहा- शिरः शक्ति ,,
ह्रूं कशिखायै बषट् - शिखा शक्ति ,,
ह्रैं कवचाय हूम्-कवच-शक्ति ,,
ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् -नेत्र-शक्ति ,,
ह्रः अस्त्राय फट्- अस्त्र-शक्ति ,,

पूर्वादि अष्ट पद्म-दलों में आँगिक देवियों का पूजन करें । यथा-

ॐ अनंग कुसुमायै नमः श्री अनंग कुसुमा श्री पादुकां पू०त०नमः
ॐ अनंग मेखलायै नमः श्री अनंग मेखला श्री पादुकां पू०त०नमः
ॐ अनंग मदनायै नमः श्री अनंग मदना श्री पादुकां पू०त०नमः
ॐ अनंग मदनातुरायै नमः श्री अनंग मदना श्री पादुकां पू०त०नमः
ॐ भुवन पालायै नमः श्री भुवन पाला -श्री पादुकां पू०त०नमः
ॐ अनंग वेगायै नमः श्री अनंग वेगा- श्री पादुकां पू०त०नमः
ॐ शशि रेखायै नमः श्री शशि रेखा श्री पादुकां पू०त०नमः
ॐ अनंग मालिन्यै नमः श्री अनंग मालिनी श्री पादुकां पू०त०नमः

श्रीं ह्रीं श्रीं अभीष्ट सिद्धि मे देहि शरणागत वत्सले ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं पंचमावरणार्चनम् ।।
(योनि मुद्रा से प्रणाम करें)

श्रीं ह्रीं श्रीं सविन्मये परे देवि परामृत रुचिप्रिये ।
अनुज्ञां भुवने देहि षष्ठमावरणार्चनाय मे ।।

(योनि मुद्रा से प्रणाम करें)

पुनः षोडश-दलों में पूर्वादि क्रम से निम्नलिखित देवताओं की पूजा-अर्चना करें -यथा-

ॐ अं करालिन्यै नमः कराली श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
ॐ आं विकरालिन्यै नमः विकराली श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
ॐ इं उमायै नमः उमा श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
ॐ ईं सरस्वत्यै नमः सरस्वती श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
ॐ उं श्रियै नमः नमः श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
ॐ ऊं दुर्गायै नमः दुर्गा श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
ॐ ऋं उषायै नमः उषा श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
ॐ ॠं लक्ष्म्यै नमः लक्ष्मी श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
ॐ लृं श्रुत्यै नमः श्रुति श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
ॐ लृं स्मृत्यै नमः स्मृति श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
ॐ एं धृत्यै नमः धृति श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
ॐ ऐं श्रद्धायै नमः श्रद्धा श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
ॐ ओं मेधायै नमः मेधा श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
ॐ औं मत्यै नमः मति श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
ॐ अं कान्त्यै नमः कान्ति श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
ॐ अः आर्यायै नमः आर्या श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः

श्रीं ह्रीं श्रीं अभीष्ट सिद्धि मे देहि शरणागत वत्सले ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं षष्ठमावरणार्चनम् ।।

(योनि मुद्रा से प्रणाम करें)

श्रीं ह्रीं श्रीं सविन्मये परे देवि परामृत रुचिप्रिये ।
अनुज्ञां भुवने देहि सप्तमावरणार्चनाय मे ।।

(योनि मुद्रा से प्रणाम करें)

पुनः, पद्म दलों के वाह्य भागों में पूर्वादि क्रम से निम्नलिखित देवी -शक्तियों की पूजा-अर्चना करें-

ॐ अनंगरूपायै नमः अनंगरूपा श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः

ॐ अनंग मदनायै नमःअनंगमदनाश्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
ॐ मदनातुरायै नमःमदनातुरा ,,
ॐ गगन वेगायै नमः गगनवेगा ,,
ॐ भुवन पालिकायै नमः -भुवन पालिका ,,
ॐ सर्व शशि रेखायै नमः - शशि रेखा ,,
ॐ अनंग वेदनायै नमः - अनंग वेदना ,,
ॐ अनंग मेखलायै नमः - अनंगमेखला ,,

श्रीं ह्रीं श्रीं अभीष्ट सिद्धि मे देहि शरणागत वत्सले ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं सप्तमावरणार्चनम् ।।

(योनि मुद्रा से प्रणाम करें)

श्रीं ह्रीं श्रीं सविन्मये परे देवि परामृत रुचिप्रिये ।
अनुज्ञां भुवने देहि अष्टमावरणार्चनाय मे ।।

(योनि मुद्रा से प्रणाम करें)

इसके बाद पूर्वादि क्रम से लोक पालादि का पूजन करें -यथा-

ॐ लां इन्द्राय देवाधिपतये सायुधाय सवाहनाय समुद्रा सशक्ति सपरिवाराय नमः ।

ॐ रं अग्नये तेजोधिपतये सायुधाय सवाहनाय समुद्रा सशक्ति सपरिवाराय नमः ।

ॐ यं यमाय प्रेताधिपतये सायुधाय सवाहनाय समुद्रा सशक्ति सपरिवाराय नमः ।

ॐ क्षां निर्ऋतये रक्षोधिपतये सायुधाय सवाहनाय समुद्रा सशक्ति सपरिवाराय नमः ।

ॐ वं वरुणाय जलाधिपतये सायुधाय सवाहनाय समुद्रा सशक्ति सपरिवाराय नमः ।

ॐ वां वायवे प्राणाधिपतये सायुधाय सवाहनाय समुद्रा सशक्ति सपरिवाराय नमः ।

ॐ सं सोमाय ताराधिपतये सायुधाय सवाहनाय समुद्रा सशक्ति सपरिवाराय नमः ।

ॐ हां ईशानाय गणाधिपतये सायुधाय सवाहनाय समुद्रा सशक्ति सपरिवाराय नमः ।

ॐ आं ब्रह्मणे प्रजाधिपतये सायुधाय सवाहनाय समुद्रा सशक्ति सपरिवाराय नमः ।

(ईशान और पूर्व के मध्य में)

ॐ ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये सायुधाय सवाहनाय समुद्रा सशक्ति सपरिवाराय नमः ।

(निऋृंति और पश्चिम के मध्य में)

श्रीं ह्रीं श्रीं अभीष्ट सिद्धि मे देहि शरणागत वत्सले ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं अष्टमावरणार्चनम् ।।

(योनि मुद्रा से प्रणाम करें)

श्रीं ह्रीं श्रीं सविन्मये परे देवि परामृत रुचिप्रिये ।
अनुज्ञां भुवने देहि नवमावरणार्चनाय मे ।।

(योनि मुद्रा से प्रणाम करें)

इसके बाद चतुरस्त्र के बाह्य भाग में पूर्वादि क्रम से निम्नलिखित मन्त्रों द्वारा अस्त्र शस्त्रों की पूजा-अर्चना करें -

यथा-

ॐ वं वज्राय नमः - वज्र श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
ॐ शं शक्तये नमः - शक्ति श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
ॐ दं दण्डाय नमः - दण्ड श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
ॐ खं खड्गाय नमः - खड्ग श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
ॐ पां पाशाय नमः - पाश श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
ॐ अं अंकुशाय नमः -अंकुश श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
ॐ गं गदायै नमः - गदा श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
ॐ शूं शूलाय नमः - शूल श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
ॐ चं चक्राय नमः - चक्र श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः

श्रीं ह्रीं श्रीं अभीष्ट सिद्धि मे देहि शरणागत वत्सले ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं अष्टमावरणार्चनम् ।।

(योनि मुद्रा से प्रणाम करें)

वटुकादि देवताओं को बलि प्रदान करें । यथा-
ऐं व्यापकमण्डलाय नमः से भूमि को शुद्ध कर ॐ ह्रीं सर्व विघ्नकृद्भ्यः सर्वभूतेभ्यो हुं फट् स्वाहां बायें हाथ से छोटिका मुद्रा प्रदर्शित करे ।

जप-प्रकरण

पूजनोपरान्त साधक पुनः "ह्रां, ह्रीं, ह्रूँ, ह्रैं, ह्रौ, ह्रः"
मन्त्रों से कर-न्यास एवं षडंग-न्यास कर 'गायत्री-मन्त्र का । माला, वटुक-भैरव मन्त्र का एक माला जप करें । फिर, विनियोग, ऋष्यादि न्यास करने के बाद रुद्राक्ष, रक्त-चन्दन, कमलाक्ष या स्फटिक माला से भगवती भुवनेश्वरी के 'मूल'मंत्र का 101 माला जप प्रति रात करें । पुनः एक माला गायत्री तथ 1 माला वटुक भैरव के मन्त्र का जप करें । प्रातः काल में स्नानादि से निवृत्त हो मातृका-न्यास एवं भूत-शुद्धि कर 5 माला भुवनेश्वरी के मन्त्र का जप करें । प्रत्येक अष्टमी (कृष्ण-पक्ष तथा शुक्ल-पक्ष दोनों) की रात में नारियल की बलि-प्रदान करें । साधक प्रयास करे कि प्रति-दिन -(रात में ही) जप के बाद 108 बार हवन करे ।

जप से पूर्व-माला का पूजन करे- यथा-

"ॐ ऐं अक्षमालाधिपतये सुसिद्धिं देहि-देहि सर्व मन्त्रार्थ-साधिनी साधय-साधय स्वाहा" । "मा माले-महामाये सर्व शक्ति स्वरूपिणि चतुर्वगस्त्वन्यस्तस्यतां मे सिद्धिदा भव ।।
ऐ अक्षमालाधिपतये नमः -
अब माला को प्रणाम कर गौमुखी में रखकर जप करे । जपान्त में हाथ में जल लेकर नीचे लिखे मन्त्र को पढ़ते हुए कृत-जप भगवती के बायें हाथ में अर्पित करें -
ॐ गुह्यातिगुह्य गोप्त्रीत्वं गृहाण स्मत्कृतं जपं ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रासादात् भुवनेश्वरी ।।
एक बार यन्त्र में भगवती का आह्वान करने के बाद रोज-रोज

आह्वान करने की आवश्यकता नहीं है।

पंचोपचार पूजन भी अलग-अलग आवरणगत देव-देवियों का न कर निम्नलिखित मन्त्र द्वारा ही सम्पन्न करें -

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं साङ्गायै सायुधायै समुद्रायै सशक्त्यै ससिद्ध्यै सवाहनायै सपरिवारायै भगवती परम भट्टारिकायै भुवनेश्यैं देव्यम्बायै नमः ।

उपर्युक्त मन्त्र द्वारा ही पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नानींय, स्थापयामि सन्निरुद्ध्यामि सन्निधापयामि ।

धूप-दीप नैवेद्य आदि अर्पित करें ।

मन्त्र- जागृति के लक्षण-

रोमाञ्च होना, जप काल में ही-ध्यानस्थ होने पर विभिन्न रूपों का स्वप्न-वत दर्शन होना मन्त्र-जागृति के लक्षण है। साधना काल में सदा भाक्ति भाव पूर्ण किन्तु निर्भय रहना चाहिए। विकट-दृश्य -परिदृश्यों से भय खाकर जपानुष्ठान का त्याग नहीं करना चाहिए। विशेष समस्या समाधान के लिए विज्ञ-पुरुष से निर्देश अवश्य लेना चाहिए।

भोग्य वस्तु प्राप्ति के लिए- अगर, तगर, खस की जड़, धान का लावा, घी, कमल का फूल, कमल-गट्टा, रक्त-चन्दन-मलय चन्दन -पंचमेवा, त्रिमधु तथा कपूर मिलाकर हवन करें । हवन समाप्ति पर अग्नि देव को भोजन के रूप में -छेना की बनी मिठाई दें । अस्तु

होम -प्रकरण

पूजा मण्डप के ईशान भाग में हवन कुण्ड का निर्माण करें । कुण्ड के चारो ओर रोली से चतुरस्त्र का निर्माण करें । मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए उसका निरीक्षण करें । सामान्य अर्घ्य पात्र से जल लेकर 'फट्' मन्त्र का उच्चारण करते हुए प्रोक्षण करें । "हूम्" मन्त्र से अवगुण्ठन की क्रिया करें । मध्यम दक्षिणोत्तर क्रम से तीन रेखायें खींचें तथा उन रेखाओं पर नीचे लिखे मन्त्रों से पूजन करें ।

ऐं ह्रीं श्री ब्रह्मणे नमः, ऐं ह्रीं श्री यमाय नमः, ऐं ह्रीं श्रीं सोमाय नमः, ऐं ह्रीं श्रीं रुद्राय नमः, ऐं ह्रीं श्रीं विष्णवे नमः, ऐं ह्रीं श्रीं इन्द्राय

नमः,

फिर अपने शरीरस्थ षडंगों का नीचे लिखे मन्त्रों से न्यास करना चाहिए। यथा-

ऐं ह्रीं श्रीं सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः
ऐं ह्रीं श्रीं स्वस्ति पूर्णाय शिरसे स्वाहा
ऐं ह्रीं श्रीं उत्तिष्ठ पुरुषाय शिखायै वषट्
ऐं ह्रीं श्रीं धूमव्यापिने कवचाय हूम्
ऐं ह्रीं श्रीं सप्त जिह्वाय नेत्र त्रपाय वौषट्
ऐं ह्रीं श्रीं धनुर्धराय अस्त्राय फंट् ।

कुण्ड के भीतर षट्कोणात्मक अग्नि-चक्र का निर्माण रोली से करके अग्नि कोण, वसु कोण तथा वायव्य कोण के मध्य में षडंग मन्त्र से दिशा और कुण्ड की पूजा पूर्ववत् करें । फिर, दक्षिण क्रम से दिगष्टक (आठ दिशाओं) तथा मध्य में क्रमशः नीचे लिखें मन्त्रों से पूजन करें ।

ऐं ह्रीं श्रीं पीतायै नमः ऐं ह्रीं श्रीं श्वेतायै नमः, ऐं ह्रीं श्रीं अरुणायै नमः, ऐं ह्रीं श्रीं कृष्णायै नमः, ऐं ह्रीं श्रीं धूम्रायै नमः, ऐं ह्रीं श्रीं तीव्रायै नमः, ऐं ह्रीं श्रीं स्फुलिंगिन्यै नमः, ऐं ह्रीं श्रीं रुचिरायै नमः ऐं ह्रीं श्रीं ज्वालिन्यै नमः ।

फिर पीठ के मध्य में नीचे लिखे मन्त्रों से पूजन करें ऐं ह्रीं श्रीं तं तमसे नमः, ऐं ह्रीं श्रीं रं रजसे नमः, ऐं ह्रीं श्रीं सं सत्वाय नमः, ऐं ह्रीं श्रीं आं आत्मने नमः, ऐं ह्रीं श्रीं अं अन्तरात्मने नमः, ऐं ह्रीं श्रीं पं परमात्मने नमः, ऐं ह्रीं श्रीं ज्ञानात्मने नमः ।

त्रिकोण में - ॐ ह्रीं वागीश्वरी वागीश्वराभ्यां नमः,का पूजन करें। अब समिधा लेकर कुण्ड में रखें, "फट" मन्त्र बोलते हुए देखते हुए प्रोक्षण करें ।

पुनः 'फट्' मन्त्र बोलते हुए कुश से ताड़न, "हूम्" मन्त्र से अवगुण्ठन कर धेनु मुद्रा दिखावें ।

फिर, नीचे लिखे मन्त्रों से अग्नि का आवाहन करें ।

ऐं ह्रीं श्रीं ॐ रं वैश्वानर जात वेद से इहावह लोहहिताक्ष सर्व कर्माणि साधय स्वाहा । अब अग्नि लेकर समिधा को प्रज्वलित करते हुए नीचे लिखे मन्त्र को पढ़ें -
ऐं ह्रीं श्रीं अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जात वेदं हुताशनम् । सुवर्ण वर्ण ममलं समिद्धं विश्वतोमुखं ।। पुनः ऐं ह्रीं श्रीं अत्त्ष्ठि हरित पिंगल लोहिताक्ष सर्व कर्माणि साधय मे देहि दापय स्वाहा । "ॐ ह्रीं" मन्त्र तीन बार बोलते हुए कुण्ड में अग्नि स्थापित करें । पुनः ज्वालिनी मुद्रा दिखाते हुए नीचे लिखे मन्त्र को पढ़ें "ऐं ह्रीं श्रीं चित्पिंगल हन हन दह दह पच-पच सर्वाज्ञा ज्ञापय स्वाहा-

प्रज्वलित अग्नि में घी डालते हुए नीचे लिखे मन्त्र को पढ़ें -
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं नमः अस्य होमाग्नेः गर्भाधान कर्म पूंसवन कर्म सीमन्तोन्नयन कर्म, जात-कर्म भुवनेश्वरीति नाम्ना नाम करण कर्म कल्पयामि नमः, ऐं ह्रीं श्रीं ऐं नमः अस्य भुवनेश्वर्याग्नेः अन्न प्राशन कर्म चौलकर्म उपनयन कर्म गोदान कर्म विवाह कर्म कल्पयामि नमः अक्षत से पूजन करें ।

सामान्य अर्घ्य-पात्र से जल लेकर मूल मन्त्र द्वारा अभिषिञ्चन करें तथा हाथ में लाल पुष्प लेकर निम्नलिखित ध्यान को पढ़कर अग्नि को प्रणाम करें ।

"त्रिनयनमरुणाप्तबद्धमौलिं सुशुक्लां
शुकमरुणमनेका कल्पमभ्भोजसंस्थम् ।
अभिमतवरशक्तिं स्वस्तिका भीति हस्तं
नमत कनक मालालंकृतांसं कृशानुम् ।।

ऐं ह्रीं श्रीं जातवेदसे नमः, ऐं ह्रीं श्रीं सप्तजिह्वायनमः,
ऐं ह्रीं श्रीं वैश्वानराय नमः, ऐं ह्रीं श्रीं अश्वोदराय नमः,
ऐं ह्रीं श्रीं विश्वमुखाय नमः, ऐं ह्रीं श्रीं कौमार तेजसे नमः,

पुष्पाक्षत् द्वारा नीचे लिखे मन्त्र से अग्नि की अर्चना करें ।
ऐं ह्रीं श्रीं ॐ वैश्वानर जातवेदसे इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि

साधय स्वाहा ।''

निम्नलिखित मन्त्रों द्वारा घी से आहुति दें -

ऐं ह्रीं श्रीं हिरण्यायै स्वाहा, हिरण्याया इदं न मम

ऐं ह्रीं श्रीं कनकायै स्वहा, कनकाया इंद न मम

ऐं ह्रीं श्रीं रक्तायै स्वाहा, रक्ताया इंद न मम

ऐं ह्रीं श्रीं कृष्णायै स्वाहा, कृष्णाया इदं न मम

ऐं ह्रीं श्रीं सुप्रभायै स्वाहा- सुप्रभाया इदं न मम

ऐं ह्रीं श्रींअतिरक्तायै स्वाहा-अतिरिक्ताया इदं न मम

ऐं ह्रीं श्रीं बहुरूपायै स्वाहा बहुरूपाया इदं न मम

पुनः प्रार्थना करें ।

ऐं ह्रीं श्रीं ॐ वैश्वानर जातवेदसे इहावह लोहिताक्ष सर्व कर्माणि साध य स्वाहा ।

ऐं ह्रीं श्रीं ॐ उत्तिष्ठ हरित पिंगल लोहिताक्ष सर्व कर्माणि साधय में देहि दापय स्वाहा ।

ऐं ह्रीं श्रीं ॐ चित्पिंगल हन-हन दह दह पच पच सर्वाज्ञा ज्ञापय स्वाहा ।

अब भुवनेश्वरी देवी का आवाहन करें-

ऐं ह्रीं श्रीं श्रीं ह्रीं श्रीं महा पद्म वनान्ते कारणान विग्रहे सर्व भूतहिते मातरेह्येहि भुवनेश्वरि ।। आवाहन मुद्रा दिखावें / पंचोपचार पूजन करें। श्रीं ह्रीं श्रीं सायुधायै सवाहनायै समुद्रायै ससिद्धयै, सशक्त्यै सावरण देवता सहितायै परम भट्टारिकायै भुवनेश्वर्यै देव्यम्बायै अत्र आवाहयामि

हवन

समिधा-प्लाश, अश्वत्थ, गूलर, न्यग्रोध की लकड़ी का प्रयोग समिधा रूप में करें । खील+ तिल+घी+त्रिमधु से हवन करें । तीन बार ''गं गणपतये नमः स्वाहा, मन्त्र से आहुति दें ।

ह्रीं भुवनेश्वर्यै नमः स्वाहा- (तीन बार)

ॐ परौघेभ्यो नमः स्वाहा- (तीन बार)

ॐ दिव्यौधेभ्यो नमः स्वाहा (तीन बार)

ॐ सिद्धौघेभ्यो नमः स्वाहा (तीन बार)
ॐ मानवौघेभ्यो नमः स्वहा (तीन बार)
ॐ हृल्लेखायै नमः स्वाहा (तीन बार)
ॐ एं गगनायै नमः स्वाहा (तीन बार)
ॐ ऊं रक्तायै नमः स्वाहा (तीन बार)
ॐ इं करालिकायै नमः स्वाहा (तीन बार)
ॐ अं महोच्छुष्मायै नमः स्वाहा (तीन बार)
ॐ जयायै नमः स्वाहा (तीन बार)
ॐ विजयायै नमः स्वाहा (तीन बार)
ॐ अजितायै नमः स्वाहा (तीन बार)
ॐ अपराजितायै नमः स्वाहा (तीन बार)
ॐ विलासिन्यै नमः स्वाहा (तीन बार)
ॐ दोग्ध्र्यै नमः स्वाहा (तीन बार)
ॐ नित्यायै नमः स्वाहा (तीन बार)
ॐ अघोरायै नमः स्वाहा (तीन बार)
ॐ मगलायै नमः स्वाहा (तीन बार)
ॐ ब्राह्म्यै नमः स्वाहा (तीन बार)
ॐ माहेश्वर्यै नमः स्वाहा (तीन बार)
ॐ कौमार्यै नमः स्वाहा (तीन बार)
ॐ वैष्णव्यै नमः स्वाहा (तीन बार)
ॐ वाराह्यै नमः स्वाहा (तीन बार)
ॐ इन्द्राण्यै नमः स्वाहा (तीन बार)
ॐ चामुण्डायै नमः स्वाहा (तीन बार)
ॐमहालक्ष्म्यै नमः स्वाहा (तीन बार)
ॐ अनिमादि सिद्धिभ्यो नमः स्वाहा (आठ बार)
ॐ अनंगकुसुमादिभ्यो नमः स्वाहा (आठ बार)
ॐ कराली न्यादिभ्यौ नमः स्वाहा (सोलह बार)
ॐ लं इन्द्राय नमः स्वाहा (तीन बार)

ॐ अग्नये नमः स्वाहा (तीन बार)

ॐ यं यमाय नमः स्वाहा (तीन बार)

ॐ क्षां निऋतये नमः स्वाहा (तीन बार)

ॐ वं वरुणाय नमः स्वाहा (तीन बार)

ॐ वां वायव्याय नमः स्वाहा (तीन बार)

ॐ सं सोमाय नमः स्वाहा (तीन बार)

ॐ हां ईशानाय नमः स्वाहा (तीन बार)

ॐ आं ब्रह्मणे नमः स्वाहा (तीन बार)

ॐ ह्रीं अनन्ताय मः स्वाहा (तीन बार)

ॐ वज्रादि अस्त्र-शस्त्रेभ्यो नमः स्वाहा (तीन बार)

ॐ ह्रीं भगवतयै भूवनेश्वर्यै नमः स्वाहा (तीन बार)

ॐ अग्नयै नमः स्वाहा (तीन बार)

कवच

देव्युवाच ॥

भुवनेश्याश्च देवेश या या विद्याः प्रकाशिताः ।
श्रुताश्चाधिगताः सर्वाः श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥
त्रैलोक्य-मङ्गलन्नाम कवचं यत्पुरोदितम् ।

ईश्वरोवाच ॥

श्रृणु पार्वति वक्ष्यामि सावधानाऽवधारय ॥
त्रैलोक्य मङ्गलन्नाम कवच मन्त्र-विग्रहम् ।
सिद्ध विद्यामयं देवि सर्वैश्वर्य प्रदायकम् ॥
पठनाद्धारणान्तर्त्र्यस्त्रैलोक्यैश्यर्प्य भाग्भवत् ।

विनियोग - त्रैलोक्यमङ्गलस्यास्य कवचस्य ऋर्षिशवः ॥
छन्दो विराड् जगद्धात्री देवता भुवनेश्वरी ।
धर्मार्त्थ काम मोक्षेषु विनियोगः प्रकीतितः ॥
''ह्रीं बीजम्मे शिर' पातु भुवनेशी ललाटकम् ।
श्रीं पातु दक्षकर्णेम्मे त्रिवर्णात्मा महेश्वरी ॥
वाम कर्ण सदा पातु ऐं घ्राणं पातु मे सदा ।

ह्रीं पातु वदनं देवी ऐं पातु रसनां मम ।।
वाक्पुटा च त्रिवर्णात्मा कण्ठं पातु परास्मिबका ।।
श्रीं स्कन्धौ पातु नियतं ह्रीं भुजौ पातु पराम्बिका।
क्लीं करौ त्रिपुटेशानी त्रिपुटैश्वर्य दायिनी ।।
ॐ पातु हृदयं ह्रीं मे मध्य देशं सदाऽवतु ।
क्रौं पातु नाभिदेशं सात्र्यक्षरी भुवनेश्वरी ।।
सर्व बीज प्रदा पृष्ठं पातु सर्ववशङ्करी ।
ह्रीं पातु गुद देश मे नमो भगवती कटीम् ।।
माहेश्वरी सदा पातु सक्थिनी जानु युग्मकम् ।
अन्नपूर्णा सदा पातु स्वाहा पातु पदद्वयम ।।
सप्तदशाक्षरी पायादन्नपूर्णात्मिका पुरा ।
तार माया रमा कामः षोडशर्णा ततः परम् ।।
शिरः स्था सर्वदा पातु विंशत्यर्णात्मिका ।
तारदुर्गे युगं रक्षिणी स्वाहेति दशाक्षरी ।।
जय दुर्गे घन श्यामा पातु मां पूर्वतो मुदा ।
माया बीजादिका चैषा दशार्णा परा तथा ।।
उत्तप्त काञ्चनाभासा जय दुर्गाननेऽवतु ।
तारं ह्रीं दुन्दुर्गायै नमोष्टार्णात्मिका परा ।।
शंख-चक्र धनुर्बाणधरामान्दक्षिणेऽवतु ।
महिषा मर्दिनी स्वाहा वसु वर्णात्मिका परा ।।
नैऋत्यां सर्वदा पातु महिषासुर नाशिनी ।
माया पद्मावती स्वाहा सप्तार्णा परिकीर्त्तिता ।।
पद्मावती पद्म संस्था पश्चिमे मां सदावतु ।
पाशांकुश पुटा माये हि परमेश्वरि स्वाहा ।।
त्रयोदशापूर्णा ताराद्या अश्वारूढाननेऽवतु ।
सरस्वती पञ्चशरं नित्यक्लिन्ने मद द्रवे ।।
स्वाहाख्यक्षरी विद्या मातुत्तरे सदावतु ।
तार माया तु कवचङ्गो रक्षेत् ततं बधूः।।

ऐं क्षें ह्रीं फट् महा विद्या द्वाशार्णाखिलप्रदा ।
त्वरिताष्टाहिमिः पायाच्छिवकोणे सदामाम् ।।
ऐं क्लीं सौः सा ततोबाला मामुद्धर्ध्व देशतोऽवतु ।
बिन्दुन्तां भैरवी बाला भूमौ च मां सदावतु ।।

फल- उपर्युक्त कवच के भक्ति श्रद्धापूर्वक पाठ करने वाला कुबेर के जैसा धनपति होता है। इन्द्रादि देवता भी इस कवच के पाठ एवं धारण करने से सुरपति बने है। मूल मन्त्र से आठ बार पुष्पांजलि देकर पाठ करने से सम्पूर्ण पूजा का फल प्राप्त होता है। घर में लक्ष्मी का वास होता है। वाणी पर नियंत्रण होता है। जो इस कवच को यथाविधि लिखकर धारण करता है, वह सभी तरह की सम्पत्ति से परिपूर्ण होता है तथा तीनो लोकों में विजय प्राप्त करता है। अनेक पुत्रियों को जन्म देने वाली या बंध्या स्त्री पुत्र को प्रापत करती है। ब्रह्मास्त्र विद्या भी धारक को हानि पहुँचाने में असमर्थ होती है। इस कवच के पाठ से सम्पुट करके भुवनेश्वरी मन्त्र का जप करने से साधक को शीघ्र सिद्धि-लाभ होता है। इस कवच को यथाविधि लिखकर पुरुष के अपनी दाहिनी भुजा में तथा स्त्री को अपनी बायीं भुजा में धारण करना चाहिए ।

इति रुद्रयामले देवीश्वर-सँवादे त्रैलोक्य मङ्लन्नाम भुवनेश्वरी कवच ।।

वटुक - मन्त्र ह्रीं वटुकाय आपद् उद्धारणाय कुरु कुरु वं वटुकाय ह्रीं ।। 108 बार जप से पहले और बाद में जप करना चाहिए। इससे साधना काल में उत्पन्न होने वाले विघ्नों से रक्षा होती है ।

।।श्री जगदम्बार्पणमस्तु ।।
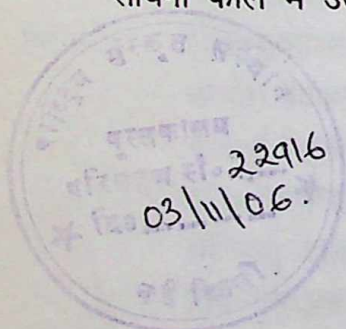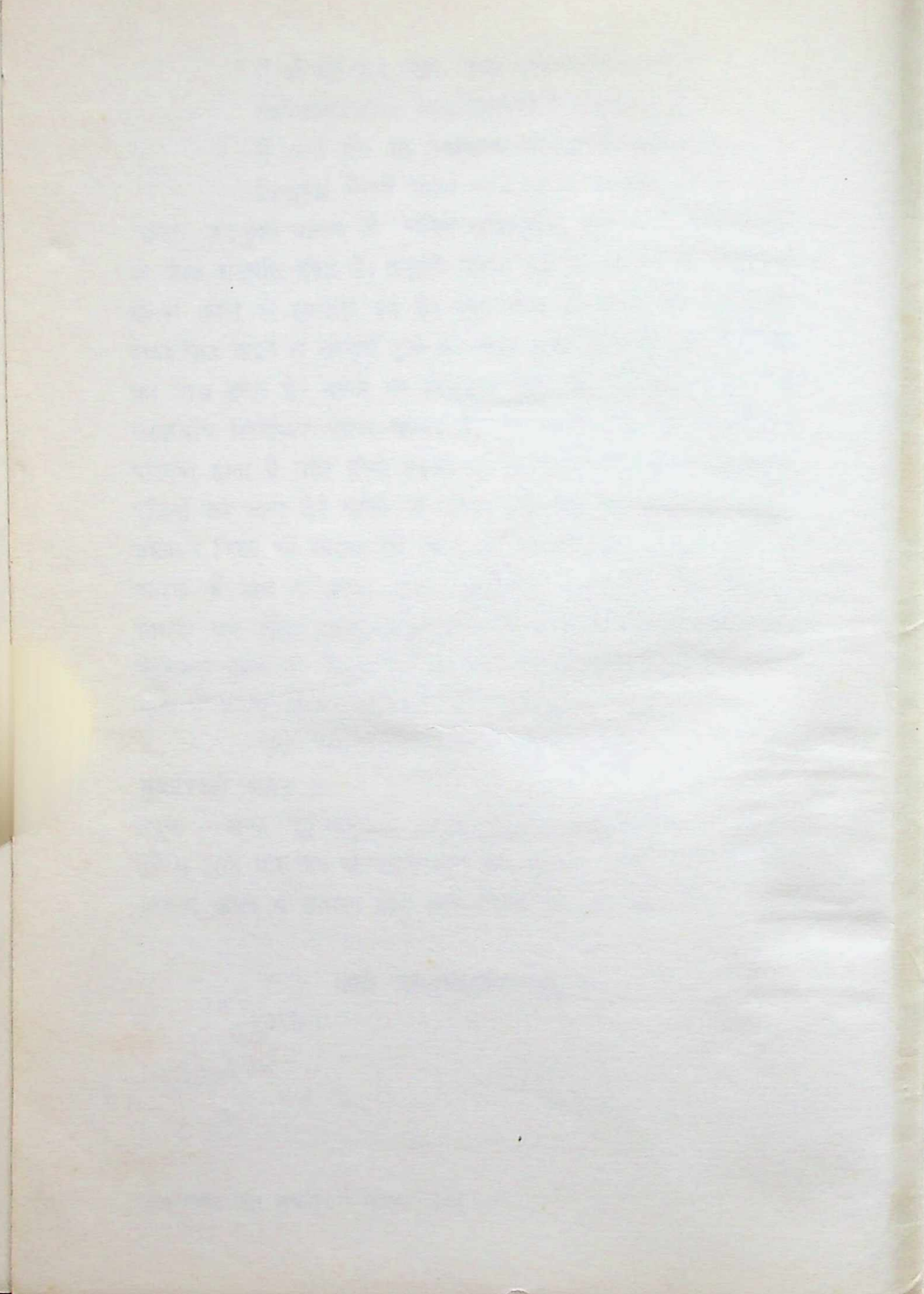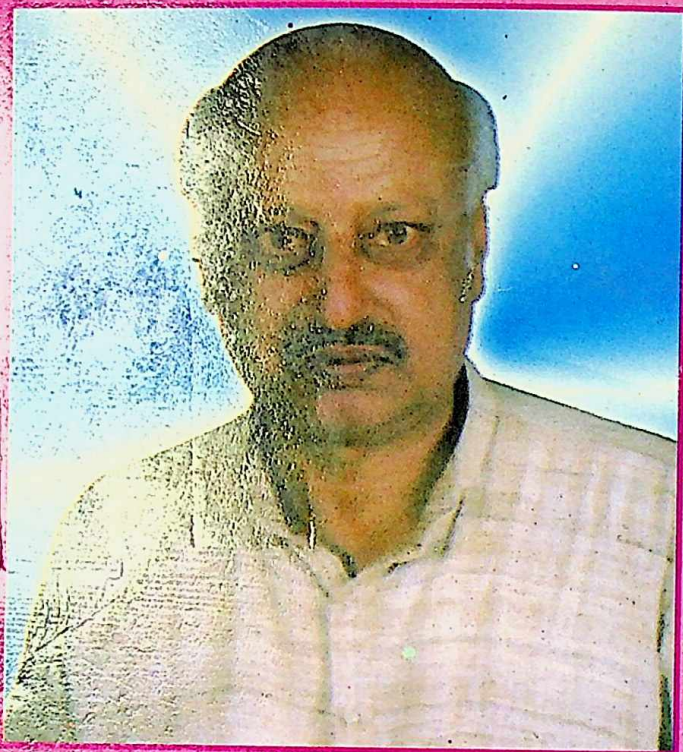
अशोक कुमार 'राकेश'

लेखक

ऋचा प्रकाशन द्वारा लेखक की शीघ्र अन्य प्रकाश्य पुस्तकें -

- वर्णों का आध्यात्मिक स्वरूप
- विश्व गुरु भारत की प्राचीन विद्याएँ
- परा विद्याओं का स्वरूप : साधना-सिद्धि
- धर्म, सम्प्रदाय और अध्यात्म
- एकलव्य संज्ञा नहीं व्यक्ति की (कविता संग्रह)
- बाल कविताएँ आदि ।